राजस्थान विश्वविद्यालय की बी. ए., बी. एससी., एवं बी. कॉम. डिग्री की त्रिवर्षीय कक्षाओं के प्रथम वर्ष के लिए

सामाजिक ज्ञान

नवनिर्धारित पाठ्यक्रमानुसार

भाग १

लेखक

एस. सी. तेला
एम. ए., एल एल. बी.,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
गवर्नमेन्ट कॉलेज, अजमेर

एम. ए.,
प्रिन्सपल, अग्रवाल कॉलेज,
जयपुर

पी. के. मजूमदार
एम. ए.,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
गवर्नमेन्ट कॉलेज, अजमेर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

१६६१]

दो शब्द

सामान्य शिक्षा (General Education) शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में हारवर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्री. जे. बी. कोनेन्ट (J. B. Conant) ने किया था। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग 'उदार शिक्षा' (Liberal Education) के स्थान पर किया था। 'उदार शिक्षा का प्रारम्भ प्राचीन यूनान के नगर राज्यों में हुआ था। सामान्य शिक्षा का आन्दोलन संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्व प्रथम प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन के विषय में हावर्ड ली नोरट्रेन्ड (Howard Lee Nortrand) ने लिखा है, "यदि हम सामान्य शिक्षा की समस्या सुलझा सकें तो तृतीय विश्व-युद्ध हमेशा के लिये टल जाएगा"। यद्यपि इस कथन में अतिशयोक्ति हो सकती है, तथापि इससे विषय का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं होता।

सामान्य शिक्षा का उद्देश्य है विशेष प्रकार की शिक्षा (Specialised Education) तथा 'उदार शिक्षा' का समन्वय करना। इसका दूसरा उद्देश्य है विद्यार्थियों को प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण, एवं मानवीय आदर्श और मूल्यों के प्रति जागरूक बनाना।

भारत में सामान्य शिक्षा के विषय में राधाकृष्णन आयोग ने सर्व प्रथम सिफारिश की कि बिना किसी विलम्ब के सामान्य शिक्षा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया जाए जिससे विशेष प्रकार की शिक्षा के दुर्गुण दूर किए जा सकें। सामान्य शिक्षा तथा विशेष प्रकार की शिक्षा के बीच इस प्रकार का समन्वय किया जाय कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास एक सफल नागरिक के रूप में हो सके। यद्यपि विश्वविद्यालयों ने इस सिफारिश का उत्साहपूर्वक स्वागत नहीं किया, तथापि भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने १९५५ ई० में देश के समस्त विश्वविद्यालयों के उप-कुलपतियों का एक सम्मेलन श्रीनगर में बुलाया। इस सम्मेलन में सामान्य शिक्षा की उपयोगिता, उद्देश्य आदि पर विचार किया गया। इस सम्मेलन के बाद भारत सरकार ने विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये कहा। कुछ विश्वविद्यालयों ने इस योजना का इस आधार पर विरोध किया कि इससे विद्यार्थियों पर बोझ पड़ेगा। इसके उपरान्त भारत सरकार की ओर से इस विषय की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ अध्यापक संयुक्त राज्य अमेरिका भेजे गये तथा वहां के कुछ प्राध्यापक हमारे देश में भी आये। अब भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा का विषय पाठ्यक्रम के साथ जोड़ दिया गया है।

भारत में सामान्य शिक्षा का महत्व बहुत बढ़ गया है क्योंकि पंचवर्षीय योजनायें, विकेन्द्रीकरण, सहकारी व्यवस्था, राष्ट्रीयकरण आदि से समाज के ढाँचे में जो परिवर्तन हो रहा है उसके लिये ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो विशेष एवं साधारण ज्ञान का समन्वय कर समाज की सेवा कर सकें।

इस पुस्तक की रचना में General Education in Free Society, General Education—Report of the Study Team, General Education in Transition आदि पुस्तकों में दिये गए सुझावों का ध्यान रक्खा गया है।

जल्दी में छपने के कारण, संभवतः पुस्तक में कुछ त्रुटियां रह गई हों तो पाठक हमें इन त्रुटियों के लिये क्षमा करेंगे।

१ अगस्त, १९६१. लेखकगण

विषय-सूची
CONTENTS
प्रथम खण्ड
हमारी सांस्कृतिक परम्परा
OUR CULTURAL HERITAGE

अध्याय

UNIVERSITY OF RAJASTHAN

Syllabus of the First Year Examination, 1962.

(of the Three-Year Degree Course in the Faculties of Arts, Science and Commerce)

GENERAL EDUCATION

There will be one paper carrying 100 marks.

The question paper will be on Social Sciences only. The following syllabus is prescribed :

I Our Cultural Heritage.

1. Development of civilisation and culture. Salient features of Ancient Greco-Roman and Medieval European civilisation.
2. Salient features of Indus Valley civilisation and the Vedic age.
3. Buddhism and Jainism.
4. Classical Indian Civilisation.
5. Government and Society in Medieval India.
6. Growth of a composite Indian culture.
7. The impact of British Indian Administration on India's political, economic and cultural life.
8. National Movement (1857-1947).

Problems of Economic Development.

1. The Industrial Revolution.
2. Capitalism and Socialism.
3. Economic planning and economic problems of under-developed regions.

Problems of Political Organisation :

1. Basic concepts of Liberalism and Socialism. Principles of Democratic Organisation. Main types of constitutions--Unitary, Federal, Presidential and Parliamentary.
2. The need for International Organisation. The U. N. and its subsidiary organisations. Maintenance of World Peace.

IV The Problems of Modern India.

1. The Indian Economy. Five Year Plans. Planning and Democracy. Community Development Programme.
2. Indian Constitution–its main features.
3. The problems of cultural regeneration—growth of composite culture.

सामाजिक ज्ञान

प्रथम खण्ड

हमारी सांस्कृतिक परम्परा

OUR CULTURAL HERITAGE

सुविधानुकूल प्रतिपल्य स्थापित करता है, उसी प्रकार वह सतत् चिन्तन भी करता है। उदाहरणार्थ इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, कैसे इसका निर्माण हुआ तथा मनुष्य की आत्मा कहाँ से आई, किधर जावेगी, इसका आदि व अन्त क्या है, इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार के चिन्तन मे लीन हो जिन गूढ़ तत्वों की खोज मे मनुष्य आदिकाल से रहा है और जिन विचारधाराओं की स्थापना कर सका है, वे दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत आती हैं। इसी प्रकार प्रकृति के प्रकोप तथा उसकी देन को वह उद्भवकाल से देखता तथा सहन करता चला आ रहा है। इसमें उसे अज्ञात शक्ति का भय भी रहा है तथा उसके प्रति श्रद्धा भी होती रही है। इस दिशा में उसने जिन विचारों व मान्यताओं की रचना की वे धर्म-शास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

सामाजिक प्राणी होने के नाते उसने मानव संगठनों तथा संस्थाओं की रचना की, जिनके द्वारा सामाजिक व सामूहिक जीवन सरल व सुखमय बना। इसी प्रकार भौतिक क्षेत्र की उन्नति से सन्तुष्ट न हो उसने आध्यात्मिक व कलात्मक क्षेत्र मे भी चिन्तन कर प्रगति की। जीवन को संगीत, साहित्य, तथा कला द्वारा सरस, सौन्दर्यमय तथा सुसंस्कृत बनाने का प्रयत्न किया। उसने इन सब सांस्कृतिक क्षेत्रों का विकास सामाजिक व सामूहिक रूप से ही किया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि भौतिकक्षेत्र में उसने सामूहिक रूप से प्रगति की। इन साधनाओं मे समस्त मानव-समाज का आदिकाल से अब तक सामूहिक योग रहा है।

इस प्रकार के चिन्तन, मनन तथा साधना द्वारा जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए जो भी प्रयत्न मनुष्य द्वारा किये जाते हैं वे 'संस्कृति' के रूप मे उपलब्ध होते हैं। अतः धर्म का विकास, दर्शन-शास्त्र का चिन्तन, साहित्य, संगीत की कला का सृजन तथा अनेक प्रथायें संस्था तथा संगठनों का निर्माण—संस्कृति के क्षेत्र में आते हैं।

सभ्यता संस्कृति का पारस्परिक सम्बन्ध—

सभ्यता व संस्कृति दोनों की भिन्न परिभाषा तथा भिन्न कार्यक्षेत्र होते हुए भी दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य की समस्त भौतिक प्रगति सभ्यता के अन्तर्गत समझी जाती है। सभ्यता सामाजिक विकास की मंजिल है, ऐसी मंजिल जहाँ मनुष्य अपनी बर्बरता तथा एकाकी पाशविक जंगलीपन छोड़ सभ्य-रूप जीवन बिताने लगा था। उसने अग्नि का प्रयोग सीखा और अपना आहार अग्नि की सहायता से बनाने लगा; उसने कृषि का आरम्भ किया और पशुओं को पालतू बनाना सीखा; अंत में उसने हवा, पानी, वाष्प, बिजली आदि भौतिक शक्तियों को वश में कर ऐसी मशीनें बनाई जिनसे उसके भौतिक जीवन की कायापलट हो गई। मनुष्य की यही प्रगति सफलता कहलाती है।

मनुष्य का दूसरा पहलू आध्यात्मिक है। संस्कृति एक प्रकार का मानसिक विकास —एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जो मानव में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह एक प्रकार का संस्कार है। मानसिक निखार, जो व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी।

आर्थिक तथा राजनैतिक इत्यादि क्षेत्र में जो कुछ भी मनुष्य द्वारा प्रतिपादित अन्वेषण तथा प्रगति पाते हैं, वह सब इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु ही उसके सतत प्रयत्नों का फल है। यह प्रगति किस प्रकार उसे नितान्त बर्बर अवस्था से आज पर्याप्त सम्पन्न स्थिति पर पहुँचा पाई है, इसकी सूक्ष्म रोचक कहानी इस अध्याय में आगे चलकर देखेंगे। यहाँ तो इतना जान लेना उचित होगा कि मनुष्य की समस्त भौतिक प्रगति का लक्ष्य यही रहा है कि वह जीवन की तीनों आधारभूत आवश्यकताओं (अशन, वसन, निवसन) की पूर्ति सरलता और सुगमता से कर सके। उसके लिए की गई समस्त रचनाओं, संस्थाओं और साधनों की सम्बद्ध और संस्था रूप व्यवस्था का नाम है 'सभ्यता'।

मनुष्य सांसारिक आवश्यकताओं को सुगम व सरल पूर्ति के लिए चहुँमुखी विकास करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र उदाहरणार्थ कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, यातायात के साधन, कला-कौशल, शासन-व्यवस्था, सैनिक-प्रबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन आदि में निरन्तर विस्तार और विकास करता चला जा रहा है। फलस्वरूप मनुष्य जीवन सादा व सरल न रहकर जटिल और विस्तृत होता जा रहा है। इस प्रकार के समस्त भौतिक विकास का समावेश सभ्यता के अन्तर्गत ही होता है।

संस्कृति का अर्थ:—संस्कृति का शब्दार्थ सुधरी हुई स्थिति है। संस्कृति शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया जाना चाहिए। स्वभाव से मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है। इस प्रगति के लिए उसे बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है जिसके सहारे वह प्राकृतिक देन को अपनी सुविधानुकूल उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रहन-सहन, रीति-नीति, आचार-विचार तथा नवीन अनुसन्धान व आविष्कार जिनकी सहायता से मनुष्य अन्य जीव-जातियों के स्तर से भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नत होता है, संस्कृति के अंग है। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योग-मूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य इस महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम संस्कृति शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।

संस्कृति शब्द इतना प्रचलित होते हुए भी स्पष्टरूप में नहीं समझा जा सकता है और न इसकी और कोई ऐसी परिभाषा ही हो सकी है जो सर्व-सम्मति से ग्रहण की जा सके। फलस्वरूप प्रत्येक मनुष्य, जाति अथवा राष्ट्र अपनी रुचि और संस्थाओं के अनुसार इसका अर्थ लगा लेता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसमें निहित भाव नितान्त अस्पष्ट हैं। इसमें सब एक मत हैं कि मनुष्य की श्रेष्ठतम साधनाएँ संस्कृति के नाम से पुकारी जावें। संस्कृति की अस्पष्टता का एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य उसके अंग व व्यापक रूप को नहीं देख सका है।

हमने देखा कि मनुष्य के भौतिक क्षेत्र के विकास को हम सभ्यता के अन्तर्गत लेते हैं, किन्तु मानव बुद्धि का क्षेत्र 'केवल भौतिक क्षेत्र तक ही मर्यादित नहीं होता है। जिस प्रकार वह बुद्धि द्वारा प्रकृति के विविध तत्वों की जानकारी करता है तथा उन पर

सुविधानुकूल प्रतिपत्य स्थापित करता है, उसी प्रकार वह सतत् चिन्तन भी करता है। उदाहरणार्थ इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, कैसे इसका निर्माण हुआ तथा मनुष्य की आत्मा कहाँ से आई, किधर जावेगी, इसका आदि व अन्त क्या है, इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार के चिन्तन में लीन हो जिन गूढ़ तत्त्वों की खोज में मनुष्य आदिकाल से रहा है और जिन विचारधाराओं की स्थापना कर सका है, वे दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत आती हैं। इसी प्रकार प्रकृति के प्रकोप तथा उसकी देन को वह उद्भवकाल से देखता तथा सहन करता चला आ रहा है। इसमें उसे अज्ञात शक्ति का भय भी रहा है तथा उसके प्रति श्रद्धा भी होती रही है। इस दिशा में उसने जिन विचारों व मान्यताओं की रचना की वे धर्म-शास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

सामाजिक प्राणी होने के नाते उसने मानव संगठनों तथा संस्थाओं की रचना की, जिनके द्वारा सामाजिक व सामूहिक जीवन सरल व सुखमय बना। इसी प्रकार भौतिक क्षेत्र की उन्नति से सन्तुष्ट न हो उसने आध्यात्मिक व कलात्मक क्षेत्र में भी चिन्तन कर प्रगति की। जीवन को संगीत, साहित्य, तथा कला द्वारा सरस, सौन्दर्यमय तथा सुसंस्कृत [illegible]ाने का प्रयत्न किया। उसने इन सब सांस्कृतिक क्षेत्रों का विकास सामाजिक व [illegible]ामूहिक रूप से ही किया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि भौतिकक्षेत्र में उसने [illegible]ामूहिक रूप से प्रगति की। इन साधनाओं में समस्त मानव-समाज का आदिकाल से [illegible]व तक सामूहिक योग रहा है।

इस प्रकार के चिन्तन, मनन तथा साधना द्वारा जीवन को सरस, सुन्दर और स्याणमय बनाने के लिए जो भी प्रयत्न मनुष्य द्वारा किये जाते हैं वे 'संस्कृति' के रूप में [illegible]पलब्ध होते हैं। अतः धर्म का विकास, दर्शन-शास्त्र का चिन्तन, साहित्य, संगीत की कला [illegible]ा सृजन तथा अनेक प्रथायें संस्था तथा संगठनों का निर्माण—संस्कृति के क्षेत्र में आते हैं।

[illegible]भ्यता संस्कृति का पारस्परिक सम्बन्ध—

सम्यता व संस्कृति दोनों की भिन्न परिभाषा तथा भिन्न कार्यक्षेत्र होते हुए भी [illegible]ोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य की समस्त भौतिक प्रगति सम्यता के अन्तर्गत [illegible]मभी जाती है। सम्यता सामाजिक विकास की मंजिल है, ऐसी मंजिल जहाँ मनुष्य अपनी बर्बरता तथा एकाकी पाशविक जंगलीपन छोड़ साम्य-रूप जीवन बिताने लगा था। उसने अग्नि का प्रयोग सीखा और अपना आहार अग्नि की सहायता से बनाने लगा; उसने कृषि का आरम्भ किया और पशुओं को पालतू बनाना सीखा; अंत में उसने हवा, पानी, वाष्प, बिजली आदि भौतिक शक्तियों को वश में कर ऐसी मशीनें बनाई जिनसे उसके भौतिक जीवन की कायापलट हो गई। मनुष्य की यही प्रगति सफलता कहलाती है।

मनुष्य का दूसरा पहलू आध्यात्मिक है। संस्कृति एक प्रकार का मानसिक विकास —एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जो मानव में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह एक प्रकार का संस्कार है। मानसिक निखार, जो व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी।

एक लेखक ने सभ्यता व संस्कृति का सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि, 'प्रत्येक सभ्यता के क्रमिक विकास में एक स्तर आता है जब वह विशेष मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों का निर्माण कर लेता है। ये उसके सामूहिक जीवन में इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि समस्त समाज इन उदात्त और सूक्ष्म विशेषताओं में रंग जाता है। उसके सभ्य जीवन की समस्त सामग्री इन उच्च ध्येयों की पूर्ति का एक साधनमात्र बन जाती है। उसकी समस्त रचनात्मक कृतियाँ इन 'संस्कृति—निखरे हुए—उद्देश्यों की प्रतीक हो जाती हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक और शिक्षा विशेषज्ञ डा० ह्वाइटहेड के शब्दों में 'संस्कृति की परिभाषा है मानसिक प्रयास, सौंदर्य और मानवता की अनुभूति। दूसरे शब्दों में, सत्य की खोज, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और मानव-प्रेम का विकास संस्कृति के प्रमुख तत्व हैं। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' ही संस्कृति का महामन्त्र है। 'सभ्यता' के सूक्ष्म, शुद्ध और उदात्त तत्त्वों के रचनात्मक विकास और पल्लवन का नाम 'संस्कृति' है।'

यही लेखक आगे लिखते हैं, 'सभ्यता का चित्रण आसान होता है परन्तु संस्कृति विशेष का वास्तविक बोध तथा विवेचन केवल सुहृद प्रयास, निष्पक्ष अनुसन्धान और सूक्ष्म चिन्तन द्वारा ही सम्भव है। 'सभ्यता' देह है तो 'संस्कृति' उसमें अनुप्राणित आत्मा। जैसे देह का वर्णन सरल है परन्तु आत्मा का दिग्दर्शन करना कठिन है इसी प्रकार संस्कृति केवल अनुसूचित विवरण का विषय नहीं है। उसका अध्ययन तो एक सूक्ष्म सारग्रहणमात्र है। इतिहास का मौलिक विषय यही अध्ययनहै। संस्कृतियों के उदय, विकास और विनाश की खोज ही इतिहास के विद्यार्थियों का श्रेयस्कर कार्य है।

सभ्यता व संस्कृति के आधार—

सभ्यता व संस्कृति का सबसे आवश्यक आधार हमारा भूमण्डल है। यदि यह भूमण्डल तथा यहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियाँ न हों तो सभ्यता की आधारभूत शिला ही न रखी जावे। भूमण्डल में प्रत्येक भूखण्ड की भौगोलिक परिस्थिति अर्थात् वहाँ के तापक्रम, जलवायु, वर्षा की गतिविधि, धरती की उर्वरता, खाद्य पदार्थों का बाहुल्य आदि के अनुसार मानव विशेष सभ्यता का निरूपण करता है। देश-विदेश के आपसी सम्बन्ध, आयात-निर्यात, सामाजिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि समस्त बातें इसी आधार पर स्थित की जाती हैं।

सभ्यता के विकास का दूसरा आवश्यक आधार प्राकृतिक गुण व संस्कार हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जातियाँ जलवायु और इसके कारणविशेष खान-पान तथा ऐतिहासिक परम्पराओं के परिणाम स्वरूप बनीं किन्तु कालान्तर में यही प्रभाव जाति विशेष के गुण बन गये और एक जाति दूसरी जाति से अधिक कुशाग्र, बलशाली अथवा परिश्रमी बन गई। अतः इस प्रकार के प्राकृतिक गुण व संस्कार ने सभ्यता के विकास में एक महान् आधार का काम किया है। यह जानते हुए भी कि भिन्न जातियों में कोई मौलिक विशिष्टता नहीं है, हमें यह ध्यान में रखना होगा कि भूगोल और इतिहास की भिन्नताओं के कारण भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न गुण या योग्यताएँ पाई जाती है जो उनकी सभ्यता और संस्कृति में प्रदर्शित होती हैं।

सभ्यता व संस्कृति का उदय तथा क्रमिक विकास—

पृथ्वी जन्म लेते ही प्राणी के निवास योग्य नहीं बनी थी। आज से लगभग ५० करोड़ वर्ष पूर्व तक पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु निष्प्राण तथा अचेतन थी। वनस्पति का भी कोई चिन्ह नहीं था। शनैः शनैः पृथ्वी और जल जितने ठण्डे होते गये उतने ही वे प्राणधारियों के रहने योग्य बनते गये।

विकासवाद सिद्धान्त के आधार पर आज के मानव का रूप लगभग ५० हजार वर्ष पहले विकसित हुआ और मनुष्य जीवन व मानव-सभ्यता के कुछ प्रामाणिक तथ्य जिनका इतिहास लिखा जाता है, केवल पाँच या छः हजार वर्ष पहले के हैं। इससे भी पूर्व का प्राचीन इतिहास अथवा विकास-क्रम पृथ्वी के गर्भ में स्थित चट्टानों के भिन्न-भिन्न स्तरों में लिखा है।

वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया है कि सबसे पहले संसार में आनेवाले प्राणी के न खाल थी न हड्डी। वह एक लोथड़े के रूप में था। जीव धारियों की दूसरी अवस्था घोंघे व केकड़े की जाति के जानवरों की थी। प्राकृतिक परिवर्तनों के अनुसार प्राणी बदलता चला गया। किन्तु प्राणी को परिवर्तन के प्रत्येक क्रम में निश्चित रूपसे प्रकृति से संघर्ष करना पड़ा है, और जो जीव जन्तु इस संघर्ष में सफल हो गये उनका परिष्कृत रूप मानवीय सभ्यता के सम्मुख आता गया है। विकास की अन्तिम सीढ़ी अर्द्धमानव स्थिति मानी जाती है। वैज्ञानिकों ने गम्भीर तर्क तथा प्रयोगों द्वारा इसी अर्द्धमानव जाति को आज के मनुष्य का पूर्वज आँका है। इसका काल लगभग १० लाख वर्ष पहले का माना जाता है।

मानव जाति के विज्ञान-वेत्ताओं ने हड्डियों के क्रमिक विकास का अध्ययनकर मानव के क्रमिक विकास का इतिहास लिखा है। हड्डियों के अवशेष जहाँ-जहाँ मिले हैं, उन्हें आधार मानकर वैज्ञानिकों ने विकास की विभिन्न दशाओं का नाम भी उसी प्रकार रख दिया है यथा, जावा, हिडलवर्ग, पिल्टडाउन, नीनडरथाल, आरिगनेशियन तथा क्रोमेग्नान आदि। क्रोमेग्नान के अवशेषों को ६ फीट लम्बा माना जाता है और इनकी आकृति बहुत कुछ आधुनिक यूरोप निवासियों से मिलती थी। ये लगभग दस हजार से पचास हजार वर्षों के बीच में रहे होंगे। इस काल के समाप्त होने से पूर्व मनुष्य ने पत्थर के औजार बनाना सीख लिया था। इन औजारों पर वह लकड़ी की पकड़ भी लगाना सीख गया था। वह अग्नि का प्रयोग भी सीख चुका था तथा परस्पर समझने वाली किसी भाषा का प्रयोग भी सीख गया था।

इस प्रकार पूर्व पाषाण कालीन मानव अन्य प्राणियों से अधिक सभ्य हो चुका था। अब बुद्धि द्वारा वह सभ्यता की ओर प्रगति करने लगा था। यदि हम सम्पूर्ण पृथ्वी व प्रथम प्राणी के जन्म के समय की तुलना पूर्व पाषाण कालीन मनुष्य से लेकर आधुनिक काल तक विकसित मानव-सभ्यता के समय से करें तो हम आधुनिक मानव को इस बात का श्रेय दिये बिना नहीं रह सकते। तुलनात्मक दृष्टि से लगभग नगण्य समय में

उसने आश्चर्यजनक प्रगति करली है।

सबसे प्राचीन मानव की सभ्यता के बारे में हमें इतिहास कुछ नहीं बतलाता इतिहास केवल उन्हीं मनुष्यों को सबसे प्राचीन बतला सका है जिनके कुछ भद्दे पत्थर के औजार मिल सके हैं। इस प्रकार इन औजारों व अस्त्रों की उपलब्धि के आधार पर उन युग को, प्राचीन पाषाण-युग, नवीन पाषाण-युग तथा धातु-युग में विभाजित किया गया है। दोनों प्रकार के पाषाण-युगों में पत्थर के औजार काम में लाये जाते थे और इन औजारों तथा अस्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ह हमें इनके बारे में उपलब्ध नहीं होते हैं। इसके सहस्त्रों वर्षों बाद मनुष्य धातु के प्रयोग के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सका और काफी समय तक पत्थर व धातुओं के औजार एक साथ काम में आते रहे। धातुओं में पहले ताम्रयुग आया और अनेक शताब्दियों बाद तांबे की जगह लोहा काम में लाया जाने लगा।

प्राचीनतम पुरुष जैसे-जैसे अपने पशु-पूर्वज की श्रेणी से पृथक होता गया वैसे-वैसे वह हरियाले मैदान, गोचर-भूमि तथा सुलभ-प्राप्त खाद्य-सामग्री को ढूंढ़ता हुआ अनेक प्रदेशों में फैल गया। जहां कहीं उसको भोजन तथा निवास सरलता से मिल सका वहां पर उसने धीरे-धीरे पैर जमा दिये और वहीं पर सभ्य जीवन का प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार की सभ्यता के प्रथम केन्द्र प्रायः नदी-घाटियों में ही थे, कारण कि वहां ही मनुष्य को सरलता से जल, फल, खाद्य-सामग्री तथा कच्चे मकानों को बनाने के लिये मिट्टी घास-फूस आदि प्राप्त हो जाते थे। इसी कारण सभ्यता के विकास के सर्वप्रथम केन्द्र नील, दजलाफरात और सिन्धु व गंगा आदि की घाटियों में पाये जाते हैं। इसके पश्चात् महासागर के किनारों पर सभ्यता का प्रसार हुआ जैसे अरबसागर, भूमध्यसागर तथा प्रशान्त महासागर इत्यादि।

इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि जहाँ प्रकृति अधिक सुलभता से सहायक सिद्ध हुई है जैसे प्रशांत महासागर के अनेक टापुओं में, वहाँ के निवासी सभ्यता के विकास में कोई ऊँचा स्थान नहीं पा सके किन्तु जहाँ मनुष्य को प्रकृति से संघर्ष करना पड़ा है नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए अन्वेषण करना पड़ा है, वहीं उसे सभ्यता के विकास में अधिक योग देना पड़ा है। नदी, महासागर तथा मैदानों में फैलती हुई मानव-सभ्यता विश्वव्यापी हो गई। आज वैज्ञानिक युग में मनुष्य सभ्यता के विकास की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ सा दिखाई पड़ता है। वह सुगमता से व्योम-यात्रा कर रहा है और अपने विकास का क्षेत्र पृथ्वी से परे ब्रह्माण्ड तक बना रहा है। कितना अधिक विकास और हो सकेगा यह भविष्य के गर्भ में है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृतिः—

अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थिति में और विशेष ऐतिहासिक परम्परा के भीतर से मनुष्य के सर्वोत्तम को प्रकाशित करने के हेतु भारत-निवासियों ने भी कुछ प्रयत्न किये हैं। भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सुन्दर

परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है। भारत बहुत बड़ा देश है और उसका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। उपलब्ध इतिहास से कहीं अधिक प्राचीन महत्त्वपूर्ण यहाँ का अनुपलब्ध इतिहास है। कहा नहीं जा सकता किस काल से यहाँ भिन्न-भिन्न जातियाँ आकर बसती रहीं और यहाँ की साधनाओं को नये नये रूप देकर उन्नत करती रहीं। द्रविड़, शक, नाग, आभीर आदि जातियाँ आईं और सैकड़ो वर्षों के संघर्ष के उपरान्त इनका हिन्दू दृष्टिकोण बना। अधिकांश लोग भारतीय संस्कृति को केवल आर्यों की देन मानते आये हैं, किन्तु यह धारणा सर्वथा उचित नहीं मानी जा सकती है। आज की हमारी संस्कृति भारतीय है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों की साधना यहाँ के सांस्कृतिक निर्माण में विशेष स्थान रखती है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनसे पहले बसने वाली जातियों की देन इस दिशा में कुछ नहीं है। आर्य, द्रविड, ईरानी, शक, कुषण, हूण, अरब, तुर्क, मुगल, अंग्रेज आदि अनेक जातियों ने सांस्कृतिक यज्ञमें अपनी अपनी आहुति दी है। वर्तमान काल का प्रत्येक आचार-विचार, विश्वास तथा प्रथा विभिन्न तत्वों का फल है।

भारतीय संस्कृति की विश्व को देनः—

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। चीन, मिश्र, यूनान, मैसोपोटेमिया आदि प्राचीन सभ्य देशों के इतिहास से हमारा इतिहास कम पुराना नहीं है। प्राचीन भारतीयों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया था। धर्म, विज्ञान, साहित्य, कला, राजनीति, गणित, ज्योतिष आदि कोई विषय ऐसा नहीं था जिसमें भारतीय विचारकों ने उच्च कोटि का चिन्तन न किया हो। हमारे इतिहास की विशेषता यह है कि हमारी संस्कृति में एक निरंतर अविच्छेद्य प्रवाह रहा है। दूसरी प्राचीन संस्कृतियाँ नष्ट हो चुकी हैं किन्तु आज के भारतीय जीवन का वैदिक अथवा मोहिंजोदड़ो की सभ्यता से सीधा सम्बन्ध है। आश्चर्य की बात यह है कि प्राचीन भारतीयों ने अपनी इस बहुमुखी प्रगति का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं छोड़ा।

भारतीय संस्कृति की विशेषता उसका जगद्गुरु होना है। उसने भारत के बाहर बड़े भाग की जंगली जातियों को साइबेरिया से सिंहल तक और मेडागास्कर, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशान्त महासागर के बोर्नियो, बाली के द्वीपों तक के विशाल भूखण्ड पर सभ्यता का पाठ पढ़ाया। भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म-साधना की उत्तम वस्तुएँ दान दी हैं। उसने अहिंसा व मैत्री का संदेश दिया है। हमारा धर्म-विज्ञान, मूर्ति और मन्दिर-शिल्प, हमारा दर्शन-शास्त्र, हमारे काव्य और नाटक, हमारी चिकित्सा और ज्योतिष संसार में गये हैं, सम्मानित और स्वीकृत हुए हैं और संसार की उच्च चिन्तनशील जातियों से थोड़ा बहुत प्रभावित भी हुए हैं। यहाँ के शिल्पी गांधार और यवन-कलाकारों के साथ मिलकर पत्थर में जान डालते रहे हैं। अरब और ईरान के मनीषियों के साथ मिलकर वे चिकित्सा और ज्योतिष शिल्प और कला में

भार संभार करते रहे हैं। भारतीय संस्कृति की ये सब विश्व को महान् देन हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हमने यह अवलोकन किया कि मानव ने अपने प्रारम्भ काल से अब तक भिन्न-भिन्न क्रमिक विकास से सभ्यता व संस्कृति के क्षेत्र में अग्रगण्य स्थान प्राप्त किया।

अध्याय सार

(1) बुद्धिबल से मनुष्य ने जीवन की आवश्यकताओं को सुगम बनाने का प्रयत्न किया और इन सुगम बनाने के क्रम में ही वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करता हुआ चांद की यात्रा कर चुका है।

(2) मनुष्य के भौतिक विकास को सभ्यता कहते हैं। उसके तीन भौतिक क्षेत्र हैं—अशन, वसन तथा निवास। इस प्रकार के भौतिक विकास का समावेश सभ्यता के अन्तर्गत ही होता है।

(3) संस्कृति का शब्दार्थ सुधरी हुई स्थिति है। मनुष्य की श्रेष्ठतम साधनायें संस्कृति नाम से पुकारी जाती हैं। धर्म का विकास, दर्शन-शास्त्र का चिन्तन, साहि[त्य] संगीत की कला का सृजन तथा अनेक प्रथा, संस्था तथा संगठनों का निर्मा[ण] संस्कृति के क्षेत्र में आते हैं।

(4) सभ्यता और संस्कृति में निकटतम पारस्परिक सम्बन्ध है। सभ्यता देह है [तो] संस्कृति उसमें अनुप्राणित आत्मा।

(5) सभ्यता व संस्कृति के दो प्रमुख आधार हैं—भूमण्डल तथा प्राकृतिक गुण [व] संस्कार।

(6) मनुष्य के जन्म से एक क्रम द्वारा सभ्यता का विकास हुआ। और बर्बर युग से लेकर आज के वैज्ञानिक युग तक पहुँचने में लाखों वर्ष व्यतीत हुए हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

1. What do you understand by 'Civilization' and 'culture ?' How are the two Inter-related ?
   सभ्यता और संस्कृति से क्या प्रयोजन है ? इनके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
2. Describe the various stages of the development of Civilization and Culture.
   सभ्यता और संस्कृति के क्रमिक विकास की विभिन्न सीढ़ियों का वर्णन कीजिए।
3. What do you know about the Indian Civilization and Culture ? How has it contributed to the world ?
   भारतीय सभ्यता व संस्कृति के बारे में आप क्या जानते हैं ? भारतीय संस्कृति की विश्व को क्या देन है ?

**

अध्याय २

Salient features of Ancient Greco-Roman Civilization

प्राचीन यूनानी-रोमन सभ्यता की विशेषतायें

(१) प्रस्तावना (२) यूनान का प्राचीन इतिहास (३) यूनान की प्राचीन सभ्यता (४) यूनान के दार्शनिक (५) रोम का प्राचीन इतिहास (६) रोम का पतन (७) रोम की सभ्यता (८) विश्व को यूनान व रोम की सभ्यताओं की देन।

प्रस्तावना —

यूनान व रोम की सभ्यताओं की गणना विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में नहीं की जाती है। कारण यही है कि ये सभ्यतायें मिश्र अथवा भारत की सभ्यता जितनी पुरानी नहीं हैं। परन्तु यूनान व रोम की सभ्यताओं का विश्व-इतिहास में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यूनान व रोम दोनों की सभ्यताओं का पश्चिमी देशों की सभ्यता पर पर्याप्तमात्रा में प्रभाव पड़ा है। प्राचीन समय में ही यूनानियों ने जीवन के अनेक क्षेत्र उदाहरणार्थ राजनीति, गणित, विज्ञान तथा प्रजातन्त्रीय शासन आदि में असाधारण प्रगति की थी। आज विश्व में जनतन्त्रवाद तथा स्वतन्त्रता आदि की जो भावनायें तथा लहर दौड़ती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, वे सब यूनान की देन हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रसार में, साहित्य, कला, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, दर्शन-शास्त्र आदि दिशाओं में प्राचीन यूनानियों ने असाधारण प्रगति की। आज भी प्लेटो व अरस्तु के ग्रंथ अपने क्षेत्र में शिक्षा के आधारभूत ग्रंथ माने जाते हैं। विलड्रंग का कहना है कि मशीनों को छोड़कर पश्चिमी सभ्यता के अन्य प्रत्येक तत्त्व का उद्भव यूनान की प्राचीन सभ्यता में पाया जा सकता है। एक प्रकार से वर्तमान पश्चिमी सभ्यता अपने आधारभूत रूप में यूनानी सभ्यता का ही परिष्कृत एवं विकसित रूप है। यही बात रोम की सभ्यता के बारे में भी कही जा सकती है। अर्नेस्ट बार्कर का कहना है कि यदि यूनानी गौरव अपने अन्तिम काल में मानवता की एकता का आदर्श बना तो इस आदर्श को वास्तविक स्वरूप रोम ने प्रदान किया।"

यदि भारतवासियों ने संसार को आध्यात्मवाद का संदेश दिया और यूनान ने स्वाधीनता, सौन्दर्य प्रेम और बुद्धिवाद का तो रोम ने विश्व को संगठन, एकता, व्यवहारिकता, मानववाद और आज्ञा-पालन का पाठ पढ़ाया। यद्यपि रोमन सभ्यता और संस्कृति पर यूनानी संस्कृति का गहन प्रभाव पड़ा है तथापि रोम के माध्यम द्वारा ही यूनानी संस्कृति आज तक सुरक्षित रह सकी है। इतना होते हुए भी दोनों सभ्यताओं के मूल में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर स्पष्ट मालूम होता है। यूनानी संस्कृति का आधार बुद्धिवाद था और रोमन सभ्यता का आधार व्यवहारिक था। रोम द्वारा सुरक्षित एवं परिष्कृत

यूनानी संस्कृति ही वर्तमान पश्चिमी देशों की सभ्यता का आधार बनी। अतः हम
दोनों सभ्यताओं का सूक्ष्म में पृथक् पृथक् वर्णन करेंगे।

यूनान की प्राचीन सभ्यता

सामाजिक संगठनः—यूनानी राज्य तीन वर्गों में विभाजित था। स
निचला वर्ग गुलाम अथवा दासों का था जो सम्पूर्ण यूनानी जनसंख्या का तीसरा
था। दासों की अवस्था नितान्त शोचनीय थी। दूसरा वर्ग विदेशी निवासियों का
जो व्यापार आदि करते थे परन्तु जिन्हें राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। तीसरा
नागरिकों का था जिन्हें मतदान तथा शासन प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार था। ि
की दशा भी अच्छी नहीं थी। उन्हें राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे न वे अ
शिक्षित ही थी। स्पार्टा नगर का अनुशासन इतना कड़ा था कि केवल स्वस्थ
ही जीवित रह सकते थे। बाजारों का बहुत महत्व था और व्यक्तियों के पारस्प
मेल मिलाप का स्थान बाजार ही था। मनोरंजन, सामाजिक कार्य, दार्शनिक वादवि
वहीं होते थे।

राजनैतिक सगठनः—प्रारम्भ में यूनान की शासन प्रणाली राजतन्त्रात्मक
इसके पश्चात कुलीनतन्त्र फिर निरंकुशतन्त्र और अन्त में जनतन्त्रात्मक हुई। अधिकतर
नगरों में जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली विद्यमान थी। कहीं जनता को अधिक अधि
थे और कहीं बिलकुल कम। राजनैतिक अधिकार केवल नागरिकों को ही प्राप्त थे। नाग
कता का अधिकार एथेन्स में कम से कम बीस वर्ष की आयु प्राप्त करने पर मिलता
और एथेन्स में तमाम नागरिक विधान सभा के सदस्य होते थे। एथेन्स में प्र
प्रजातन्त्र था।

धर्मः—प्राचीन यूनानी मूर्ति पूजक तथा बहुदेव उपासक थे। अन्य देशों
विपरीत यूनान में देवी-देवताओं की उपासना उनके प्रति प्रेम तथा श्रद्धा की भावना
कारण होती थी और उनकी यह मान्यता थी कि मानवीय भावनाएँ भी देवताओं में व
करती हैं। यूनान में भव्य मन्दिर बनाये जाते थे जिनमें सुन्दर कलापूर्ण मूर्तियाँ प्रति
की जाती थी। पुरोहितों का निर्वाचन नागरिकों द्वारा किया जाता था। देवताओं
प्रमुख ज्यूस था जो रोम में जूपीटर के नाम से विख्यात था। सूर्य का नाम एपोलो था
डोरेबल नामक स्थान पर देवता भविष्यवाणी करते थे। इनका धर्म ही यूनान
राजधर्म माना जाता था।

कलाकौशलः—इस क्षेत्र में यूनान की विशेष प्रगति थी। इस कला
विशेषता कला का सौन्दर्य था। यूनानी कलाकार जीवन तथा कला के प्रत्येक पहलू
सुन्दरता के उपासक थे। इनकी सभ्यता का विकास तीन प्रमुख दिशाओं में हुआ—उत्क
स्वातन्त्र्य प्रेम, संयम और सजीव कलाओं में इनकी सौन्दर्योपासना की भावना।

स्थापत्य कला:—प्रसिद्ध यूनानी शासक पैरीक्लीज के समय में एथेन्स में अद्भुत कलाकृतियों का निर्माण हुआ। महान कलाकार फिडियास ने एथेन्स की पहाड़ी एक्रोपोलिस पर अनेक देवताओं के सुन्दर मन्दिर तथा भवनो का निर्माण किया। भवन निर्माण की सामग्री मे पत्थर, चूना, मिट्टी व संगमरमर प्रयोग में लाए जाते थे। स्तम्भो का सूत्र प्रयोग किया जाता था। यहाँ एशिया माइनर की डायना देवी का मन्दिर संसार के सात आश्चर्यों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसी प्रकार सिसली का नेपच्यून का मन्दिर सुन्दरता व सभरसता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मूर्तिकला:—यूनानी मूर्तियाँ सुन्दरता तथा सजीवता की जीवन कृतियाँ है। अधिकांश मूर्तियाँ पत्थर एवं संगमरमर की बनी हुई हैं। प्रसिद्ध देवता ज्यूस की हाथी दाँत व स्वर्ण से निर्मित ६० फीट ऊँची विशाल मूर्ति प्राचीन संसार का आश्चर्य है। अधिकांश में मूर्तियाँ, देवी देवता, यूनानी कवि, दार्शनिक तथा योद्धाओं की हैं। प्राचीन यूनान की मूर्तियाँ संख्या मे बहुत कम उपलब्ध हैं। इनके बारे में हमें प्राचीन साहित्य से ही जानकारी मिलती है।

चित्रकला तथा संगीत कला:—तत्कालीन निर्मित वास्तविक चित्र हमे उपलब्ध नही है। इनका उल्लेख भी प्राचीन यूनानी साहित्य में ही मिलता है। कुछ मिट्टी के बर्तनों व संगमरमर से निर्मित बर्तनो पर निर्मित चित्रो के नमूने मिले हैं। कहीं कहीं भवनो की मूर्तियों पर भी चित्रकारी की गई है। यूनानी संगीत के प्रेमी थे। हमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ ऑरफ्यूज का उल्लेख मिलता है जो अपने वाद्ययंत्रों से प्रकृति को चमत्कृत कर देता था।

साहित्य:—यूनानियों ने फिनीशियन लिपि का प्रयोग किया था। उसमे जो कमी थी उसे इन लोगों ने सुधारा था—इन्होंने ही स्वरों का आविष्कार किया था। यूनानी लिपि ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व प्रयोग मे आने लगी थी। होमर यूनान का प्रथम महाकवि था। इसके महाकाव्य 'ईलियड' तथा 'ऑडिसी' संसार प्रसिद्ध है। नवी शताब्दि ई० पू० में हिसिओड नामक प्रसिद्ध कवि हुआ। इसी प्रकार सोफोक्लीज, ऐस्काईलीज, यूरोपीडीज तथा एरीस्टोफेन्स प्रसिद्ध नाटककार हुए। इतिहास के क्षेत्र में हिरोडोटस तथा थ्यूसीडाइडीज के नाम संसार प्रसिद्ध हैं। दार्शनिकों में प्लेटो व अरस्तु ने संसार की श्रेष्ठतम रचनाएँ यहीं लिखी।

विज्ञान:—अरस्तु ने विज्ञान से सम्बन्धित अनेक उत्तम ग्रन्थों की रचना की। अरस्तु को आधुनिक भौतिक विज्ञान का जन्मदाता माना जाता हैं प्रसिद्ध गणितज्ञ पाइथोगोरस तथा चिकित्साशास्त्री हिपोक्रेटीज के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त ज्योतिष और रसायन शास्त्र आदि के क्षेत्र में भी काफी उन्नति हुई।

मनोरंजन के साधन:—यूनान के निवासियों को खेलकूद तथा मनोरंजन का बड़ा शौक था। शरीर तथा मस्तिष्क दोनो के विकास का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। इस प्रकार विद्यालयों में पुस्तक के ज्ञान के साथ साथ शारीरिक व्यायाम तथा खेलकूदो

पर भी जोर दिया जाता था। स्पार्टा यूनानी नगर राज्यों में इस क्षेत्र में सबसे अ
था। यहाँ पर सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। सेवाकूद तथा शारीरिक विकास की
जनता की दिलचस्पी बढ़ाने के लिए ओलम्पिया नामक नगर में कुश्ती व रथ दौड़ इत्या
अनेक प्रकार की प्रतियोगितायें सगठित की जाती थी।

यूनान के दार्शनिक:– यूनान में दार्शनिकों की बाढ़ सी आ गई थी।
दार्शनिक विद्वानों ने नवीन विचार धाराओं को जन्म दिया। प्रसिद्ध गणितज्ञ पाइथोगोर
ने सृष्टि का आदि कारण आदितत्व संख्या 'एक' को माना। इन्पिडाक्लिस ने इसी 'ए
को ईश्वर की संज्ञा प्रदान की। हेराक्लीटस इन्द्रियदत्त ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान माना
था। इसके विपरीत परमीनाइडीज इन्द्रियदत्त ज्ञान को भ्रामक मानकर आत्मचिंत
को ही वास्तविक ज्ञान का आधार मानता था।- सोफिस्ट दार्शनिक वक्तृता, तर्क तथ
वाद-विवाद में विश्वास रखते थे।

प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात अपने समय का महान विद्वान पुरुष था। सत्य की
खोज में उसने रूढ़िवाद तथा परम्परागत विचारों की अवहेलना की। उसने अपने नये
तरीके से तर्क, वार्तालाप तथा पारस्परिक विनिमय द्वारा सत्य की खोज करने का प्रयत्न
किया। रूढ़िवादियों ने उसका अनुमोदन न कर विषपान द्वारा उसकी जीवन लीला समाप्त
कर दी। प्लेटो ने सुकरात के बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण किया। आज भी
राजनीति, दर्शन, शिक्षा तथा समालोचना आदि के क्षेत्र में प्लेटो के महान ग्रंथ आधार भूत
माने जाते हैं। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रजातन्त्र' में उसने एक दार्शनिक शासन की कल्पना
की है जो अपने ज्ञान के आधार पर ही उच्च पद को प्राप्त कर सकता है और केवल
वही जानता है कि राज्य और नागरिकों का हित क्या है। प्लेटो की पुस्तक 'रिपब्लिक'
प्रत्येक युग के लिए शिक्षा का एक महान ग्रंथ है।

महान अरस्तु प्लेटो का ही शिष्य था। अरस्तु महान विजेता सिकन्दर का गुरु
भी था। प्लेटो और अरस्तु के ग्रंथ आज भी राजनीति व दर्शनशास्त्र के आधारभूत ग्रंथ
माने जाते हैं। इस प्रकार यूनानी दार्शनिकों ने संसार को अमूल्य निधि प्रदान की है।

रोम का प्राचीन इतिहास

रोम में सभ्यता धीरे धीरे विकसित हुई। ऐसा प्रसिद्ध है कि लगभग ७५३
ई० पू० में रोमूलस नामक एक व्यक्ति ने टाइबर नदी के मुहाने पर रोम नगर को बसाया
था। क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से रोम अच्छी स्थिति पर बसा हुआ था अतः यहाँ व्यापारी
एकत्रित हुआ करते थे। धीरे धीरे आबादी बढ़ने से रोम एक महान तथा प्रसिद्ध नगर
बन गया। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि यहाँ आर्य लोग १००० ई० पू० के आसपास
आकर बसे थे। यहाँ लैटिन आर्यों के अलावा एट्रूस्कन जाति भी बसी हुई थी।

प्रारम्भ में रोम एक राजतन्त्र था। रोमूलस के बाद यहाँ छः सम्राटों ने शासन
किया। इस समय रोमन लोगों का राज्य केवल रोम नगर तथा मध्य इटली के उत

भाग में था जहाँ रोमन जाति फैली हुई थी। रोम में प्रजातन्त्र की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण थी कारण कि इतने विशाल पैमाने पर प्रजातन्त्र की स्थापना विश्व-इतिहास में पहली ही घटना थी। किन्तु प्रजातन्त्र के होते हुए भी राजनैतिक सत्ता धनिक वर्ग के हाथों में ही थी। शासन का कार्य असेम्बली तथा सीनेट की सहायता से दो सर्वोच्च अधिकारी चलाते थे जिन्हें कौन्सल कहते थे। निर्धन सर्व-साधारण को 'प्लेबीयन' कहा जाता था और उच्च धनीवर्ग 'पेट्रीशियन' कहलाता था। प्रारम्भ में रोमनिवासियों को ग्रीक लोगों से युद्ध करना पड़ा जिसके लिए उन्होंने कार्थेज से सहायता ली। अन्त में कार्थेज से भी इन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा जो लगभग १०० वर्ष तक चला। इन युद्धों को प्युनिक युद्ध कहते हैं। इन युद्धों में रोम निवासियों ने कार्थेज वालों का बड़ी नृशंसता पूर्वक वध किया। १५० ई० पू० तक रोमन साम्राज्य का काफी विस्तार बढ़ गया। रोम में १०० ई० पू० से ४४ ई० पू० तक संसार का सर्वश्रेष्ठ सेनानायक जूलियस सीज़र हुआ। यह संसार का एक महान विजेता था। उसके साहस के बारे में ममसेन का यह कथन उल्लेखनीय है, "वह जन्मजात शासक था। वह मनुष्यों के मस्तिष्क पर इस प्रकार शासन करता था जैसे वायु बादलों पर। इसकी संगठन शक्ति आश्चर्यजनक थी। अपनी प्रकृति से पूर्णतया रोमन, परन्तु फिर भी उसने अपने आप में और बाह्य संसार में रोमन और यूनानी संस्कृति का समन्वय स्थापित किया। सीज़र त्रुटि हीन और पूर्ण मानव था।" ४४ ई० पू० में ब्रूटस व उनके साथियों ने धोखे से इस महान सेना नायक का वध कर दिया।

जूलियस सीज़र रोम में इतना लोकप्रिय हो गया था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् रोम में प्रजातन्त्र समाप्त हो गया और राजतन्त्र की पुनः स्थापना हुई। ३१ ई० पू० में रोम में राजतन्त्र की स्थापना हुई किन्तु फिर भी शासन विधान लोक तन्त्रात्मक ही बना रहा। जूलियस सीज़र के दत्तक पुत्र ने आगस्टस की उपाधि ग्रहण कर लगभग ४५ वर्ष राज्य किया। इसका शासनकाल इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। उस समय रोम ने बड़ी उन्नति की। देश में वैभव तथा धनधान्य बढ़ा। इसके अतिरिक्त उनके समय में रोम में एक सुव्यवस्थित तथा दृढ़ प्रशासन स्थापित हुआ। शान्ति तथा व्यवस्था के कारण कला, साहित्य, विज्ञान व्यापार क्षेत्रों में असाधारण उन्नति हुई। आगस्टस के वंश का अन्तिम शासक नीरो था। सन् १८० ई० के पश्चात् रोम साम्राज्य का द्रुतगति से पतन प्रारम्भ हो गया। रोम में थोड़े ही योग्य शासक हुए। समाज में निर्धन व्यक्तियों तथा पीड़ित कृषकों की दशा शोचनीय थी। इन्हें अनेक आक्रमणों का भी सामना करना पड़ा। रोमन अधिकारियों की निर्दयता, अत्याचार और शोषण की नीति भी साम्राज्य के विघटन का कारण बनी। जर्मन जातियों तथा हूणों के आक्रमणों ने इस विशाल साम्राज्य की जड़ों को खोखला कर दिया और सन् ४७६ ई० में महान रोमन साम्राज्य का पश्चिमी भाग समाप्त हो गया।

रोम की सभ्यता:—आधुनिक संसार के लिए रोमन साम्राज्य की बड़ी महत्वपूर्ण

देन है। यद्यपि हम रोम की कला, साहित्य तथा दर्शन में मौलिकता का नितान्त अभाव पाते हैं किन्तु यह कारण उसकी महत्ता को कम नहीं कर सकता है। वास्तव में रोम द्वारा ही यूनानी संस्कृति की रक्षा हो सकी और पश्चिमी संसार को यूनान की अमूल्य सांस्कृतिक विरासत रोम द्वारा ही प्राप्त हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार एलब्रिच के शब्दों में "साहित्य, कला, दर्शन और धर्म में समान रूप से रोम ने इस सेतु का निर्माण किया जिस पर होकर पुरातन काल के सर्वश्रेष्ठ विचार और सुन्दरतम आदर्श मध्यकाल और वहाँ से आधुनिक संसार तक पहुँचे।" अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन संस्कृति मुख्यतः यूनानी संस्कृति वर्तमान काल तक सुरक्षित रह सकी।

सामाजिक संगठन:—रोम का समाज दो वर्गों में विभाजित था। एक धनिक वर्ग पैट्रीशियन का तथा दूसरा निर्धन वर्ग प्लैबीयन का। दोनों वर्गों में महान अन्तर था। प्लैबीयन को कोई अधिकार मिले हुए नहीं थे। इनके साथ दुर्व्यवहार होता था। धनिक वर्ग विलासी जीवन व्यतीत करता था। तत्कालीन रोम का साम्राज्य हिंसाप्रिय था। वे अपने मनोरंजन के लिए हिंसक पशुओं के साथ मल्लयुद्ध करते थे जिसमें अनेक बार निर्दयतापूर्वक मनुष्य हिंसक पशुओं द्वारा मार दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त दुर्बल बच्चों को जन्म लेते ही मार दिया जाता था। धनिकवर्ग में बहुविवाह भी होता था।

साहित्य:—जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है सम्राट आगस्टस का काल स्वर्णयुग माना जाता है। उस समय के प्रमुख महान कवियों में वर्जिल तथा होरेस का नाम अग्रगण्य है। इतिहासज्ञों में लीवी प्रमुख था इसी प्रकार लेखकों में प्लीनी और सिनेका के नाम उल्लेखनीय हैं। रोम के साहित्य के प्रत्येक अंग पर यूनानी साहित्य की अमिट छाप विद्यमान है।

कला:—साहित्य की भांति रोमन स्थापत्य कला पर भी यूनान तथा एट्रुस्कन कला का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। रोम वालों ने स्थापत्य कला में मेहराबों का प्रयोग एट्रुस्कन प्रभाव के कारण ही किया। रोम निवासियों ने यूनान तथा एट्रुस्कन कला को और भी विकसित किया तथा एक नई शैली को जन्म दिया। तोरण मेहराब तथा गुम्बज ये रोमन स्थापत्य कला की विशेषताएँ हैं। चित्रकला तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में भी रोमन लोगों ने काफी उन्नति की।

व्यवसाय तथा व्यापार:—प्रारम्भ में रोम कृषकों का देश था। रोम वाले खेती बाड़ी के धन्धे को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। रोमन नेता केटो ने लिखा है, "जब हमारे पूर्वज किसी व्यक्ति की प्रशंसा करते तो उसे एक [illegible] अथवा [illegible] कहते और वे विश्वास करते थे कि इससे अधिक प्रशंसा नहीं हो सकती।" अब रोम के साम्राज्य का विस्तार हुआ और समुद्री मार्ग भी इसके [illegible] व्यापार की भी वृद्धि हुई। दूर दूर के देशों के साथ व्यापार होने लगा। पूर्व के देशों से बहुत माल आयात होने लगा और रोमन [illegible] की वस्तुएं [illegible] लगा।

विज्ञान:—विज्ञान के क्षेत्र में भी रोम वाले मौलिक देन नहीं दे सके फिर भी उनके द्वारा की गई प्रगति सराहनीय है। विज्ञान के क्षेत्र में विशेषतया रोम वालो ने व्यवहारिक व उपयोगी दृष्टिकोण को महत्ता दी न कि बौद्धिक सौन्दर्य की भावना को। अंकगणित व रेखागणित के क्षेत्र में इन लोगों ने विशेष रुचि अपनाई। प्लिनी योग्य तथा जीव-विज्ञान का विशेषज्ञ था। सिनेका ने वैज्ञानिक-दर्शन अपनाया। पश्चिम देशो की चिकित्सालयों की प्रथा रोम की ही देन है। रोम साम्राज्य में चिकित्सकों का महान आदर होता था। रोम मे जल-वितरण के लिए जलवाही नालियां बनी थी।

राजनैतिक संगठन:—इस क्षेत्र में रोम की विशेष देन रही है। यहां अनेक राजनैतिक प्रयत्न सफलता पूर्वक किये गये।

प्राचीन रोम में प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली थी। यहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना ५०८ ई० पू० में की गई थी। एथेन्स तथा यूनान के अनेक नगर राज्यों में इसी समय प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। रोमन नागरिको द्वारा नियुक्त दो कौन्सलो द्वारा शासन प्रबन्ध किया जाता था। संकट कालीन स्थिति में सारी सत्ता एक अधिनायक को सौंप दी जाती थी। कौन्सल को शासन प्रबन्ध में सहायता देने को एक सीनेट होनी थी। प्रजातंत्र में सीनेट का बहुत महत्व था। मतदान द्वारा बहुमत का निर्णय किया जाता था। निर्वाचन-प्रणाली द्वारा धारा सभाओं में सदस्यो की पूर्ति की जाती थी। अनेक राज्य-पदाधिकारियों की नियुक्ति भी निर्वाचन-प्रणाली द्वारा होनी थी। इस प्रकार की प्रजातंत्रीय प्रणाली संसार के लिए रोम की ही देन है। इतने बड़े पैमाने पर प्रजातन्त्र की स्थापना का यह पहला ही मौका था। जस्टीनियन नामक प्रसिद्ध रोमन ने एक विशाल कानून का संग्रह किया। यह संग्रह अपने समय की अपूर्व पुस्तक है। नगरों की अनेक प्रकार की देख भाल तथा प्रबन्ध के लिए नगरपालिकाएँ होती थी। रोम वालो ने शासन के क्षेत्र में काफी उन्नति की।

धर्म:—धार्मिक क्षेत्र में भी यूनान वालो का ही प्रभाव विशेष था। ये भी देवी-देवताओं को मनुष्यों के समान ही मानते थे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक पदार्थों की भेंट चढ़ाते थे। उनकी पूजा के लिए अच्छे-अच्छे मन्दिर बना रखे थे। देवताओं के साथ ही सम्राट की भी पूजा की जानी थी।

विश्व को यूनान व रोम की सभ्यताओं की देन

पश्चिमी जगत की वर्तमान सभ्यता यूनान व रोम की सभ्यता का ही परिवर्तित व परिष्कृत रूप है। विद्वानों का कथन है कि केवल मशीनो को छोड़कर सभ्यता की सभी बातें पश्चिमी जगत को यूनान व रोम से ही मिलीं। आधुनिक युग की अनेक बातों पर यूनान की स्पष्ट छाप है। यूनानी संस्कृति की निजी विशेषताएँ स्वतन्त्र्य प्रेम सौन्दर्योपासना और वैज्ञानिकता है। यूनानी किसी भी व्यक्ति को अत्याधिक रूप से शक्तिशाली या लोकप्रिय बनाने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि उन्हें इस बात का भय रहता था कि उनकी

स्वतन्त्रता का अपहरण न हो। आज का विश्व राजनीति विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान में यूनान का अपरिमित ऋणी है। मिस्र, बेबीलोनिया व भारत की तरह प्राचीन न होते भी विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में यूनान व रोम का उच्चतम स्थान है। जनतंत्रात्मक शासन प्रणाली, मतदान द्वारा राजनैतिक विषयों पर निर्णय, नाटक और रंग मंच के खेल, विश्व-प्रसिद्ध ओलम्पिक प्रतियोगिता आज भी हमें यूनान की स्मृति दिलाते हैं। यूनान की सुन्दर मूर्तियाँ आज भी योरप के कलाकारों के लिए आदर्श तथा प्रेरणा वस्तुएँ हैं। सुकरात, प्लेटो और अरस्तु के महान ग्रंथ आज भी न केवल पश्चिम का समग्र विश्व के लिए महान ग्रंथ हैं। कला के क्षेत्र में भी यूनान की भारी देन है। रोम की सभ्यता ने भी राजनैतिक प्रशासनिक व साहित्यिक क्षेत्र में पश्चिमी संसार को का दिया। प्रोफेसर हर्नशा के शब्दों में, "रोम ने विश्व शान्ति की स्थापना की। उस अद्वितीय कानून और न्याय की व्यवस्था को जन्म दिया। उसने वाणिज्य और व्यवसा का व्यापक प्रसार किया। उसने यूनानी संस्कृति की रक्षा की। सिकन्दर के उदाहरण पर चलकर उसने जाति और धर्म की सीमाओं को तोड़ दिया जो मानव मानव में भे उत्पन्न करती थी। रोम ने पूर्व व पश्चिम को एक दूसरे के निकट पहुँचाया और सम संसार में एकता की चेतना को व्यक्त किया जो आज भी पूर्णतया नष्ट नहीं हुई है।

अभ्यास सार

(१) यूनान तथा रोम की सभ्यता सबसे प्राचीन है।

(२) यूनान के निवासी आर्य जाति के हैं और वहाँ सबसे पहले नगर राज्यों की स्थापना हुई। फिर ५०० ई० पू० मे यूनान मे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। पेरीक्लीज नामक महान शासक के समय में यूनान मे हिरोडोटस तथा थ्यूसीडाइडीज इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान हुए।

(३) फारस के आक्रमण के बाद यूनानी नगर राज्यो में आपसी वैमनस्य बढ़ गया।

(४) यूनानी समाज तीन वर्गों में विभाजित था। यूनान की शासन प्रणाली चार प्रकार की रही है।

(५) आधुनिक युग की अनेक बातों पर हम यूनान व रोम की सभ्यता का स्पष्ट प्रभाव पाते हैं।

(६) रोम प्रारम्भ में प्रजातन्त्र था। रोम तथा कार्थेज का संघर्ष लगभग १०० वर्ष पूर्व तक चला।

(७) रोम में जूलियस सीजर एक बहुत योग्य सेना नायक था। उसके दत्तक पुत्र आगस्टस के समय में रोम का वैभव बहुत बढ़ा रोम का पतन इसलिये हुआ कि वहाँ कई दोष उत्पन्न हो गये।

(८) रोम द्वारा ही यूनानी संस्कृति की रक्षा हुई।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. Write a brief note on the civilization and culture of Greece and Rome.

यूनान व रोम की सभ्यता व संस्कृति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. How is Modern civilization effected by Greco Roman culture?

आधुनिक सभ्यता पर यूनानी व रोमन सभ्यता का क्या प्रभाव पड़ा?

अध्याय ३

Medieval European Civilization

मध्यकालीन योरोपीयन सभ्यता

(१) प्रस्तावना (२) सामन्तवाद (३) मध्यकाल में धर्म (४) धर्मयुद्ध (५) जर्मनराज्य (६) मध्यकालीन योरोपीय सभ्यता।

प्रस्तावनाः—प्राचीन कालीन सभ्यता तथा आधुनिक कालीन सभ्यता के मध्य की कड़ी मध्यकालीन सभ्यता कहलाती है। इतिहासकारों की मान्यता है कि छठी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक का समय मध्ययुग कहलाता है। यह वह काल था जब कि रोम साम्राज्य का पतन हो रहा था और आने वाली नई नार्डिक जाति में एक नवीन सभ्यता की आकृति हो रही थी। यह नवीन सभ्यता ही योरप की तथा योरप द्वारा लगभग समस्त विश्व की आधुनिक सभ्यता का रूप लिये हुए थी।

मध्यकाल की प्रमुख विशेषता सामन्तवाद थी। सामन्तवाद मध्यकाल की तथा इस युग की विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियों और दशा का स्वाभाविक परिणाम था। इस काल में केन्द्र की शक्ति बहुत कमजोर हो चुकी थी। देश में सुख शान्ति का अभाव था तथा चारों ओर अराजकता दृष्टिगोचर हो रही थी। स्वभावतया स्थानीय जागीरदार तथा सर्दार समय का लाभ उठाने के लिए खड़े हो गये और शक्तिशाली हो गये। जहाँ जहाँ उनका आधिपत्य बढ़ता गया वहाँ वहाँ जनता को वे लोग रक्षा का वचन देते चले गये और उनसे इस बात का वचन लेते गये कि उन्हें उनका शासन स्वीकार है।

ऐसी भयानक तथा अव्यवस्थित राजनैतिक दशा में सामन्तों का जोर बढ़ता गया और सामन्तवाद का जन्म हुआ। मध्यकाल में दूसरी विशेष बात ईसाई धर्म का प्रचार थी। कला, व्यापार तथा साहित्य के क्षेत्र में भी इस युग में पर्याप्त उन्नति हुई।

सामन्तवादः—सामन्तवाद राजतन्त्र का छोटा रूप है। यह वह शासन प्रणाली है जिसके अन्तर्गत स्थानीय शासक अथवा सामन्त अपनी ही सीमा में राजा के समान अधिकारों का प्रयोग करता था। साधारणतया सामन्तवाद व जागीरदारी को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है किन्तु यह भूल है। जागीरदारी प्रथा सामन्तवाद की प्रथा का ही एक अंग है। मध्यकालीन योरप में बिना जागीरदार बने हुए भी लोग केवल अपने सैनिकबल के आधार पर छोटे से भू भाग पर अधिकार करके सामन्त बन जाते। सामन्त एक प्रकार से एक छोटा सा राजा ही था। प्रायः ऐसा भी होता था कि राजा अपने अधीनस्थ राज्य की भूमि को अपने स्वामिभक्त सैनिकों तथा सर्दारों में बाँट देता था। वे सैनिक अथवा सरदार उस भू भाग के स्वामी बन जाते थे। कभी कभी ये स्थानीय सरदार अपनी शक्ति तथा अपने सैनिकों की सहायता के द्वारा किसी

अन्य भू-भाग पर अधिकार जमा लिया करते थे और वहाँ राजा ही के समान समस्त अधिकारों का प्रयोग भी कर लिया करते थे।

इस प्रकार की यह प्रथा ढलते हुए रोमन साम्राज्य के भग्नावशेषों पर जन्मी थी। रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त योरप में राजनैतिक अव्यवस्था व अराजकता फैल गई। चारों ओर अशान्ति छा गई। जब कभी ऐसी अराजकता फैलती है तो साधारण जनता का जीवन घोर दुःखमय व असुरक्षित हो जाता है और जनता ऐसे व्यक्ति की ओर लालायित हो निहारती है जो समर्थ व शक्तिशाली हो और जो उनकी रक्षा कर सके। इसके बदले में वे उस व्यक्ति की आधीनता स्वीकार करने को तत्पर रहते थे। यही सामन्तवाद की उत्पत्ति की दृढ़ नींव थी।

संगठन के हिसाब से सामन्तवादी प्रथा बड़े पेचीदे ढंग से संगठित थी। इस संस्था की संगठित शृंखला की सबसे निचली कड़ी किसान थे। किसानों को ही अराजकता के समय सबसे अधिक भय रहता था। अतः वे सबसे पहले आसपास के शक्तिशाली व्यक्ति को ढूँढ कर उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे। ऐसा व्यक्ति इन लोगों की सुरक्षा का सारा भार अपने ऊपर ले लेता था। वह इन्हें लूट मार से बचाता था। आवश्यकता पड़ने पर यह सर्दार भी किसी अन्य बड़े सर्दार को शरण ले लेता था क्योंकि उसे भी अपनी रक्षा की चिन्ता रहती थी। इस प्रकार सामन्तवादी संस्था क्रमबद्ध शृंखलाओं द्वारा बंधी हुई थी जिसमें सबसे ऊपर राजा होता था और सबसे नीचे कृषक होता था। बीच के व्यक्तियों में हर व्यक्ति किसी वर्ग का रक्षक अथवा किसी व्यक्ति व वर्ग द्वारा रक्षित होता था। अतः यह संस्था रक्षक तथा रक्षित सम्बन्ध वाले व्यक्तियों की एक प्रकार की शृंखला थी।

जहाँ तक राजा तथा इन सामन्तों के सम्बन्ध का प्रश्न था—राजा अपनी भूमि इन सरदारों में बाँट देता था। इसके बदले मे सरदार आवश्यकता पड़ने पर राजा को सैनिक सहायता देते थे। पुनः ये बड़े सर्दार अथवा सामन्त अपने हिस्से की भूमि में से छोटे सामन्तों को कुछ भूमि दे दिया करते थे। ये छोटे सामन्त खेती के लिए कृषकों को भूमि दे दिया करते थे। पादरी स्टब्स का कथन है कि, "भूमि कर के माध्यम से पूर्णतया संगठित यह एक ऐसा समाज था जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति सेवा और रक्षा के कर्त्तव्य से बँधा होता था। सामन्त का कर्त्तव्य अपने आसामी की रक्षा करना था और आसामी का कर्त्तव्य अपने सामन्त की सेवा करना था।"

कृषक अपनी उपज का कुछ भाग सामन्त को दे देता था। खेती करते हुए भी किसान केवल मजदूर की हैसियत से ही काम करता था। भूमि पर उसका स्वामित्व नहीं होता था। वह एक प्रकार का दास था, जिसका जीवन लक्ष्य हर प्रकार से अपने सामन्त की सेवा करना था। सामन्त उसकी रक्षा करता था। नार्डिक आर्यों में यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी और मध्यकालीन योरप में प्रत्येक भाग में यह प्रथा पाई जाती थी।

इस प्रथा का सबसे बड़ा गुण यह था कि इसने मध्य-युग में फैली अराजकता तथा अव्यवस्था को दूर किया। इस प्रकार शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करके इस संस्था ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की। इसके अतिरिक्त राज्य भी छोटे छोटे भागों में विभाजित हो गये जिससे उनका शासन प्रबन्ध ठीक तरह से चलने लगा। बड़े बड़े राज्यों का सुचारु रूप से शासन चलाना उस समय की परिस्थितियों में कठिन कार्य था। सामन्तवाद से अनेक आर्थिक लाभ भी हुए। अब भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में नहीं बट सकती थी सामन्तों के उत्तराधिकारी भूमि के छोटे छोटे टुकड़े नहीं कर सकते थे। सामन्तो संरक्षण में व्यापार तथा कला-कौशल की पर्याप्त उन्नति हुई। अनेक नये नगर बसाये ग

सामन्त प्रथा दोषयुक्त भी थी। इस प्रथा ने स्थानीयता की भावना को बढ़ाया। इससे देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना को गहरा धक्का लगा। योरप का समाज क्रमः तरीके से अनेक वर्गों में बँट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि गहरी सामाजि असमानता फैल गई। कृषक तथा जन साधारण की दशा भी अत्यन्त शोचनीय होगई सामन्तवाद का जन्म अराजकता रोकने के लिए हुआ था। किन्तु काफी सीमा त सामन्तवाद ने योरप में एक प्रकार की अराजकता को फैलाने में सहयोग दिया। साम सदा इस टोह में रहते थे कि किस प्रकार पड़ौसी सामन्त के राज्य को हड़पा जावे कहीं कहीं राज्य को कमजोर पाकर ये लोग अपना स्वतन्त्र राज्य भी कायम कर लेते थे कृषक अथवा श्रमिक जिन्हें 'सर्फ' भी कहते थे शोषित किये जाते थे। उपज का ब भाग सामन्त को देने के उपरान्त भी कृषकों को सामन्तो की अनेक प्रकार से सेवायें करनी पड़ती थीं। 'सर्फ' वर्ग निरन्तर सामन्तों के बन्धनों से मुक्त होने का प्रयत्न करता था। इसी प्रकार व्यापारी भी यह मानते थे कि राजाओं अथवा सामन्तों के संरक्षण में व्यापार की अभिवृद्धि नहीं हो सकती। छोटे सामन्त तथा सैनिकों का इस प्रथा को बड़ा भारी समर्थन प्राप्त था। इन लोगों का स्वार्थ उनका समर्थन करने में ही पूरा होता था।

सामन्त प्रथा इस काल में समस्त योरप में खूब फली फूली। सामन्तों ने अपने रहन-सहन, खान-पान वस्त्र परिधान रीति-रिवाज, सब अपने ढंग के बना लिए। उनकी महिलाओं के रहने की, बाहर भीतर आने जाने आदि की पृथक प्रथाएँ बन गईं। उनके अनेक सेवक, दास-दासियाँ होते थे। उनका प्रमुख सैनिक-सेवक 'नाइट' कहलाता था जो वीरता, स्वामिभक्ति आदि का प्रतीक होता था। इस 'नाइट' वर्ग में इन सब गुणों से परिपूरित भावना को 'शिवेलरी' कहते थे। इस प्रकार यह प्रथा समस्त योरप में छाई हुई थी।

मध्यकाल में धर्म—मध्ययुग की दो विशेषताएँ थीं—सामन्तवाद और ईसाई धर्म के प्रसार से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ। सामन्तवाद का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अब हम ईसाई धर्म के बारे में विचार करेंगे। योरप में मध्ययुग का इतिहास इन दोनों प्रवृत्तियों के चारों ओर घूमता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

मध्यकाल में समस्त योरुप में ईसाई धर्म ही प्रसारित था। ईसाई धर्म के अभी तक फिरके नहीं बने थे। वह केवल एक कैथोलिक रूप में ही जाना जाता था। चौथी शताब्दी में रोम के प्रसिद्ध सम्राट ने ईसाई धर्म को अपना लिया था। फलस्वरूप यह धर्म न केवल रोमन साम्राज्य में अपितु योरुप के अन्य भागों में भी फैल गया था। नार्डिक आक्रमणकारियो ने भी इस धर्म को स्वीकार कर लिया था। मध्यकाल में ईसाई धर्म का सर्वोच्च अधिकारी पोप होता था जिसे न केवल धार्मिक अपितु राजनैतिक क्षेत्र में भी व्यापक अधिकार प्राप्त थे। यहां तक कि इस काल में सम्राट बनाना अथवा सम्राट का पदच्युत करना पोप के लिए मामूली खेल था। पोप के अपने न्यायालय होते थे। अतः मध्यकाल में पोप बहुत बड़ी सत्ता का स्वामी होता था।

जिस प्रकार भारत में बौद्ध मठो की स्थापना की गई थी ठीक उसी प्रकार मध्यकालीन योरुप में भी मठों की स्थापना ऐसे मनुष्यो के हितार्थ की गई जो सांसारिक बन्धनों को त्याग कर भगवान के मनन, चिन्तन व उसकी आराधना में व्यतीत करना चाहते थे। यहां ईसाई धर्म के धर्म प्रचारक रहते थे। यहाँ धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन के अतिरिक्त उन्हें धर्म प्रचार की शिक्षा भी लेनी पड़ती थी। इन मठों में बडे बड़े विद्वान पादरी व धर्म प्रचारक फले फूले। इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध भिक्षु पादरी वनेरेबिल बीड इन मठों में ही रहा था। सन् ५२६ ई० में सन्त बेनिडिक्ट ने इन मठो का संगठन किया था। इन मठों द्वारा शिक्षा का काफी प्रचार किया गया। अपाहज, दुःखी, रोगी अथवा असहाय व्यक्तियों को भी इन मठों द्वारा आश्रय मिलता था। सन्त फासिस तथा संत डोमिनिक ने भी ऐसे मठों की स्थापना में काफी योग दिया था।

ऐसे मठ प्रायः प्रारम्भ में बड़ा सुन्दर व सदुपयोगी कार्य करते हैं और शनैः शनैः विलासिता तथा आलस्य के केन्द्र बन जाया करते हैं। ठीक यही दशा इन ईसाई मठो की भी हुई। स्वयं पोप व पादरी विलासमय जीवन व्यतीत करने लगे। मठो का प्रारम्भिक जोश सेवा व त्याग समाप्त हो गये। धर्म के नाम पर आडम्बर व अन्धविश्वास घर कर गये। पादरियों का इतना पतन हो गया कि वे लोग ईसाइयों को स्वर्ग में स्थान सुरक्षित कराने के लिए क्षमा पत्र बेचने लगे। इस प्रकार अनेक दोष और भी आने लगे और कैथोलिक धर्म का काफी पतन हो गया। इस प्रकार के धर्म व धर्म उपासको व प्रचारकों का विरोध प्रारम्भ हो गया। यह विरोध ही धर्म-सुधार-आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। यह आन्दोलन बड़ी सच्ची भावनाओं को लेकर एक व्यापक संगठित तरीके से किया गया। इसके कारण ही पोप की सत्ता का ह्रास हो गया और गिरजाघर व पादरियों की सत्ता कम हो गई। सुधरे हुए नये धर्म का नाम प्रोटेस्टेन्ट धर्म पड़ा। आगे चलकर पोप ग्रीगोरी ग्यारहवें ने कैथोलिक धर्म तथा पोप की खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह अपने प्रयास में पूर्णतया सफल नहीं हो सका।

धर्म-युद्धः—जिस प्रकार मध्यकाल में ईसाई धर्म का प्रसार व प्रचार हुआ उसी प्रकार अरब के मुहम्द साहब द्वारा प्रतिपादित इस्लाम धर्म भी प्रसारित होने का प्रयत्न कर

रहा था। इस्लाम भी संसार के अनेक भागों में द्रुतगति से फैला। इसका कारण यह था कि इसके अनुयायियों में अदम्य उत्साह व लगन थी। इन लोगों ने इस्लाम को राजनैतिक विजय के साथ साथ प्रसारित करने का सफल व बर्बर प्रयास किया। इस्लाम ईसाइयों के पवित्र स्थानों तक भी पहुँच गया और वास्तव में मध्य युग में इस्लाम ईसाई धर्म के लिए खतरा बन गया। ईसाइयों के पवित्र स्थान जेरूसेलम तक मुसलमानों का अधिकार हो गया। स्वभावतः ईसाइयों ने अपने पवित्र स्थान को मुसलमानों से कराने के भरसक प्रयत्न किये। पोप व होली रोमन सम्राट इस प्रसार को रोकना च थे। अतः उन्हें निरन्तर युद्ध करने पड़े। ये युद्ध ही धर्म-युद्ध के नाम से जाने जाते

इन युद्धों के कई कारण थे। सन् १०७० ई० में सल्जुक तुर्कों ने तलवार बल पर जेरूसेलम पर अपना अधिकार जमा लिया। तीर्थयात्रा पर जाने वाले ईसा के साथ मुसलमान भांति भांति के अत्याचार करते थे। सैन्ट पीटर ने ईसाइयों का ध्य उन अमानवीय अत्याचारों की ओर आकृष्ट किया जो मुसलमानों द्वारा किये जाते थे ईसाई तथा मुसलमान दोनों ही धार्मिक क्षेत्र मे असहिष्णु थे। इधर पोप भी अपने प्रभ तथा अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिए ईसाइयों को मुसलमानो के विरुद्ध भड़का था। पोप को यह भी विश्वास था कि यदि मुसलमान हरा दिये गये तो पूर्व में भी उसक प्रभाव फैल जावेगा। इसके अतिरिक्त जैसा कि कहा जा चुका है इस्लाम का द्रुतगति प्रसारित होना ईसाइयों के लिए संकट बन गया था।

इस प्रकार के धर्मयुद्ध चार हुए। पहला युद्ध सन् १०९६ ई० से लेकर १०९९ ई० तक चला जिसमें अनेक निहत्थे ईसाई मारे गये किन्तु सामन्तों की सहायता से सन् १०९९ ई० मे जेरूसेलम पर ईसाइयों का अधिकार हो गया। सन् ११८७ ई० में दूसरे धर्म-युद्ध के फलस्वरूप जेरूसेलम पुनः मुसलमानो के हाथों में चला गया। तीसरे धर्म युद्ध में फ्रांस तथा इङ्गलैण्ड के शासकों ने भी भाग लिया था। दोनों देशों की संयुक्त सेना ने साइप्रस पर अधिकार जमा लिया था। फ्रांस और इंगलैण्ड में आपसी सम्बन्ध बिगड़जाने से इस दिशा में आगे नही बढ़ा गया और सन्धि के फलस्वरूप ईसाई जेरूसलम आने जाने लगे। अन्तिम धर्मयुद्ध सन् १२०२ ई० से सन् १२०४ ई० तक होता रहा किन्तु कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। धर्मयुद्धों से कोई उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जेरूसलम पर मुसलमानों का ज्यों का त्यों अधिकार बना रहा किन्तु मुसलमान योरप में और आगे नहीं बढ़ सके।

इसके अतिरिक्त धर्म युद्धों का सबसे बड़ा परिणाम तो यह हुआ कि पूर्व व पश्चिम में सम्पर्क बढ़ गया। नये नये व्यापारिक मार्ग खोज कर निकाले जाने लगे जिससे व्यापार खूब बढ़ने लगा। योरप में संगठित होकर राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई और योरप वाले अब वीर तथा योद्धा बन गये। प्रसिद्ध इतिहासकार ट्रेवेलियन का कहना है कि "योरप के राष्ट्रों तथा जातियों ने इन धर्म युद्धों के रूप में पूर्व की ओर बढ़ने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। इन युद्धों के परिणाम स्वरूप योरप को न जेरूसलम मिल सका और न

ईसाईयों के दोनों सम्प्रदाय एक हो सके। 'इनके स्थान पर योरप वासियों ने पूर्वी देशों से कला कौशल तथा विज्ञान की बहुत सी बातें सीखीं।'

जर्मन राज्यः—मध्यकालीन योरप की तीसरी विशेषता अर्ध-सभ्य जर्मन जातियों का योरप भर में प्रसारित हो जाना है। चौथी शताब्दी के प्रथम चरण में गॉल नामक एक जर्मन जाति ने इटली पर एक भयंकर आक्रमण किया। इसका परिणाम घातक सिद्ध हुआ और रोमन सेना युद्ध में पराजित हुई। शनैः शनैः ये जर्मन जातियाँ रोमन साम्राज्य के सम्पूर्ण पश्चिमी भाग की मालिक बन बैठीं। इन जर्मन जातियों में मुख्य चार जातियाँ थी—पूर्वी गोथ, पश्चिमी गोथ, फ्रेंक तथा वेंडाल। इनमें पूर्वी गोथ इटली के शासक बने, पश्चिमी गोथ स्पेन के शासक बने और फ्रेंक जाति ने फ्रांस में राज्य स्थापित किया। वेंडाल जाति ने योरप के बाहर अपना साम्राज्य स्थापित किया।

इन चार जर्मन जातियों में सबसे अधिक योग्य फ्रेंक थे। इन्होंने वर्तमान फ्रांस, ऑस्ट्रिया तथा पश्चिमी जर्मनी पर अपना अधिकार कर लिया। फ्रेंक जाति में ही विश्व-इतिहास प्रसिद्ध चार्ल्स महान अथवा शार्लमेन उत्पन्न हुआ था। यह एक महान वीर योद्धा था जिसने पचास से अधिक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। शासन प्रबन्ध व संगठित शक्ति में यह शासक अद्वितीय था। यह विद्वान तथा कला प्रेमी भी था। स्पेन तथा इंगलैण्ड को छोड़कर लगभग समस्त पश्चिमी योरप पर उसने अपना अधिकार जमा लिया था। एक प्रकार से उसने प्राचीन रोमन साम्राज्य की पुनर्स्थापना की थी। अपने पचास वर्ष के शासन काल में उसने कला, विद्या व शिक्षा की उन्नति का पूरा पूरा प्रयत्न किया था। उसके उत्तराधिकारी वीर नहीं थे, अतः उसका महान साम्राज्य उसकी मृत्यु के उपरान्त छिन्न भिन्न हो गया। फिर भी एक हजार वर्ष तक यह पवित्र रोमन साम्राज्य किसी न किसी रूप में चलता ही रहा और अन्त में महान् नेपोलियन ने सन् १८०६ ई० में इस नाम मात्र के साम्राज्य को समाप्त कर दिया था।

मध्यकालीन योरोपीय सभ्यता

समाज—मध्यकाल में योरप में सामन्तवाद फैल चुका था अतः समाज भी सामन्तवादी प्रथा पर ही आधारित था। सबसे निम्न वर्ग कृषकों अथवा मजदूरों का होता था। इन्हें अपने गुजारे के लिए सामन्तों की दया पर रहना पड़ता था। अपनी रक्षा के लिए भी इन्हें किसी शक्तिशाली सामन्त की आधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी। खेती के लिए सामन्त से ही भूमि ली जाती थी जिस पर कृषकों का स्वामित्व नहीं होता था। यह सामन्तवादी समाज की रूप रेखा थी। ऐसे समाज में इस निम्न वर्ग की अर्थात् कृषकों व श्रमिकों की दशा अच्छी नहीं थी। दासों की दशा और भी बुरी थी। सामन्त स्वयं बड़े आनन्द से विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि यह अन्धकारमय युग था तथापि इस काल में ईसाई धर्माधिकारियों ने शिक्षा और सभ्यता का प्रचार चालू रखा।

शासन व्यवस्था:—सर्वत्र सामन्तवादी प्रथा का प्रचलन था जिसके अन्तर्गत शासन प्रणाली स्थानीय ही होती थी। इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत स्थानीय शासक सम्राट, राजा अथवा अन्य केन्द्रीय शक्ति को प्राप्त होने वाले अधिकारों का प्रयोग करते थे। फलस्वरूप सामन्त· राजा के समस्त अधिकारों का उपयोग करते थे। केन्द्रीय शासन जैसी कोई चीज नहीं थी। सामन्त अपनी सेना रखते थे तथा अपना दरबार लगाते व अपना पृथक न्यायालय रखते थे।

धर्म:—इस समय योरप में ईसाई धर्म ही प्रचलित था। ईसाई धर्म के अन्य फिरके नहीं बने थे—केवल कैथोलिक धर्म की ही मान्यता थी। इस समाज में एकेश्वरवाद प्रचलित था तथा पोप को संसार में ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। ईसाई धर्म में अनेक रूढ़ियाँ व अन्धविश्वासों का समावेश हो गया था जिससे धर्म सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और पोप व पादरियों की ऐहिक सत्ता को धक्का लगा। इस युग में अनेक सन्तों का भी प्रादुर्भाव हुआ। इन सन्तों ने सांसारिक सुखों को छोड़कर सरल धार्मिक जीवन व्यतीत करने पर बल दिया। सन्त परंपरा के अन्तर्गत बेनेडिक्ट, ऑगस्टीन, फ्रांसिस, वॉल्टर हिल्टन, टॉमस अक्वीनस आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

व्यापार व व्यवसाय:—इस काल में व्यापार व व्यवसाय की आशातीत प्रगति हुई। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, धर्म युद्धों के कारण पूर्व व पश्चिम का सम्पर्क बढ़ा। नगरों का विकास भी द्रुतगति से हुआ। व्यापारियों ने बढ़ते हुए व्यापार के कारण अपने आपको गिल्डों में संगठित किया। फिर भी यातायात के साधन सुगम व सुलभ नहीं थे। यात्रा बहुधा खच्चरों घोड़ों बैलगाड़ियों द्वारा की जाती थीं और व्यापारिक माल का आयात व निर्यात भी इन्हीं साधनों के द्वारा होता था। नदियों में नावों द्वारा यात्रायें व व्यापार किया जाता था। यातायात सुरक्षित नहीं था और यदा कदा यात्री व व्यापारी लूट लिये जाते थे। सोने व चांदी की मुद्रा का प्रचलन था। अधिकांश नगरों में ऊनी कपड़ा बुनना, तलवार, ढाल तीरकमान व अन्य हथियारों के बनाने का काम किया जाता था। सुन्दर भवन भी निर्मित किये जाते थे।

कला:—इस युग में कला का विकास भी हुआ। मध्य कालीन गिरजाघर स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। रोमन व गोथिक कला का भी पर्याप्त प्रचलन था। समस्त कला पर ईसाई धर्म का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सामन्त लोग कलाकारों को राज्याश्रय देते थे। चित्रकला, मूर्तिकला, तथा संगीत कला ने पर्याप्त प्रगति की। आज भी हमें तत्कालीन चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं।

शिक्षा:—यद्यपि मध्ययुग अन्ध विश्वास का युग था तथापि पादरी व मठों के निवासी ज्ञान-विज्ञान को बढ़ाने में तल्लीन रहते थे। इन पादरियों के प्रयत्नों के कारण ही बारहवीं व तेरहवीं शताब्दी में योरप में विश्व-विद्यालयों

की स्थापना हुई । सन् १२४८ ई० में रोम में बोलोग्ना, सन् १२५३ ई० में इंगलैंड में आक्सफोर्ड और १२६० में कैम्ब्रिज विश्व विद्यालयों की स्थापना हुई । अनेक अरबी ग्रन्थों का लैटिन में अनुवाद किया गया जिसके फल स्वरूप योरप में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ । अनेक नये आविष्कार जैसे भाप की पतवार, जहाजों में दिग्-दर्शक का प्रयोग, यंत्रों द्वारा चालित घड़ी, चश्मे, बारूद, कागज, छापाखाना आदि किये गये । बड़े व्यापार के कारण स्थान-स्थान पर माल निर्माण के लिए कारखानों की स्थापना की गई ।

अतः अन्धकारमय होते हुए भी मध्यकालीन योरप ने सभ्यता के क्षेत्र में पर्याप्त विकास किया ।

अध्याय सार

(१) ईसा की छठी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के काल को मध्यकाल के नाम से जाना जाता है ।

(२) इस काल की प्रमुख तीन विशेषताएँ थीं:— सामन्तवाद, ईसाई धर्म का प्रचार तथा धर्म तन्त्र बर्बर जातियों का समस्त योरप में छा जाना ।

(३) सामन्त एक प्रकार का छोटा राजा होता था । सामन्त प्रथा का जन्म रोमन साम्राज्य के भग्नावशेषों पर हुआ था । इस प्रथा का संगठन काफी पेचीदा था । सामन्तवाद के कारण मध्ययुग में ऐसी अराजकता दूर हो गई । इस प्रथा में अनेक गुण व दोष थे ।

(४) मध्यकाल की दूसरी विशेषता ईसाई धर्म के प्रचार से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ थीं । इस काल में चार बड़े धर्म-युद्ध हुए जिनमें लाखों ईसाई मारे गये । येरुसलम आदि का पतन बना रहा । किन्तु इसका असर हुआ कि इस्लाम योरप में आगे प्रसारित न हो सका ।

(५) इस काल में पोप-तन्त्र अर्थात् पादरी समस्त योरप में छा गई । इन पादरियों में इससे लोभ धन शक्ति थी ।

(६) मध्ययुग में कला का भी समुचित विकास हुआ । स्थापत्य गोथिकवाली कला पर आधारित था । इसी प्रकार रोमन इमारतें भी प्रसिद्ध हो गयी थीं । ईसाई धर्म का प्रचार था । किन्तु बेनेडिक्ट्स तथा संत में आये गुणों के कारण यहाँ सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था । व्यापार उन्नत अवस्था में ही रहा था किन्तु व्यापार के प्रसार अव्यवस्थित थे । शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति हुई । नये विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. Write a note on the characteristics of feudalism in Medieval Europe?

मध्यकालीन योरप में सामन्तवाद की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

2. Describe the salient features of Medieva European civilization.

मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

3. Write down the position of Medieval church.
मध्यकालीन ईसाई धर्म की स्थिति पर प्रकाश डालिए ।

;y ir

अध्याय ४

"Salient features of Indus valley and vedic civilizations"

सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा वैदिक सभ्यता की विशेषताएँ

(१) प्रस्तावना (२) सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा उसकी विशेषताएँ (३) वैदिक सभ्यता तथा उसकी महत्ता (४) उपसंहार ।

प्रस्तावना:—आधुनिक युग खोज का युग है। मनुष्य निरन्तर नई जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसे वर्तमान स्थिति से सन्तोष नहीं होता है। अतः वह भूत और भविष्य की जानकारी में तल्लीन रहता है। नये नये आविष्कार, नई नई खोजें तथा नये नये सिद्धान्त उसके रोचक विषय हैं। उसे इस बात की जानकारी का कौतूहल रहता है कि उसके पुरखे कौन थे, कहाँ से आये तथा कैसा जीवन यापन करते थे ? आज तो यह सब अनुसन्धान बड़े वैज्ञानिक तरीके से होने लगे हैं। इसी क्रम के अन्तर्गत सिन्धु घाटी की खुदाई कर जो एक नई सभ्यता का पता लगाया गया, उसका अध्ययन बड़ा रोचक है।

हमारे भारत का प्राचीनतम इतिहास उपलब्ध जानकारी के अनुसार वैदिक काल अर्थात आर्यों के आगमन से प्रारम्भ होता था। इससे पहले की हमें कोई जानकारी नहीं थी। सन् १९२२ ई० की खुदाई के बाद मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में इस प्रकार के अवशेष मिले जो मेसोपोटेमिया, क्रीट तथा मिश्र की सभ्यता से समता रखते थे। जिस प्रकार आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व नील, दजला तथा फरात नदियों के किनारे उच्चतम संस्कृति फली फूली, ठीक उसी प्रकार सिन्धु नदी के किनारे भी एक बहुत उच्चकोटि की संस्कृति फली फूली थी।

आधुनिक भारतीय संस्कृति जातियों और युगों की सामूहिक देन है। इस संस्कृति का निर्माण और विकास विविध जातियों के योग से हुआ है। भारत में विभिन्न जातियाँ व शक्तियाँ परस्पर विरोध कर एक होगई और इस प्रकार अनेक विरोधी दलों की विशेषताओं ने मिलकर संस्कृति का रूप लिया। सिन्धु घाटी की सभ्यता ने कहां तक आने वाली सभ्यताओं को प्रभावित किया, यह बतलाना तो कठिन है, किन्तु इतनी विशाल संस्कृति बिना प्रभाव डाले ही लोप हो जाय यह भी साधारणतया मानने जैसी बात नहीं है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के बाद भारत में हमें वैदिक सभ्यता का प्रकाश मिलता है। हम आर्यों की सभ्यता को ही वैदिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं क्यों

कि आर्यों की सभ्यता के बारे में हमारी जानकारी के मुख्य आधार वेद हैं। भारत की वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति पर सबसे अधिक प्रभाव आर्यों की सभ्यता का ही पड़ा है। हम वर्तमान हिन्दू धर्म को कुछ अंशों में परिवर्तित वैदिक धर्म मान सकते हैं। आज भी वेद हिन्दुओं की पवित्र धार्मिक पुस्तकें हैं। वेदों को संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना गया है क्योंकि वेद आदिग्रन्थ हैं, इस कारण इनका धार्मिक व ऐतिहासिक क्षेत्रों में ऊँचा महत्व है। हड़प्पा और मोहन-जो-दड़ो के ध्वंसावशेषों से जिस संस्कृति का ज्ञान होता है उससे पूर्व के इतिहास का अभी तक पता नहीं लग सका है, किन्तु इतिहास उसके बाद ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। शृंखलाबद्ध इतिहास के लिए काल-निर्णय अति आवश्यक हो जाता है। वैदिक-काल निर्णय अब तक कई विद्वानों द्वारा किया गया है, किन्तु प्रत्येक को अपने मत की पुष्टि के लिए अनुमान का सहारा लेना पड़ा है। सच तो यह है कि निश्चित काल-निर्णय इतिहासज्ञ अभी तक कर ही नहीं पाये हैं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा उसकी विशेषताएँ:—भारतवर्ष के अतीत का सर्व प्रथम चित्र हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता में मिलता है और इसके खण्डहर सिन्ध के मोहन-जो-दड़ो (शवों की राशि) और पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा आदि नगरों में ३२५० तथा २६५० ई० पू० की सभ्यता पर प्रकाश डालते हैं। मोहन-जो-दड़ो सिन्ध के लरकाना जिले में तथा हड़प्पा लाहौर और मुल्तान के बीच मांटगोमरी जिले में स्थित हैं। सन् १६२१-२२ में श्री दयाराम सहानी तथा श्री आर० डी० बनर्जी ने खुदाई कर अनुसन्धान का कार्य चालू रखा जो दस वर्षों तक चलने के उपरान्त आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्थगित कर दिया गया। जिस काल के अवशेष हमें उपलब्ध हुऐ हैं, उस समय सिन्ध आज की तरह रेगिस्तान नहीं था अपितु वहाँ घना जंगल था और पानी की प्रचुरता थी। मोहन-जो-दड़ो दृश्य की सतह ६० से २० फीट की ऊँचाई तक ढेरों में दबी हुई थी। जिस समय इन ढेरों की चोटी से पानी की सतह तक खुदाई की गई तो सात सतह निकली जिससे जाहिर होता है कि वहाँ पर सात बार नगर बसाया गया। आज तो वहाँ केवल भग्नावशेष ही प्राप्त हैं, किसी समय वहाँ पर एक समृद्धशाली और वैभवशाली नगर रहा होगा। नगर निर्माण एव सुनिश्चित योजनानुसार किया गया था जिसमें चौड़ी समकोण पर एक दूसरे को काटती हुई पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण को जाती हुई सड़कें बनी हुई थीं।

हड़प्पा के खंडहर रावी नदी के तटवर्ती सब खंडहरों से अधिक विशाल हैं। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा से उतर कर चन्हुदड़ो सिन्धु सभ्यता का तीसरा केन्द्र था। इसके खण्डहर मोहन-जो-दड़ो से ८० मील दक्षिण पूर्व सिंध के नवाबशाह जिले मे विद्यमान हैं। ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व सिन्धु नदी जो अब चन्हुदड़ो से बारह मील पश्चिम में है, नगर में होकर बहती थी। यहाँ से ३० मील दूर बलूचिस्तान की सीमा पर कीर्थर पर्वतमाला है। इसमें एक दर्रा है, जहाँ होकर सिन्ध के लोग स्थलमार्ग

से ईरान और अन्य देशों से व्यापार करते थे। आज भी इस दर्रे का इसी प्रकार प्रयोग होता है। अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन चन्हूदड़ो अवश्य ही एक प्रसिद्ध वाणिज्य का केन्द्र रहा होगा।

सिन्ध का काठा और उसके आसपास का प्रान्त जो अन्त में सिन्धु सभ्यता के प्रभाव में आया एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है। यह एक हजार मील लम्बा और ४०० मील के लगभग चौड़ा है। आज भी सिन्धु सभ्यता के अवशेष राजस्थान व गुजरात में प्राप्त हो रहे हैं। अभी हाल में राजकोट शहर के समीप आजी घाटी में की गयी खुदाई से सात स्थानों पर हड़प्पा काल के अवशेष मिले हैं। खुदाई के फलस्वरूप सौराष्ट्र क्षेत्र की तीन नदियों के किनारे हड़प्पा एवं प्राचीन काल के अवशेष मिले थे। गुजरात राज्य में अब तक लगभग सौ स्थानों पर हड़प्पा काल के अवशेष मिल चुके हैं। इन अवशेषों में सबसे महत्वपूर्ण हैं हड़प्पाओं का विशाल बन्दरगाह जो अहमदाबाद से चालीस मील की दूरी पर मिला है।

मोहन-जो-दड़ो से प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह मालूम किया गया है कि वहाँ अत्यन्त विशाल नगर विद्यमान था जिसमें पक्के, सुरक्षित, हवादार मकान काफी संख्या में बनाये गये थे। मकान छोटे व बड़े सभी आकार के थे। बड़े-बड़े प्रासाद जिनकी सामने की लम्बाई ८५ फीट और परकोटे की दीवार ४ से ५ फीट तक थी, पाये गये हैं। ईमारतें पक्की ईंटों की बनाई जाती थीं। कुछ विशाल भवन भी थे जिनमें कुछ में ८० फीट चौकोर कमरे स्तम्भों पर आधारित थे। सड़कों पर नालियाँ बनी हुई थीं और घरों में कूड़ा आदि एकत्रित करने के लिए टोकरियों का प्रयोग होता था।

वहाँ एक विशाल सार्वजनिक स्नानागार भी मिला है जो एक प्रमुख स्थान था। इसमें एक विशाल चौकोर स्थान तो मध्य में बना हुआ था। तथा चारों ओर कमरे व बरामदे आदि बने हुए थे। कुछ में ऊष्ण जल का प्रबन्ध भी था। चौकोर स्थानों के बीच एक ३६ फीट लम्बा तथा २३ फीट चौड़ा और ८ फीट गहरा तैरने के लिए तालाब बना हुआ था। इस तालाब में उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। तथा पास के ही कमरे में बने हुए कुएँ से पानी भरता था। एक बड़ी नाली के द्वारा गन्दा पानी निकाला जाता था।

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में गेहूँ और जौ मिले हैं जिससे सिन्ध की भूमि का उपजाऊ होना प्रमाणित होता है। हड़प्पा के लोग फलियाँ, खजूर, तिल तथा तरबूज का प्रयोग करते थे। एक मिट्टी के बर्तन पर अनेक रंगों में नारियल तथा अनार जैसे चित्र भी मिले हैं। इस घाटी के रहने वालों का विशेष खाद्य पदार्थ गेहूँ ही था किन्तु मछली, दूध, फल तथा गाय, सूअर, भेड़ व बकरा का मांस भी प्रयोग में लाते थे। यहाँ के अवशेषों में बोतलियाँ व चक्कियाँ भी मिली हैं। ये लोग साधारण पोशाक धारण करते थे। सूती व ऊनी दोनों प्रकार के कपड़े काम में लाये जाते थे। एक प्रकार का शॉल काम में लाया जाता था जो हाथ के नीचे होता हुआ बाएँ कन्धे पर से निकलता था।

बाल पीछे की ओर बंधी किये जाते थे। स्त्री व पुरुष दोनों आभूषणों का प्रयोग करते थे। हार, कान की बालियाँ, कड़े, करधनी इत्यादि आभूषणों का प्रयोग होता था। धनिक वर्ग सोने और चाँदी का प्रयोग करते थे। और गरीब ताँबा मिट्टी व हड्डी आदि के आभूषण पहनते थे।

गृहस्थी के प्रयोग में मिट्टी के बर्तन लाये जाते थे—जैसे रकाबियाँ, प्याले, सुराही, घड़े आदि पर के बर्तनों पर अनेक प्रकार के पशु, पक्षी, वृक्ष आदि के चित्र बने हुए होते थे। ताँबे, चाँदी और काँसे के बर्तनों का भी प्रयोग होता था। लोहा काम में नहीं लाया जाता था। मिट्टी की बनी हुई खाने की तश्तरियाँ, हड्डी की बनी सुईयाँ और कंघे तथा ताँबे और काँसे की बनी हुई कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू, छुरे व पत्तियाँ इत्यादि पाई गई हैं।

हमें इस प्रकार के चिन्ह मिले हैं जिनसे यह मालूम होता है कि बैल, भैंस, भेड़ सूअर, ऊँट और हाथी तथा कुत्ते व घोड़े उस समय भी पाले जाते थे। जंगली जानवरों में गेंडा, बन्दर, रीछ, चीता, खरगोश, कुब्बड़दार बैल आदि भी होते थे। इन पशुओं के चित्र हमें तत्कालीन प्राप्त मुहरों तथा ताम्रपत्रों पर मिले हैं।

पत्थर, पीतल तथा ताँबे के हथियारों का प्रयोग होता था। हथियारों का घटिया होना इस बात का प्रमाण है कि ये लोग लड़ाकू नहीं थे। स्वरक्षा में प्रयोग में लाये जाने वाले हथियार ढाल, कवच आदि भी मिले हैं। लगभग ५५० मुहरें मिली हैं जो पत्थर व अनेक रंगों के समुद्री पत्थरों व गारे की बनी हुई हैं। इन पर किसी न किसी पशु का चित्र अंकित है।। इन चित्रों के पार्श्व में तथा नीचे कुछ लिखा हुआ है जो पढ़ा नहीं जा सका है। चूँकि उनकी लिपि भारतवर्ष मे आगे प्रयुक्त होने वाली लिपि से सर्वथा भिन्न है।

कृषि प्रमुख उद्योग था और कला-कौशल के क्षेत्र में बढ़ई, राज, कुम्हार, लुहार, सुनार, जौहरी तथा हाथी दाँत का काम करने वाले व पत्थर काटने वाले होते थे। कुछ पत्थर की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। मुहरें व्यापार के काम में लाई जाती थी। इस समय एशिया के अन्य देशों से भी व्यापार होता था। मुर्दे को जलाया जाता था किन्तु हड़प्पा में एक बड़ा कब्रिस्तान भी मिला है। मुर्दे की राख कहीं कहीं बर्तन में रखी जाती थी और कहीं कहीं हड्डियों को एकत्रित कर बर्तनों मे डालकर उन्हें गाड़ दिया जाता था।

सिन्धुवासी मातृ-देवी के उपासक थे। उस समय के मनुष्यों की प्रायः यह धारणा थी कि समस्त रचना मे स्त्री-शक्ति का हाथ है। एक नासाग्रदृष्टि योगी की सी मूर्ति मिली है, जो चारों ओर पशुओं से घिरी हुई है। ऐसा माना जाता है कि यह पशुपति शिव का प्रतिरूप है। पत्थर, वृक्ष तथा पशुओं की भी पूजा की जाती थी। इससे यह सिद्ध है कि शिव, काली तथा लिंग की पूजा आर्यों के भारत में आने से पूर्व भी होती थी। अतः सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा हिन्दू धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

वैदिक सभ्यता तथा उसकी महत्ता:—भारतीय आर्यों की सभ्यता वैदिक सभ्यता के नाम से जानी जाती है। इस विषय पर विद्वान एक मत नहीं है कि आर्यों का मूल निवास स्थान क्या था? किन्तु अधिकतर धारणा यही की जाती है कि वे मध्य-एशिया के निवासी थे। पश्चिमी विद्वानों का मत है कि अनेक कारणों से आर्य अपने मध्य-एशिया अथवा मध्य योरप के मूल निवास स्थान से निकलकर पश्चिम तथा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की ओर चल दिये और इस प्रकार संसार के अनेक भागों में फैल गये। सभी पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद के रचयिता मानते हैं। इन्हें श्रुति भी कहा जाता है क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने सुनकर ही परम्परा से इन मंत्रों को ग्रहण किया है। वैदिक काल का कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं हो पाया है किन्तु ऋग्वेद ई० पू० १५०० में अवश्य था। सम्भव यह भी है कि उसमें बहुत पहले रचा गया हो और सबसे प्राचीन मन्त्र शायद बहुत ही प्राचीन हों। इसके अतिरिक्त इस काल का अध्ययन करते समय हम तीन काल-विभाग स्पष्टतया देख पाते हैं—ऋग्वैदिक काल जो सबसे प्राचीन है; उत्तर वैदिक काल जिसमें ऋग्वेद के दसवें मंडल की रचना हुई और जो मंडल भाषा शैली में भिन्न है, वैदिक काल का अन्तिम युग जो ई० पू० आठवीं या सातवीं शताब्दी या उससे भी पहले का है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से वैदिक साहित्य की गणना संसार के सबसे प्राचीन और बृहत् साहित्य में की जाती है। उपलब्ध श्रुति-साहित्य ही इतना है जिस पर कई वर्षों तक खोज की जा सकती है। यह ज्ञान का भंडार है। अनुपलब्ध साहित्य की प्राप्ति के उपरान्त इस साहित्य कोष की महिमा और बढ़ सकती है। इस साहित्य के अध्ययन से संसार की प्राचीनतम संस्कृति का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उपलब्ध वैदिक साहित्य निम्न भागों में बंटा हुआ है—वैदिक संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग तथा सूत्र-साहित्य। वेदों का दूसरा नाम संहिता है। वेद चार हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। वेदों के लिखित न होने के कारण इनके स्वरूप में भेद आना आवश्यक हो गया था। संहिताओं के पश्चात् यज्ञ-सम्बन्धी गद्यात्मक साहित्य का निर्माण हुआ और इस साहित्य के विकास का समय ई० पू० ८०० से ५०० वर्ष पूर्व माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तार से यज्ञ कर्म-काण्ड का वर्णन है। इन ब्राह्मणों में कुछ भौगोलिक सामग्री भी प्राप्त होती है। इस साहित्य के अन्त में ही कुछ ऐसा साहित्य है जो बस्ती से दूर अरण्यों अर्थात् जंगलों में पढ़ा जाता था। उपनिषद साहित्य को वेदान्त भी कहा जाता है क्योंकि वैदिक साहित्य में यह सबसे अन्तिम साहित्य है। उपनिषद भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं और संसार के बहुमूल्य आध्यात्मिक ग्रन्थ माने जाते हैं। कालान्तर में वैदिक साहित्य की जटिलताओं को सुलझाना कठिन होगया और कुछ ही विद्वान इसको समझने में समर्थ हो पाते थे। इसके सहायक ग्रन्थ जो वेदों के अर्थ तथा विषय को स्पष्ट करने के लिए लिखे गये 'वेदांग' कहलाये।

ऋग्वेद काल की सभ्यता सबसे प्राचीन है और उत्तर वैदिक काल तक पहुँचते

हुए उसका क्रमशः विकास हुआ और उसमें अनेक परिवर्तन हुए । ऋग्वेद की स को सप्त-सिन्धव सभ्यता भी कहते हैं क्योंकि उस समय आर्य सप्त-सिन्धु में निवास थे । तदुपरान्त आर्य सरस्वती तथा गंगा के मध्य की भूमि में बस गये थे । इस स्थान नाम कुरुक्षेत्र था और उत्तर-वैदिक कालीन सभ्यता का विकास यहाँ पर ही हुआ था ।

ऋग्वेद कालीन आर्यों का धर्म बहुत ही सीधा-सादा था । आर्य प्रकृति पूजक उनके जीवन तथा आत्मा का शुद्ध और सच्चा स्वरूप उनके धर्म में झलकता है । धर्म में आडम्बर, ढकोसला रूढ़िवाद तथा दिखावे को कोई स्थान नहीं था । धर उनके धर्म का प्रमुख अंग था । ये लोग धर्म-प्रधान मानव थे । वेदों में धर्म आध्यात्मिकता का ही प्रमुख स्थान था तथा अन्य बातों को गौण स्थान था । आर्यों धर्म उनकी उच्च बौद्धिक चेतना आध्यात्मिक ज्ञान और उनके मानववाद का प्रतीक उनके धर्म में नर-बलि अथवा पशु-बलि को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं था । वे अ देवी-देवताओं की पूजा इस कारण से नहीं करते थे कि वे उनसे डरते थे बल्कि वे उन पूजा श्रद्धा और प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत होकर करते थे । वे प्रकृति की भि भिन्न शक्तियों को देवी-देवताओं के रूप में पूजते थे । देवताओं को प्रसन्न करने के उपाय थे, एक तो मन्त्रों द्वारा स्तुति करके दूसरा उत्तम पदार्थों की यज्ञ द्वारा करके । आर्य अपने मृतक को अग्निदेवी की भेंट चढ़ाते थे । उनका विश्वास था अग्नि उनके पार्थिव शरीर के भिन्न भिन्न तत्वों को यथा स्थान पहुँचा देगा ।

आर्य बहुदेव पूजक भी थे किन्तु उनकी यह मान्यता थी कि प्रकृति की इ विभिन्न शक्तियों के मूल में वस्तुतः एक प्रधान शक्ति है । इस काल के आर्यों के धर्म मूर्ति पूजा को कोई भी स्थान नहीं था न देवताओं की पूजा के लिए मन्दिर ही बनवा जाते थे ।

सामाजिक क्षेत्र में आर्य इस समय तीन वर्गों में बटे हुए थे—ब्राह्मण, राजन तथा साधारणजन । यह वर्गीकरण कर्म पर आधारित था जन्म पर नहीं । इस प्रका व्यवसाय परिवर्तन करने पर स्वाभाविक रूप से जाति भी बदल जाती थी । एक सा खान-पान व अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध नहीं थे और न इन पर किसी प्रकार के अंकुर थे । बाद में विजित अनार्य जातियों के आर्य धर्म अंगीकार करने पर समाज के चौथे व अर्थात् शूद्रों का जन्म हुआ । शूद्रों का मुख्य कर्तव्य अन्य वर्गों की सेवा तथा शारीरि श्रम के कार्य करना था ।

आर्यों का पारिवारिक गठन पितृ-सत्तात्मक आधार पर था और समाज की इकाई परिवार ही था । परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे तथा भाई-बहिन के अतिरिक्त अन्य कुटुम्बी भी रहते थे । संयुक्त-परिवार प्रथा का प्रचलन था । परिवार में सब लोग मिल जुलकर रहते थे । परिवार का मुखिया वयोवृद्ध पिता ही होता था जो सब सदस्यों के हित और सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता था । अल्पायु में विवाह नहीं होते थे । कन्या का विवाह यद्यपि पिता की इच्छानुसार ही होता था परन्तु वर और कन्या की

स्वेच्छा से विवाह होने के प्रमाण भी मिले हैं। समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था और उनका सम्मान होता था। स्त्रियाँ शिक्षिता होती थीं। अनेक विदुषी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ भी करती थीं। विश्ववरा, घोषा, अपाला आदि अनेक विदुषी महिलाओं के उल्लेख मिलते हैं। वे घर की स्वामिनी होती थी और अपने पति के साथ यज्ञ तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही स्वर्ण के आभूषण धारण करते थे। साधारणतया स्त्री व पुरुष तीन वस्त्र धारण करते थे–एक कमर से नीचे, एक कमर से ऊपर और एक कन्धे पर चादर की तरह। गेहूँ, जौ, चावल, दूध, दही, घी, शाक, फल इत्यादि उनके साधारण भोजन थे। मांस का भी प्रयोग होता था परन्तु सुरापान अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। यज्ञ के अवसर पर सोमरस का पान किया जाता था। रथों की दौड़ और द्यूत क्रीड़ा इनके मनोरंजन के मुख्य साधन थे। पशुपालन, कृषि तथा अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे आर्यों के मुख्य व्यवसाय थे। आर्यों के आर्थिक जीवन में गाय का बड़ा महत्व था। वे ग्राम जीवन को जहाँ कि उन्हें शुद्ध वायु और प्रकृति का मुक्त-वातावरण उपलब्ध हो, पसन्द करते थे। अभी बड़े बड़े नगरों का निर्माण नहीं हुआ था।

राजनैतिक क्षेत्र में अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक ही थे। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र ही सिंहासन का अधिकारी होता था। कहीं कहीं प्रजा भी राजा को चुनती थी। ग्राम का शासन ग्रामणी के पास होता था जो ग्राम का मुखिया होता था। आर्य लोग अनेक वर्गों में बँटे हुए थे जो 'जन' कहलाते थे। प्रत्येक 'जन' का अधिपति राजा कहलाता था। इस समय पंजाब में पुरु, तुर्वसु, यदु, द्रुह्य तथा अनु नामक पाँच जन बसे हुए थे। राजतन्त्रात्मक होते हुए भी इन राज्यों के शासन में प्रजा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आर्यों में प्रजातन्त्र शासन की परंपरायें बहुत प्राचीन थीं और इसके लिए अनेक लोकप्रिय संस्थाएँ थीं। इनमें से प्रमुख संस्थाएँ सभा और समिति नामक दो परिषदें थीं। शान्तिकाल में राजा अपनी प्रजा के सुख और समृद्धि बढ़ाने के लिए अनेक प्रजा हितकारी कार्य करता था। न्याय का अन्तिम स्थान भी उसका दरबार ही था। युद्ध के समय अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह सेना का नेतृत्व करके शत्रु से लड़ता था। राजा के अन्य सलाहकारों में मंत्री-परिषद, पुरोहित जिसका मुख्य मंत्री होता था, राज्य परिवार के सदस्य तथा अन्य योग्य व्यक्तियों की गणना की जाती थी। सेना का अध्यक्ष सेनानी अथवा सेनानायक होता था। राजा की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था।

उत्तर वैदिक काल में धार्मिक धारणाओं का परिवर्तित रूप दृष्टिगोचर होता है। अब देवताओं का महत्व कम होता नजर आता है। कुछ नये देवता जैसे शिव, विष्णु आदि उच्च स्थान ले रहे थे। वैदिक क्रियाओं तथा समारोहों ने अपनी सरलता गँवा दी थी। यज्ञ जटिल हो गये थे। पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विकास इसी युग में हुआ। इसी युग में वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की धारा का जन्म हुआ। ऋग्वेद के समय ग्राम थे।

उत्तर वैदिक साहित्य में प्रथम बार हमें नगरों का उल्लेख मिलता है। इस स[मय] शक्तिशाली राज्य स्थापित हो गये थे। राजा की निरंकुश स्थिति सुदृढ़ हो गई थी। [वह] अनेक प्रकार के कर वसूल करने लगा था शासन-व्यवस्था का रूप भी विस्तृत तथा ज[टिल] होता जा रहा था। अनेक राज्यनिवासी राजा के चारों ओर घिरे रहते थे। वहीं ग[ण] गणतन्त्र भी विकसित हो रहा था।

उत्तर वैदिक काल में वेशभूषा तथा खान-पान में विशेष अन्तर नहीं आया था यद्[यपि] सुरापान व माँस भक्षण बुरी निगाह से देखे जाने लगे थे। नारियों की दशा भी धीरे धी[रे] गिरती जा रही थी। वैवाहिक नियम भी कठोर हो गये थे। बहुविवाह प्रचलित होने [लगे] थे और दहेज़ भी चालू हो गया था। कृषि ही आर्थिक-व्यवस्था का मूलाधार थी। इस काल में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में काफ़ी उन्नति करली गई थी।

उपसंहारः—इस प्रकार प्राचीन भारत की दो महानतम सभ्यताओं का अवलोकन किया। सिन्धु घाटी की सभ्यता शायद ईसा से २००० से १००० वर्ष पू[र्व के] मध्य समाप्त हुई चूँकि खुदाई से ऐसा ही कुछ प्रतीत होता है। श्री पंचानन रा[य का] कथन है कि इस सभ्यता के मानने वाले वैदिक ब्राह्मण थे जिन्हें साहित्य, वैद्यक, ब्या[करण] आदि का पर्याप्त ज्ञान था। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास [की] झलक' में सर जॉन मॉर्शल के कथन को लिखा है—"मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा इन [दोनों] जगहों में एक चीज़ तो साफ़ तौर पर ज़ाहिर होती है और जिसके बारे में कोई [शक] नहीं हो सकता है। वह यह है कि इन दोनों जगहों में जो सभ्यता हमारे सामने आई वह कोई इब्तदाई सभ्यता नहीं है बल्कि ऐसी है जो उस समय भी युगों पुरानी पड़ चु[की] थी, हिन्दुस्तान की ज़मीन पर मज़बूत हो चुकी थी, व उसके पीछे आदमी का कई ह[ज़ार] वर्ष पुराना कारनामा था। इस तरह अब से मानना पड़ेगा कि ईरान, मेसोपोटेमिया [और] मिस्र की तरह हिन्दुस्तान उन सब प्रमुख देशों में से एक है जहाँ पर सभ्यता का आर[म्भ] और विकास हुआ था।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि सैन्धव-संस्कृति की खोज के कार[ण] भारत का संसार के प्राचीन सभ्य देशों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है।

वैदिक-संस्कृति प्रमुखतया भारतीय संस्कृति ही है। भारतीय जीवन के प्रत्ये[क] [अं]ग का स्रोत वैदिक सभ्यता में पाया जा सकता है। भारतीयों के आचार-विचार, धर्म, सामाजिक संगठन, वर्ण-व्यवस्था, भाषा, वेश-भूषा, यहाँ तक कि लगभग सभी बातों में वैदिक-सभ्यता की छाप स्पष्ट आज भी देखी जा सकती है। वेदों को भारत के प्रत्ये[क] [भा]ग में हिन्दुओं का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। भारत के अधिकांश हिन्दू धार्मि[क] कार्य करने में वेदों का अनुसरण करते हैं। कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ वर्ण [व्य]वस्था की परम्परा आज भी हमारे देश में चली आ रही है। उत्तर वैदिक काल का [भार]तीय संस्कृति के इतिहास में उल्लेखनीय स्थान है। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण देन दर्श- [निरू]पण है। मोक्ष और पुनर्जन्म के सिद्धान्त तथा कर्मवाद के सिद्धान्त का सूत्रपात इस काल में ही हुआ। इस सम्पूर्ण देश में उत्तर-वैदिक काल की देन अद्भुत है।

अध्याय सार

(१) सिन्धु घाटी की सभ्यता से यह स्पष्ट होगया है कि आर्यों के आगमन के पूर्व भी भारत में उच्चकोटि की सभ्यता थी।

(२) उस काल में नगर-निर्माण एक निश्चित योजना के अनुसार किया गया था।

(३) इस संस्कृति के मानव को लिखना आता था किन्तु वह लिखावट अभी पढ़ी नहीं जा सकी है।

(४) सिन्धु प्रदेश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कलात्मक तथा राजनैतिक दशा का हमें उपलब्ध भग्नावशेषों की सहायता से पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

(५) बाह्य आक्रमण, सिन्धु नदी की बाढ़ अथवा भूचाल आदि ने इस सभ्यता को नष्ट कर दिया।

(६) यह संस्कृति मेसोपोटेमिया आदि देशों की संस्कृति से संबंधित थी।

(७) वैदिक संस्कृति अथवा आर्य-संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है।

(८) वैदिक संस्कृति की जानकारी का स्त्रोत वैदिक साहित्य है—जो विशाल है, अपूर्व व अद्भुत है तथा संसार का आदि ग्रन्थ है।

(९) वैदिक काल का निर्णय ठीक प्रकार नहीं हो पाया है–किन्तु लगभग १५०० ई० पू० में वेद विद्यमान थे।

(१०) वैदिक संस्कृति धर्म पर आधारित है और वैदिक धर्म सरल सादा धर्म है। आर्य प्रकृति पूजक थे।

(११) समाज तीन वर्ग में बँटा हुआ था और पारिवारिक गठन पितृ-सत्तात्मक आधार पर था।

(१२) आर्यों में अधिकांश राज्य राजतंत्रात्मक थे जिनमें प्रजा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

(१३) भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग का स्त्रोत वैदिक सभ्यता में पाया जा सकता है।

(१४) उत्तर वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल है।

(१५) इस काल में धार्मिक धारणाओं में परिवर्तन हो गया–मोक्ष, पुनर्जन्म तथा कर्मवाद के सिद्धान्त आ गये और वर्ण-व्यवस्था परम्परागत रूप धारण करने लगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. What do you understand by Indus valley civilization? Describe briefly its characteristics—

सिन्धु-घाटी सभ्यता से आप क्या अभिप्राय लेते हैं ? उस सभ्यता की विशेषताओं का सूक्ष्म रूप से वर्णन कीजिये।

2. Give an account of Indus civilization under the

following points (a) Society (b) Religion (c) Ar
Administration.

सिन्धु घाटी सभ्यता का वर्णन निम्नलिखित शीर्षों के आधार पर की
(क) समाज (ख) धर्म (ग) कला और शासन

3. What do you know about Aryan civilizati
the Vedic age? Give an account of the soical, politica
economic condition of the Aryans.

वैदिक आर्यों की सभ्यता के बारे में आप क्या जानते हैं? आर्यों के सा
राजनैतिक तथा आर्थिक दशाओं का वर्णन किजिए।

4. Discus the aspects of Aryan culture of the
Vedic period.

उत्तर वैदिक युग में आर्यों की सभ्यता का विवेचनात्मक ढंग से वर्णन कीजि

5. Compare the culture of the Rigvedic period
the culture of the Indus valley and point out the r
contribution of these two to the Indian culture.

ऋग्वैदिक तथा सिन्धु-घाटी सभ्यता की तुलना कीजिए और यह बतलाइये
दोनों की भारतीय संस्कृति को क्या देन है?

मगध व कौशल। इनमें मगध अत्यधिक शक्तिशाली था। मगध के दो प्रसिद्ध रा
अर्थात बिम्बसार व अजात शत्रु का इतिहास ही मगध का इतिहास है। बिम्बसा
शासन कठोर था जिसमें दया के लिये कोई स्थान नहीं था। जैन लोगों का कहना है
बिम्बसार जैन धर्म को मानता था। उनका कहना है कि वह समस्त परिवार तथा मं
के साथ महावीर स्वामी से भी मिला था और जैन धर्म का अनुगामी बन गया था
प्रकार बौद्ध लोगों का कहना है कि वह भगवान बुद्ध से अपनी राजधानी राजगृह में मि
था और बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था।

अजात शत्रु ने अपने पिता बिम्बसार का अन्त ५५१ ई० पू० में कर दिया
बौद्ध ग्रंथ 'विनय' से हमें इसके काले कारनामों का विवरण मिलता है। अजात शत्रु
अपनी शक्ति को उत्तरोतर बढाया। उसका महान प्रति द्वन्दी केवल अवन्ति का शास
चण्ड प्रद्योत ही था। अजात शत्रु ने महावीर स्वामी से भेंट की थी और जैन धर्म
प्रशंसा की थी। वह कब बौद्ध हो गया इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है:

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध व महावीर स्वामी के समय में उत
भारत में अनेक छोटे छोटे गणराज्य विद्यमान थे जिनमें आधुनिक प्रजातन्त्र के अधिक
तत्व विद्यमान थे। गणराज्यों में कुछ चुने हुए व्यक्ति ही राज्य करते थे फिर भी बहुम
को मान्यता थी। स्वतन्त्र राज्य भी उन्नतिशील थे। मगध राज्य का उत्थान हो रहा था

ब्राह्मण धर्म के कर्म काण्ड की प्रतिक्रिया:—बौद्ध धर्म की स्थापना से पू
हमें यह जान लेना आवश्यक है कि इस समय ब्राह्मण वर्ग की कैसी दशा थी। बौद
धर्म के सूत्रपात से ठीक पूर्व हिन्दु वैदिक धर्म में, जिसे कि ब्राह्मण धर्म भी कहते है अनेक
दोष उत्पन्न हो गये थे। वैदिक धर्म की सरलता और आडम्बरहीनता का कहीं पता नही
था। जाति बन्धन भी बहुत कठोर हो गये थे। अब जातियाँ कर्म से नही बल्कि जन्म
से मानी जाती थी। जातियो में पारस्परिक विवाह तथा खान पान भी बन्द हो गया
था। जाति बन्धन भी बहुत कठोर हो गये थे। अब जातियाँ कर्म से नही बल्कि जन्म से ही
मानी जाती है। जातियों में पारस्परिक विवाह तथा खानपान भी बन्द हो गया था। शूद्रों
से घृणा की जाती थी। तथा उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। क्षत्रिय भी अपने को उच्च
समझते थे। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि समाज में ब्राह्मणों के प्रभुत्व के कारण क्षत्रिय
उनसे द्वेष रखते थे। जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ब्राह्मणों के प्रभाव के प्रति विद्रोह
स्वरूप ही हुआ। इस समय का हिन्दु कर्म काण्ड तथा आडम्बरों से पूर्ण हो गया था। यज्ञ
तथा बलि को ही धर्म का सर्वस्व माना जाता था। धर्म में अनेक प्रकार की जटिलताओं
ने भी घर कर लिया था। धर्म पर ब्राह्मणों का एकाधिकार हो गया था। धर्म के इन दोषों
के फलस्वरूप यह आवश्यक ही हो गया था कि कोई सुधारक धर्म को इन बाह्य आडम्बरों
से मुक्त करके उसे नया जीवन प्रदान करे। इससे जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ।
अनेक विद्वानों का मत है कि जैन अथवा बौद्ध धर्म कोई नये धर्म नहीं थे। डा० ईश्वरी-
प्रसाद का कथन है, "जैन अथवा बौद्ध धर्म भारतीय धर्मावस्था में कोई नवीन युग के कर

में प्रकट नहीं हुए वरन उपर्युक्त भिन्न भिक्षुवर्गों में से ही दो वर्ग थे, यद्यपि प्रभाव दूसरों की अपेक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण तथा स्थायी हुआ था।" जैन धर्म के वास्तविक प्रवर्तक महावीर स्वामी थे। वे जैनियों के २४ वें और अन्तिम तीर्थंङ्कर थे। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इन्होंने सत्य अहिंसा और सद्व्यवहार की शिक्षा दी। जैन मतावलम्बियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारम्भ बौद्धकाल मे महावीर स्वामी द्वारा नहीं हुआ था। उन लोगों के विचार में सृष्टि के समान उनका धर्म भी अनादि है। महावीर स्वामी के के प्रादुर्भाव से २५० वर्ष पूर्व तीर्थंकर पार्श्व का समय है। तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी बौद्धकाल की धार्मिक सुधारणा में विद्यमान थे। पार्श्वनाथ के अनुसार जैन भिक्षु के लिये चार व्रत लेना *आवश्यक है। (१) मैं जीवित प्राणियों की हिंसा नहीं करूंगा* (२) मैं सदा सत्य भाषण करूंगा (३) मैं चोरी नहीं करूंगा (४) मैं कोई सम्पत्ति नहीं रखूंगा। पार्श्व द्वारा प्रतिपादित इन चार व्रतों के साथ महावीर ने एक व्रत और बढ़ा दिया और वह था—मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

महावीर का जन्म का नाम वर्धमान था और वज्जिराज्य-संघ के अन्तर्गत ज्ञातृक गण में राजा सिद्धार्थ तथा रानी त्रिशला के ये पुत्र थे। यद्यपि महावीर का प्रारम्भिक जीवन साधारण गृहस्थ के समान व्यतीत हुआ, पर उनकी प्रवृति सांसारिक जीवन की ओर नहीं थी। वह 'प्रेममार्ग' छोड़कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जाना चाहता था।

तीस वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग कर भिक्षु बनना निश्चित किया। उन्होंने भिक्षु बनते समय जो वस्त्र पहने थे वे तेरह मास बाद बिलकुल जर्जरित हो गये और फिर उन्होंने वस्त्र धारण नहीं किया। तीस वर्षों तक उन्होंने कोशल मगध तथा सुदूर पूर्व में धर्म का उपदेश किया और पावा में (पटना) मृत्यु को प्राप्त हुऐ। यह घटना सम्भवतः ४६० ई० पू० की है।

महात्मा बुद्ध का जन्म आधुनिक बिहार राज्य कपिल वस्तु नगर में ईसा से ५६३ वर्ष पूर्व हुआ था। इनके पिता शुद्धोदन कपिलवस्तु गणराज्य के राजा थे। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। ये बचपन से ही बड़े चिन्तनशील थे। पीड़ित प्राणियों के प्रति इनके हृदय में अपार दया तथा सहानुभूति का सागर लहलहा रहा था। पिता ने इनमें परिवर्तन लाने के लिये १८ वर्ष की आयु में इनका विवाह कर दिया। दो वर्ष बाद इनके पुत्र भी हुआ। परन्तु इनकी चिन्तनशीलता बढ़ती गई और तीस वर्ष की आयु में रात्रि के गहन अन्धकार में अपने पुत्र और पत्नी को सोता हुआ छोड़कर वे शांति की खोज में चल दिये। यही गोतम का "महाभिनिष्क्रमण" है।

वे स्थान स्थान पर शांति की खोज में घूमते रहे। उन्होंने छः वर्ष तक कठिन तपस्या भी की परन्तु उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। अतः तपस्या को निरर्थक मानकर अब वे सरल जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन बोद्ध गया के समीप एक पीपल के पेड़ के नीचे ध्यानावस्था में बैठे थे। वहीं उन्हें सत्य का बोध हुआ इसी कारण वे बुद्ध कहलाये। उन्हें जो भी बोध, ज्ञान, सत्य का आभास हुआ था वही बातें उनकी शिक्षाओं

तथा उपदेशों में भाव स्पष्ट देखी जा सकती है। यहां ही उन्हें पता चला कि म
सच्चा तथा आडम्बरहीन जीवन ही सुख का मार्ग है। तप, यज्ञ तथा कर्मका
निरर्थक है।

बोध प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने सर्व प्रथम अपने उपदेश बनारस के
सारनाथ में पांच भिक्षुओं को सुनाये और तदनन्तर अपने विचारों का उन्होंने व्यापक रू
प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। पैंतालीस वर्ष में महात्मा बुद्ध अपने मत का भारत
भिन्न २ स्थानों में प्रचार करते रहे। अस्सी वर्ष की आयु में कुशीनगर नामक स्थान
उनके पार्थिव शरीर का अन्त हुआ यही उनका महानिर्वाण था।

गौतम ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे। वे आत्मा को नित्य नहीं मानते थे त
किसी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते थे और जीवन-प्रवाह को इसी शरीर त
परिमित नहीं मानते थे। गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्य बतलाये—दुःख दुःख 'समुद
दुःख निरोध तथा दुःख निरोधगामी मार्ग इन सबमें निवृत्ति पाने के लिये बुद्ध ने अ
अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया। यह अष्टांगिक मार्ग इस प्रकार है—सम्यक दृष्टि
सम्यक संकल्प, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति तथ
सम्यक समाधि।

भगवान बुद्ध ने अन्धानुकरण न करने का उपदेश दिया तथा स्वयं उचित अनुचि
पर विचार करने की अनुमति दी।

जैन धर्म व बौद्ध धर्म की तुलनाः—ये दोनों धर्म छठी व सातवीं शताब्द
ईसा पूर्व सामान्य धार्मिक तथा आध्यात्मिक चेतना के प्रतिफल थे। उनमें अनेक समान
बातें दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ने वैदिक कर्म कांड, जाति भेद तथा ब्राह्मणों की
सामाजिक श्रेष्ठता का विरोध किया और वेदों को अपौरुषेय न मानते हुए अहिंसा पर
बल दिया। दोनों ने ईश्वर के प्रति उदासीनता अपनायी और सन्यास की महत्ता बतलाई
पुनर्जन्म तथा मोक्ष को दोनों मानते थे। इन लोगों ने भी कुछ मिलती जुलती पौराणिक
कथाओं की सृष्टि की। डॉ० आर० सी० मजूमदार की मान्यता है कि जैन और बौद्ध
सम्प्रदायों में मूर्ति के प्रभाव को स्वीकार कर लेना इस तथ्य का द्योतक करता है कि ये
दोनों साम्प्रदाय अनार्य विचारधारा से प्रभावित थे।

इन दोनों धर्मों में अनेक विषमताएं भी हैं। बौद्ध धर्म निर्वाण प्राप्ति के लिये
मध्यम पथ की आवश्यकता बतलाता है। किन्तु जैन धर्म में उपवास, उग्रतपस्या, तथा
प्राण-त्याग आदि कठिन कर्मों को मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं जैन धर्मावलम्बी अहिंसा
पर बौद्धो से अधिक बल देते है। बौद्ध लोग अनात्मवादी हैं जब कि जैन प्रत्येक जीव में
आत्मा का निवास मानते हैं। बौद्धों का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही क्रांतिकारी था जिसमे
वे प्रचलित धार्मिक विश्वासों के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके, परन्तु जैन धर्म
का दृष्टिकोण सहिष्णुतापूर्ण था। आचरण में जैन और वैष्णव काफी समान हो गये
जबकि बौद्ध विपरीत ही रहे।

बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण:—बौद्ध धर्म का इस देश में विस्तृत प्रसार बड़ी शीघ्रता से हुआ। इसकी इस सफलता के अनेक कारण थे। बौद्ध धर्म के सिद्धान्त सरल थे जो सर्व साधारण के लिये बोध गम्य थे। उनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो साधारण लोग न समझ पाते। तत्कालीन समाज यज्ञों और पुरोहितों के कुप्रभाव से तंग था अतः जब बुद्ध ने वैदिक कर्म कांड का विरोध करते हुए ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देना प्रारम्भ किया तो अनेक लोग उनके उपदेशों से प्रभावित हुए। बुद्ध का प्रभावशाली व्यक्तित्व था। अनेक गुण होने के कारण बुद्ध के व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण का समावेश हो गया था। बुद्ध ने जाति प्रथा विरोध किया और समानता की भावना पर बल दिया जिसका ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबने स्वागत किया। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश में लोक भाषा का प्रयोग किया। वे उदाहरणों द्वारा उपदेशों को तथा प्रचार शैली को रोचक बना देते थे। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के लिए संघ-पद्धति की व्यवस्था की जिससे इनका संगठन सफल हुआ। इस धर्म को बिम्बसार, अशोक, कनिष्क तथा हर्ष जैसे सम्राटों का राज्याश्रय मिला जिसमे इसका तीव्र गति से प्रसार हुआ। अन्त में बौद्ध भिक्षुओं के अदम्य उत्साह के फल स्वरूप ही भारत तथा विश्व भर में इस धर्म का प्रचार सफलता से हो सका।

बौद्ध धर्म की देन:—बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख देन कला क्षेत्र में है। मूर्ति कला और शिल्पकलाओं का तो उद्भव ही प्रायः बौद्ध धर्म के द्वारा हुआ। ईसा की छठी शताब्दी तक भारत की सबसे उत्तम कला बौद्ध कला ही रही है। चीन, जापान, लंका, बर्मा तथा स्याम और दो दूर का स्तूप, तिब्बत तथा नेपाल की धार्मिक कला सबमें बौद्ध कला का सर्वोच्च स्थान है।

साहित्य सृजन में भी बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण देन है। इनका सम्पूर्ण साहित्य प्रचुर और विशाल है। इस धर्म के उदय होने से भारत में एक नवीन दार्शनिक साहित्य का सृजन हुआ इनके दार्शनिक सिद्धान्तों व विचारों का खण्डन करने के लिये अन्य दार्शनिकों जैसे शंकराचार्य आदि ने अपना दर्शन प्रस्तुत किया। बौद्ध धर्म के कारण विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार हुआ। ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म की बहुत सी श्रेष्ठ बातों को ग्रहण कर लिया और अपने धर्म में अनेक सुधार किये। बौद्ध संघों की स्थापना भगवान बुद्ध ने की और धार्मिक संघ इनकी अपनी विशिष्ट देन है।

अध्याय सार

(१) बौद्ध धर्म संसार के महान धर्मों में से एक है।

(२) बौद्धकालीन राजनैतिक भारत में जनपद, महाजनपद, गणराज्य तथा चार बड़े राजतन्त्र विद्यमान थे।

(३) बौद्ध व जैन धर्म की उत्पत्ति ब्राह्मण-धर्म के कर्म काण्ड के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई।

(४) जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी थे ।
(५) बुद्ध ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे ।
(६) बौद्ध धर्म की उन्नति के कई विशेष कारण थे जिनमें राजाश्रय प्रमुख
(७) बौद्ध धर्म की सबसे बड़ी देन कला के क्षेत्र में है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. Give the important tenets of Budhism and Jainism and compare them.

बौद्ध धर्म व जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं का वर्णन करते हुए उनकी तुलना कीजिए ।

2. What is the contribution of Budhisim and Jainism to India ?

बौद्ध और जैन धर्म की भारत को क्या देन है ?

अध्याय ६

"Classical Indian Civilization"

भारतीय सभ्यता का स्वर्णयुग

(१) प्रस्तावना (२) शासन प्रणाली (३) सामाजिक व आर्थिक जीवन (४) धार्मिक जीवन (५) साहित्य और विज्ञान (६) कला (७) उपसंहार।

प्रस्तावना:—प्राचीन भारत की सभ्यता का वैभवकाल वास्तव में चन्द्रगुप्त मौर्य (३२० ई० पू०) से लेकर हर्षवर्धन (६४८ ई०) तक माना जाता है। इस युग को भारत के इतिहास में स्वर्णयुग कह सकते हैं। इसके अनेक कारण हैं। भारतीय जन-जीवन ने इस काल के अन्तर्गत व्यवस्थित रूप धारण किया। मौर्य, कण्व, शुंग, कुषाण, गुप्त तथा वर्धन वंश में बड़े-बड़े प्रतापी शासक हुए जिन्होंने सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित की व जनता के जीवन को सुखी बनाने में अपना सर्वस्व लगा दिया। बौद्ध, जैन तथा हिन्दू धर्म खूब फले-फूले व प्रचारित हुए। देश-विदेशों में भारतीय धर्म, साहित्य व कला का प्रचार हुआ। भारत में साहित्य, कला, विज्ञान व शिक्षा की महती प्रगति हुई। स्थापत्य कला तथा भवन निर्माण में और स्तूप व मन्दिरों के निर्माण में भी यह काल अग्रगण्य था। संगीत व नृत्य भी खूब फले-फूले थे। इन सब कारणों से यह युग भारत का वैभवशाली युग था। इन सब में भी गुप्तकाल विशेषतया स्वर्णयुग कहलाता है क्योंकि यह काल सुख-समृद्धि की चरम सीमा पर पहुँच गया था। यहाँ हम मौर्य आदि शासकों के काल की सभ्यता की सूक्ष्म विवेचना करते हुए गुप्तकाल पर विशेष प्रकाश डालेंगे।

शासन प्रणाली:—चन्द्रगुप्त मौर्य का इतिहास में बड़ा ऊँचा स्थान है। वह एक महान विजेता था जिसने बड़े साम्राज्य की स्थापना की तथा एक महान शासक था जिसने चाणक्य की सहायता से एक सुसंगठित शासन-प्रणाली का विकास किया। मौर्य शासन का केन्द्र विन्दु राजा था, अतः हम इस शासन प्रणाली को एकतान्त्रिक की उपमा दे सकते हैं। राजा सर्व शक्तिमान था फिर भी उस पर अनेक प्रकार के वैधानिक, सामाजिक, धार्मिक और कानूनी प्रतिबन्ध लगे हुए थे। उदाहरणार्थ धार्मिक उत्तरदायित्व के स्वरूप उसे प्रजा के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानना पड़ता था; सामाजिक तरीके से उसे क्षत्रिय शासक के समस्त कर्तव्य निभाने के लिए बाधित होना पड़ता था। उसे एक मंत्री-परिषद की सलाह से ही राज्य का संचालन करना पड़ता था। चन्द्रगुप्त मौर्य को ही इस बात का श्रेय है कि उसने हमें एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली प्रदान की। केन्द्रीय शासन अठारह विभागों में बँटा हुआ था और प्रत्येक विभाग का एक मंत्री होता था। सारे साम्राज्य को कई प्रान्तों में बाँटा गया था।

स्थानीय शासन दो प्रकार से संचालित था—ग्राम शासन तथा नगर शासन। गाँव में ग्रामसभा होती थी जिसका प्रमुख ग्रामीक होता था। नगर-शासन के अन्तर्गत ह[illegible] पाटलीपुत्र की शासन-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इस नगर का शासन तीन सद[illegible] की नगर-सभा द्वारा होता था और इस सभा ने विभिन्न विभागीय कार्यों का विभा[illegible] ६ कमेटियों में कर दिया था। शासन के तीन प्रमुख विभाग थे—राजस्व, न्याय त[illegible] सेना व पुलिस। चन्द्रगुप्त के समय में न्याय के लिए दो प्रकार के न्यायालय थे—कण्ट[illegible] शोधक अथवा फौजदारी सम्बन्धी तथा धर्मस्थीय अथवा दीवानी सम्बन्धी। चन्द्रगु[illegible] महान विजेता था अतः यह स्वाभाविक ही था कि वह एक विशाल सेना रखता। से[illegible] तीन महान विभागों में बँटी हुई थी—दुर्ग, हथियार निर्माण तथा सैनिक संगठन। चन्द्रगुप्त का शासन बड़ा उच्चस्तरीय माना जाता है। अशोक ने चन्द्रगुप्त की शासन प्रणाली को अपनाते हुए शासन की नीति को धार्मिक व नैतिक सिद्धान्तों पर आधारि[illegible] किया। उसकी अनेक घोषणाओं में एक यह थी, "मेरे राज्य में सब मनुष्य मेरी सन्तान के समान हैं, जैसाकि मैं चाहता हूँ, कि मेरी सन्तान को इस लोक में सुख और परलोक में परमार्थ की प्राप्ति हो, उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के लिए भी मंगल कामना करता हूँ।" अतः अशोक ने एक धर्म-विभाग की स्थापना की और धर्म महामात्र नामक अधिकारी नियुक्त किये।

मौर्यवंश को समाप्त कर पुष्यमित्र शुंग ने शुंगवंश की स्थापना की। इ[illegible] शुङ्ग-संस्कृति को गुप्तकालीन संस्कृति की जननी कह सकते हैं। पुष्यमित्र ने न केवल मगध की परम्परा को ही बढ़ाया अपितु राजनीति को यथार्थ रूप देकर सैन्य-संगठन पर बल दिया। एक विशाल सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना की गई। कुषाण वंश के प्रतापी राजा कनिष्क ने एक सुदृढ़ व सुव्यवस्थित राज्य की स्थापना की। उसका राज्य सैनिक बल तथा क्षेत्रीय शासन प्रणाली पर आधारित था किन्तु यह संगठन ठोस तथा स्थायी नहीं था।

इसके बाद गुप्त शासक आये। इनकी सबसे बड़ी देन सुव्यवस्थित व सुसंगठि[illegible] शासन प्रणाली है। वैसे मौर्यों के उपरान्त प्राचीन शासन प्रणाली समाप्त सी हो गई थी। गुप्तों ने उस प्रणाली को पुनः जागृत कर उसमें नवीन पुट देकर प्राण फूँक दि[illegible] थे। गुप्त साम्राज्य, यद्यपि विशाल था फिर भी उसका संगठन उतना केन्द्रित नहीं ह[illegible] जितना मौर्यों का था। मगध, पाटलीपुत्र तथा उसके आसपास गुप्त शासक सीधे शासन करते थे किन्तु उसके आगे गुप्त शासकों का आधिपत्य ही स्वीकार कर लिया गया था और अन्तर्राष्ट्रीय राजा गुप्तों को वार्षिक कर व उपहार निश्चित रूप से भेंट किया करते थे। गुप्त शासन एकतांत्रिक था। राजा राज्य का स्वामी था तथा अन्तिम सत्ता [illegible] के हाथों में निहित थी। उत्तराधिकारी वंशगत के आधार पर चुने जाते थे। [illegible] को उत्तराधिकार स्वतः उत्तराधिकार नहीं मिलता था। सम्राट कई प्रकार [illegible] धारण [illegible] विक्रमादित्य, महाराज, परमभट्टारक, परमेश्वर आदि लेकर

अपने को अलंकृत करता था। वह एक मंत्री परिषद की सहायता से शासन करता था। मंत्री पद भी पैतृक होता था। मंत्रियों के पास विभिन्न विभाग वितरित थे और प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष भी होता था। इन्हें भिन्न भिन्न नामों जैसे अमात्य, कुमारामात्य, युवराज, आदि से पुकारा जाता था।

अत्यन्त विशाल होने के कारण गुप्त साम्राज्य कई प्रान्तों व प्रदेशों में बँटा हुआ था। ये प्रान्त भुक्ति अथवा देश कहलाते थे। प्रान्तों के शासक भोगिक, गोप्ता, स्थानिक आदि नामों से जाने जाते थे। प्रान्तों को पुनः 'प्रदेश' अथवा 'विषय' में विभाजित किया गया था। 'विषय' लगभग जिले के समान होता था और इसका अधिकारी विषयपति कहलाता था। नगर का शासन सरकारी अध्यक्षता में एक परिषद द्वारा होता था। गाँवों में प्रबन्ध के लिए ग्राम परिषद होती थी। शासन कई विभागों में बँटा हुआ था। मुख्य विभागों में राजस्व अथवा माल के विभाग की गणना होती थी। भूमि नियमित रूप से नापी जाती थी और उसकी विस्तृत जानकारी लिखी जाती थी। भूमि कर को उद्रङ्ग कहते थे और यह उपज का छठा भाग होता था। अन्य करों में उपरि कर, हिरण्य, चाटभट, प्रवेश आदि मुख्य थे। सरकार के अन्य आय के साधनों में न्यायालय शुल्क, अर्थ दण्ड, राजाओं से कर व उपहार-आदि मुख्य थे। सुवर्ण दीनार आदि सिक्के प्रयोग में लाये जाते थे। कौड़ियाँ भी प्रयोग में लाई जाती थीं।

चार प्रकार के न्यायालय मौजूद थे—कुल, श्रेणी, गण तथा राजकीय न्यायालय। प्रथम तीन न्यायालयों की जो स्थानगी थे, अपील अन्तिम न्यायालय में होती थी और अन्तिम अपील राजा के पास होती थी। न्याय व्यवस्था उत्तम थी और जनता नियमों का पालन करती थी। दण्ड कठोर नहीं थे और दण्ड की मात्रा अपराध के अनुपात में होती थी। जनता के उपयोग के भी कई कार्य किये गये। सड़कों का निर्माण किया गया; सिंचाई की व्यवस्था की गई तथा चिकित्सालय, औषधालय, विद्यालय और धर्मशाला आदि का निर्माण किया गया। सेना का संगठन भी उत्तम था। हमें दुर्ग, स्कन्धावार, शस्त्रागार तथा चतुरङ्गिणी सेना आदि अनेक उल्लेख मिलते हैं। सेना का प्रधान अधिकारी सान्धि-विग्रहिक कहलाता था और उसके आधीन अनेक बड़े अधिकारी जैसे महा सेनापति, महादंडनायक, बलाधिकृत, भटाश्वपति आदि होते थे। भीतरी रक्षा के लिए रक्षा-विभाग तथा पुलिस विभाग की अच्छी व्यवस्था थी। इस विभाग में भी कई अधिकारी होते थे। गुप्तचर विभाग भी सक्रिय था। फाह्यान का कहना है कि, "देश में काफ़ी शान्ति और सुव्यवस्था थी और चोर डाकुओं का जरा भी भय नहीं था।"

हर्ष ने गुप्त शासकों की भाँति एक सुसंगठित व सुव्यवस्थित शासन प्रणाली स्थापित की थी। उसने गुप्त शासन-पद्धति का ही अनुकरण किया केवल अपनी सुविधानुकूल हेर-फेर कर लिया। वह भी एकतान्त्रिक शासक था। अशोक की भांति उसने

भी शासन को आदर्शवादी बनाया। सरकारी आय के कई साधन थे, जिनके लिए राजस्व विभाग था। न्याय की व्यवस्था भी सुन्दर थी। हर्ष ने विशाल साम्राज्य की रक्षा के लिए एक बड़ी सेना जिसमें लगभग ६ लाख सैनिक थे, स्थायी रूप से रख रखी थी। पुलिस तथा रक्षा विभाग भी सुसंगठित था फिर भी शान्ति व सुव्यवस्था गुप्त शासकों की तुलना में कम थी। चीनी यात्री फाह्यान गुप्त काल में निर्भीक होकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक घूमा था जब कि ह्वेनसाग को रास्ते में कई बार लूटा गया था।

सामाजिक व आर्थिक जीवनः—मौर्य कालीन सामाजिक दशा पर मेगस्थनीज और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पूर्ण प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य ने लिखा है कि इस समय तक वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण विकास हो चुका था और समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार जातियों में विभाजित था। मेगस्थनीज के अनुसार समाज सात विभिन्न जातियों में बँटा हुआ था—दार्शनिक, कृषक, गोपालक, कारीगर, सैनिक वर्ग, गुप्तचर निरीक्षक तथा अमात्य। मौर्य कालीन समाज में विवाह संस्था का काफी महत्व था। इसे पारिवारिक जीवन की आधारशिला माना जाता था। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है। कौटिल्य ने विवाह-विच्छेद का भी वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि समाज में तलाक की प्रथा भी प्रचलित थी कौटिल्य ने विधवा विवाह का भी वर्णन किया है। स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था तथा उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियाँ पारिवारिक सम्पत्ति की अधिकारिणी समझी जाती थी। ऊँचे घरों की स्त्रियों में पर्दे की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी और यह प्रथा धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। स्त्रियों का क्षेत्र उनका घर ही था और अशिक्षित होने के कारण उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता था जिससे उनमें अन्धकार बढ़ता जा रहा था। सती प्रथा का इस काल में प्रचलन नहीं हुआ था। समाज में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी थी जो दर्शन शास्त्र का अध्ययन कर शांति के साथ जीवन व्यतीत करती थी। कुछ स्त्रियाँ संगीत, चित्रकला तथा नृत्य कला में निपुणता प्राप्त करती थी। और कुछ सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थी।

इस काल मे जनसाधारण का जीवन सुखी था। मनुष्य ईमानदार और सत्यवादी थे। मनोरंजन के लिए नाचना व गाना होता था। मल्ल-युद्ध भी होते थे। घोड़ों तथा बैलों के रथों की दौड़ और नाटक आमोद-प्रमोद के मुख्य साधन थे। इस समय मनुष्य स्वादिष्ट व पुष्टिकर भोजन का प्रयोग करते थे। सुरा का प्रयोग भी होता था किन्तु इस पर राज्य का नियंत्रण था। मौर्यकालीन समाज में दास प्रथा भी प्रचलित थी परन्तु यूनानी लेखकों ने इसका विरोध किया है। अशोक ने अपने शिलालेखों में दासों के साथ अच्छा बर्ताव करने की सलाह दी है।

आर्थिक दृष्टि से मौर्यकालीन भारत एक उन्नत व समृद्धिशाली देश था। इस काल में जन साधारण का जीवन काफी विकसित व सुव्यवस्थित हो गया था। इस काल

में भी कृषि ही भारतीयों का मुख्य उद्यम था। खेती का काम गाँवों तक ही सीमित था और मौर्यकालीन गाँव देश की उन्नति व समृद्धि के सूचक थे। कौटिल्य ने किसानों पर लगाए जाने वाले करों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सामान्यतया ये कर अधिक नहीं थे परन्तु युद्ध और अकाल के समय फसलों पर कर बढ़ाया जा सकता था। किसानों को कभी कभी बेगार भी करनी पड़ती थी। इस काल में उद्योग-धन्धों का अद्भुत विकास हुआ था। वस्त्र उत्पादन देश का मुख्य उद्योग था। मथुरा, काशी, वत्स और बंग वस्त्र उद्योग के मुख्य केन्द्र माने जाते थे। देश में सोने, चाँदी, हाथीदांत और अन्य कीमती वस्तुओं से सम्बन्धित अन्य उद्योग भी प्रचलित थे। उद्योग धन्धों के विकास से देश के व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। उस समय भारत आन्तरिक और विदेशी दोनों व्यापारों में काफी बढ़ा चढ़ा था। भारत और यूनान के बीच प्रचुर मात्रा में व्यापार होता था तथा यह व्यापार थल और जल दोनों ही मार्गों की सहायता से किया जाता था। भारत से कछुए की पीठ, हाथीदांत, मोती और नील इत्यादि वस्तुएँ मिश्र भेजी जाती थी। व्यापारियों ने अपने आपको संगठनों द्वारा काफी सुदृढ़ बना रखा था जिससे देश की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

शुंग काल में भी सामाजिक संगठन पर बल दिया गया। कुछ सुधारवादी धर्मों के कारण वर्णाश्रम व्यवस्था में ढील आ गई थी और अपरिपक्व सन्यास तथा भ्रष्टाचार भी फैल गये थे। अतः मनु ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को क्रमशः एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। कण्व वंश ने वैदिक धर्म व समाज की रक्षा की। कनिष्क ने एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की जिससे यातायात की अनेक सुविधाएं बढ़ गई। व्यापारिक काफिले तथा धर्म-प्रचारक विदेशों की यात्रा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करने लगे।

गुप्तकाल इतिहास का स्वर्णयुग है क्योंकि इस समय एक समुन्नत व सुसंगठित समाज विकसित हुआ तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भारी प्रगति हुई। जीवन के हर क्षेत्र में नवजीवन का निर्माण हुआ और स्फूर्ति आ गई। जैन और बौद्ध जैसे सुधारवादी आन्दोलनों के विरोध में वैदिक-प्रतिसुधारणा के युग का जन्म हुआ। अनेक विदेशी जातियाँ जैसे यूनानी शक, पह्लव, कुषाण आदि इस देश में ही बस गये। उन्हें पचाने के लिए पुनः एक नये ढाँचे की आवश्यकता हुई। ये विदेशी जातियाँ अब भारतीय होती जा रहीं थी। अतः वर्ण और आश्रम को कठोर न बनाकर अब उदार बनाया गया और मानव अब केवल कर्म के आधार पर अपना वर्ण चुन सकता था। हमे चारों वर्णों का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का—हमे इस काल में पूर्ण विवरण मिलता है और ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि आपस में वर्ण परिवर्तन और सम्पर्क सम्भव था। परन्तु कुछ जंगली जातियाँ अथवा चांडाल व नीचवृत्ति वाली व घुमक्कड़ जातियाँ समाज से बहिष्कृत थीं। फाह्यान ने बतलाया है कि चाण्डाल बस्ती के बाहर रहते थे। उच्चवर्ण विशेषतः राजवंश आपस में अन्तर्जातीय विवाह करता था। गुप्त शासकों ने नागवंश तथा ब्राह्मण वाकाटकों

में विवाह किया। राजा व धनी बहु विवाह करते थे। विधवा विवाह भी होते थे। विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त ने अपने भाई की पत्नी ध्रुव देवी से विवाह किया था। समाज में स्त्रियों का काफी ऊँचा स्थान था और यही एक लक्षण गुप्त राज्य के उत्थान का चिन्ह था।

हमें मूर्तियों तथा चित्रों से तथा तत्कालीन साहित्य में उल्लेखित घटनाओं से गुप्त कालीन वस्त्राभूषण, वेषभूषा आदि का भी पर्याप्त ज्ञान होता है। वस्त्रों में शिरोवेष्ठन, अङ्गरखा, कंचुकी तथा धोती आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार आभूषणों में कुण्डल, कर्णफूल, कण्ठहार, करधनी, कंगन तथा पायल आदि मूर्तियों पर अंकित मिलते हैं। यहाँ की वेशभूषा विदेशियों से प्रभावित हो चुकी थी तथा भोजन व खान पान पर जैन और बौद्ध प्रभाव आ चुके थे। फाह्यान ने लिखा है कि चाण्डालों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ माँस, मछली, प्याज तथा लहसुन आदि नहीं खाती थीं। इसी प्रकार नशीली वस्तुओं का प्रयोग भी वर्जित था। जनता का सामान्य रहन सहन व आचार-विचार का स्तर भी काफी ऊँचा था।

गुप्तकाल में कृषि, उद्योग-धन्धे तथा व्यापारादि सब समान रूप से उन्नत हुए। व्यापारियों के संगठन थे तथा बैंक का काम भी होता था। ब्याज पर ऋण देने का भी खूब प्रचलन था। गुप्त शासकों का साम्राज्य विस्तृत था, अतः जल व थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। रोम में गुप्त शासकों के दीनार सिक्के पाये गये हैं। चीन का रेशमी कपड़ा भारत में आता था और यहाँ से कपड़ा, मसाले, हीरे जवाहरात व आभूषण बाहर जाते थे। सुवर्ण, दीनार तथा चाँदी के कार्षापण सिक्के चलते थे। ताँबा और कौड़ियाँ भी काम में लाई जाती थीं।

हर्ष के समय में भी वर्ण और आश्रम व्यवस्था पर समाज आधारित था। ब्राह्मण का समाज में उच्च स्थान था और वह राज्य कार्य में भाग लेता था। अधिकांश जनता श्वेत वस्त्र पहनती थी और वस्त्र संख्या में कम होते थे। अनेक प्रकार के आभूषण जैसे हार, कुण्डल, कड़ा आदि प्रयोग में लाये जाते थे। मांस, लहसुन, प्याज आदि का प्रयोग निषिद्ध था। भोजन के प्रधान अंग घी, दूध, दही, चीनी, मिश्री, रोटी आदि थे। प्रचलित मनोरंजन के साधनों में शतरंज तथा पासे का खेल था और गांव में मदारी तथा नट अपनी कला दिखाते थे। यद्यपि स्त्रियाँ संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा शिक्षा आदि में उन्नतिशील थीं किन्तु उनकी दशा शोचनीय थी। राजघरानों में इनकी दशा और भी दयनीय थी। जनता का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही था जो अब शूद्रों तक सीमित रह गया ... वर्ग व्यापार करने लगा था। सरकार की ओर से सिंचाई की पर्याप्त ... तथा अन्तर्देशीय व्यापार उन्नत था। जल मार्ग से भी काफी ...।

... जीवन:—मौर्यकालीन भारत में प्रधानतया तीन धार्मिक सम्प्रदाय ...—ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध। वैदिक धर्म के अनुसरणकर्ता ब्राह्मण

यज्ञादिक्रियाकांडों में संलग्न रहते थे। वे बड़े धनी थे और दूर दूर के देशों से आये विद्यार्थियों को अपने घरों पर रखकर शिक्षा देते थे। पशु बलि भी प्रचलित थी। इस युग मे "वैदिक अनुष्ठान एवं औपनिषदिक विचारधारा दोनो ही धार्मिक जीवन की सक्रिय शक्तियाँ थी।" बौद्ध धर्म काफी उन्नत दशा पर पहुँच चुका था किन्तु यह समस्त भारत व विदेशों में इस काल में ही प्रसारित हो पाया था। अशोक के समस्त साधन इस धर्म के प्रसार में जुटा दिये गये थे। जैन धर्म का इस काल मे अधिक प्रचार नही हो पाया था। इस काल के बाद यह धर्म पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत मे फैल गया था। मन्दिर तथा धर्म-स्थानो का उच्च स्थान था और तीर्थ-यात्रा का भी पर्याप्त महत्व था। स्वर्ग व नरक की मान्यता थी। अनेक अन्ध विश्वास व रूढ़िवाद प्रचलित थे।

शुङ्गकालीन भारत में अश्वमेध यज्ञ के करने से ब्राह्मण धर्म की मर्यादा बढ़ी। इसी काल में मनुस्मृति जैसा धर्म शास्त्र, पातञ्जलि का महाभाष्य और महाभारत तथा रामायण के कई अंशों की रचना हुई। इस काल में ब्राह्मणों का चरित्र उन्नत दशा में था। काण्व वंश ने वैदिक धर्म तथा समाज की रक्षा की। कनिष्क के समय में बौद्धो के महायान धर्म का प्रभाव बढ़ गया था।

गुप्तकाल राष्ट्रीय पुनरुत्थान का युग कहलाता है। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत नाग वंश, वाकाटक तथा गुप्त सम्राटो ने वैदिक धर्म को न केवल अपनाया ही अपितु उसके समस्त कर्मकाण्ड को पुनः जीवन प्रदान किया। इतना अवश्य है कि समयानुकूल अब देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य को मानव रूप धारी अवतार मान लिया गया तथा यज्ञ के स्थान पर भक्ति मार्ग ने जन्म लिया। मन्दिर तथा मूर्तियाँ स्थापित की जाने लगीं। इसी प्रकार तीर्थों की पूजा पाठ तथा दान पुण्य की महिमा भी बढ़ गई। "आधुनिक हिन्दू धर्म की आधारशिला गुप्तों के समय में ही रख दी गई थी।"

बौद्ध धर्म के अनुयायी अब भी संख्या में काफी थे किन्तु वैदिक-अनिसुधारणा के फलस्वरूप उन्होंने भी अपने को सुधार लिया था और वैदिक धर्म के काफी निकट आगये थे। इस समन्वय में सबसे बड़ा योग भक्ति-मार्ग ने दिया। जैन धर्म भी इसी प्रकार भक्ति-मार्गी होता जा रहा था। आधुनिक जैन धर्म के मन्दिर, मूर्ति-पूजा, अर्चा, वन्दना आदि भी इस काल की ही उपज हैं। विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने के लिए जैन उत्तर भारत से दक्षिण की ओर हट चुके थे। यद्यपि गुप्त सम्राट वैष्णव अथवा शैव ही थे किन्तु वे सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे और सबके साथ बड़ी उदारता का व्यवहार करते थे। यहां तक कि राज्याश्रय तथा दान सबको दिया जाता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सेनापति अमरकदेव कट्टर बौद्ध था। फाह्यान ने भी राजवंश की इस उदार धार्मिक नीति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और कहता है कि यहां किसी धर्म के अनुयायी पर अत्याचार नहीं होता है।

महाराज हर्ष के समय में बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय महत्वपूर्ण होता जा रहा था। सम्राट हर्ष भी उस सम्प्रदाय पर ही कृपा रखते थे। बौद्ध धर्म मठों और

विहारों में सक्रिय था। ब्राह्मण धर्म के प्रमुख केन्द्र प्रयाग व वाराणसी थे। मन्दिरों में आदित्य, शिव और विष्णु की मूर्तियां प्रतिष्ठित की जाती थीं। अब शैव धर्म का विकृत होता जारहा था। कनौज में भी ब्राह्मण धर्म विकसित हो रहा था। जैन धर्म का केवल वैशाली तथा समतट तक ही सीमित रह गया था और यहाँ भी दिगम्बर सम्प्रदाय का ही जोर था। ह्वेनसांग ने जैनों के बारे में बहुत कम विवरण दिया है।

साहित्य और विज्ञानः—मौर्यों के समय में लोक भाषा प्राकृत की पर्याप्त उन्नति हुई। लिपि का व्यापक रूप से प्रचार हो गया तथा इहलौकिक व पारलौकिक-साहित्य का सृजन हुआ। काव्य, नाटक, अर्थशास्त्र आदि की रचना भी हुई। कामसूत्र को कोई इतिहासकार इस युग की ही रचना मानते हैं। कात्यायन द्वारा पाणिनि की व्याकरण का भाष्य इसी समय किया गया। तीनों धार्मिक धाराओं का प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया। गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र और वेदाङ्ग ग्रंथ, विशिष्ट बौद्ध-साहित्य, जैनाचार्य भद्रबाहु आदि की रचना इस काल की ही देन है। शुङ्गकाल में भी साहित्य को प्रोत्साहन मिला। "मध्य देश में बुद्धि जीवियों तथा बुद्धिमानों की दृष्टि में सन्यास-दृष्टिकोण का आकर्षण नष्ट हो गया। धर्मों की शक्ति सुदृढ़ हो गई, स्मृति न्याय की सत्ता को पुनः पूरी तरह से स्थापित किया गया। सामूहिक उत्साह की नयी लहर ने बौद्ध धर्म के प्रति संघर्ष के दृष्टिकोण, एक अधिक समृद्ध तथा पूर्णतर जीवन की खोज में, युद्ध देवता कार्तिकेय के सम्प्रदाय के पुनरुत्थान में तथा हिन्दू देवमण्डल में वासुदेव कृष्ण की प्रधानता में अभिव्यक्ति प्राप्त की।"

कनिष्क के समय में विशुद्ध साहित्यिक ग्रंथों के अतिरिक्त दर्शन-शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान के भी ग्रंथ लिखे गये। अश्वघोष एक दार्शनिक, लेखक, नाटककार, संगीतज्ञ, तथा कलाकार था। नागार्जुन प्रसिद्ध दार्शनिक था। चरक का प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रंथ 'चरक संहिता' इसी समय रचा गया।

"गुप्त युग की साहित्यिक समृद्धि की तुलना एथेन्स के इतिहास के पेरीक्लीज युग और अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के एलिजाबेथन युग से की जाती है।" इस [illegible] [illegible] संस्कृत साहित्य अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि [illegible] कालिदास इस युग में ही थे। किं[illegible] इस काल में ही [illegible] का राजा और कवि समुद्रगुप्त, [illegible], 'मृच्छकटिकम्' का लेखक शूद्रक, 'मुद्राराक्षस' का लेखक 'विशाखदत्त' तथा "वासवदत्ता" का लेखक 'सुबन्धु' आदि हुए हैं। 'अमरकोष' का लेखक अमरसिंह तथा प्रसिद्ध दार्शनिक [illegible] [illegible], प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ व गणितज्ञ आर्यभट्ट, वराहमिहिर, विष्णु शर्मा आदि इस काल में ही हुए थे। अनेक स्मृति व पुराण स्मृतियों की रचना भी इसी समय में हुई थी। इसी प्रकार रामायण व महाभारत के अन्तिम संस्करण भी इसी समय किये गए। प्रसिद्ध बौद्ध लेखक असंग, वसुबन्धु, कुमार जीव, [illegible] आदि तथा [illegible] [illegible] [illegible] आदि भी इसी समय हुए थे।

हर्ष के समय की भारतीय शिक्षा की ह्वेनसांग यात्री ने बड़ी प्रशंसा की है। उसने कहा है कि सात वर्ष की अवस्था से ही बालक को वैद्यक, तर्कशास्त्र, व्याकरण, यान्त्रिक कला और दर्शन शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। उसने अनेक शिक्षा केन्द्रों का भी वर्णन किया है जिनमें वल्लभी का हीनयान विश्वविद्यालय तथा नालंदा का महायान विश्वविद्यालय विशेष थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। हर्ष साहित्य प्रेमी था। उसने बाण भट्ट को राज्याश्रय दिया। बाण के सम्बन्धी मयूर को भी राजाश्रय दिया गया। मयूर ने अष्टक की रचना की। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कवि भर्तृहरी को भी हर्ष ने राज्याश्रय दिया था अथवा नहीं। हर्ष ने स्वयं 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका' तथा नागानन्द की रचना की।

कला:—अशोक के शासन काल में मौर्य कला पनपने लगी। विशाल स्तूप, सारनाथ का धर्म राजिका स्तूप, अनेक स्तम्भ जो चुनार के बलुआ पत्थर से बनाये जाते थे तथा सारनाथ का स्तम्भ तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अशोक के शासन काल में भिक्षुओं के निवास के लिए विहार तथा दरीगृह निर्मित किये गये। बाराबरा की पहाड़ियों में निर्मित गुफाओं में भिक्षु रहते थे। इन गुफाओं की दीवारें बड़ी चमकीली हैं। इन स्तम्भों की चमकती पॉलिश आज भी दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर देती है। अशोक ने अनेक भवनों का भी निर्माण करवाया था जिनके अवशेष अब नहीं मिलते हैं। चीनी यात्री फाह्यान ने एक ऐसे भवन को देखा था जिसकी उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की है और लिखा है कि "ऐसा अद्भुत भवन अशोक ने देवताओं द्वारा बनवाया होगा क्योंकि इसका निर्माण-कौशल मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं।"

शुङ्ग काल में कला की पर्याप्त उन्नति हुई। चित्रकार मनोहर तथा सजीव चित्र बनाते थे। "विदिशा के समीप साँची के प्रसिद्ध स्तूप के सुन्दर द्वारों के बनाने वाले शिल्पकार शुङ्ग राज्य के विदिशा के हाथी दांत के काम करने वाले कारीगर थे।" शुङ्ग कला के द्वारा अधिकांश जनता के मानस, सांस्कृतिक आदर्श तथा उसकी परंपरा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इसमें तत्कालीन जन-जीवन का चित्र यथार्थ रूप में चित्रित है। लोगों के मकान, देवताओं की मूर्तियाँ, साधुओं के आश्रम, गाड़ियाँ, रथ, नौका, वेश-भूषा, शस्त्र, आभूषण यथार्थ रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। कनिष्क के समय में कला के क्षेत्र में महायान धर्म के प्रभाव से बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया जाता था। गान्धार कला अर्थात मूर्ति कला की वह विशिष्ट शैली जो गान्धार प्रदेश के आसपास फली फूली इस समय की महान देन है। गान्धार के अतिरिक्त सारनाथ, अमरावती तथा मथुरा भी उस समय महान कला-केन्द्र थे।

गुप्तकालीन कला उत्कृष्ट थी। विदेशी शैली विशेषतया गान्धार और मथुरा, अब भारतीय हो गई और सौन्दर्य तथा भावाभिव्यक्ति में भी भारतीय कला इस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची। इस कला के आदर्श ने ही समस्त भारत की कला को प्रभावित कर दिया। अनेक विदेशी आक्रमणों के कारण अनेक कलाकृतियाँ नष्ट हो गई हैं,

विहारों में सक्रिय था। ब्राह्मण धर्म के प्रमुख केन्द्र प्रयाग व वाराणसी थे। मन्दिरों में आदित्य, शिव और विष्णु की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती थीं। अब शैव धर्म का ह्रा विकास होता जारहा था। कन्नौज में भी ब्राह्मण धर्म विकसित हो रहा था। जैन धर्म का केवल वैशाली तथा समतट तक ही सीमित रह गया था और यहाँ भी दिगम्बर सम्प्रदाय का ही जोर था। ह्वेनसांग ने जैनों के बारे में बहुत कम विवरण दिया है।

साहित्य और विज्ञान:—मौर्यों के समय में लोक भाषा प्राकृत की पर्याप्त उन्नति हुई। लिपि का व्यापक रूप से प्रचार हो गया तथा इहलौकिक व पारलौकिक-साहित्य का सृजन हुआ। काव्य नाटक, अर्थशास्त्र आदि की रचना भी हुई। कामसूत्र को भी इतिहासकार इस युग की ही रचना मानते हैं। कात्यायन द्वारा पाणिनि की व्याकरण का भाष्य इसी समय किया गया। तीनों धार्मिक धाराओं का प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया। गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र और वेदाङ्ग ग्रंथ, विशिष्ट बौद्ध-साहित्य, जैनाचार्य भद्रबाहु आदि की रचना इस काल की ही देन है। शुङ्गकाल में भी साहित्य को प्रोत्साहन मिला "मध्य देश में बुद्धि जीवियों तथा बुद्धिमानों की दृष्टि में सन्यास-दृष्टिकोण का आकर्षण नष्ट हो गया। धर्मों की शक्ति सुदृढ़ हो गई, स्मृति न्याय की सत्ता को पुनः पूरी तरह स्थापित किया गया। सामूहिक उत्साह को नयी लहर ने बौद्ध धर्म के प्रति संघर्ष दृष्टिकोण, एक अधिक समृद्ध तथा पूर्णतर जीवन की खोज में, युद्ध देवता कार्तिकेय सम्प्रदाय के पुनरुत्थान में तथा हिन्दू देवमण्डल में वासुदेव कृष्ण की प्रधानता अभिव्यक्ति प्राप्त की।"

कनिष्क के समय में विशुद्ध साहित्यिक ग्रंथों के अतिरिक्त दर्शन-शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान के भी ग्रंथ लिखे गये। अश्वघोष एक दार्शनिक, लेखक, नाटककार संगीतज्ञ, तथा महाकवि था। नागार्जुन प्रसिद्ध दार्शनिक था। चरक का प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रंथ 'चरक संहिता' इसी समय रचा गया।

"गुप्त युग की साहित्यिक समृद्धि की तुलना एथेन्स के इतिहास के पेरीक्लीयन युग और अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के एलिजाबेथन युग से की जाती है।" अब संस्कृत को राज्याश्रय मिल गया अतः संस्कृत साहित्य अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि महाकवि कालिदास इस युग में ही थे। फिर भी इस काल में ही काश्मीर का राजा और कवि मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, 'मृच्छकटिका' का लेखक शूद्रक, 'मुद्राराक्षस' का लेखक 'विशाखदत्त' तथा "वासवदत्ता" का लेखक 'सुबन्धु' आदि हुए हैं। 'काव्य लङ्कार' का लेखक भामह तथा प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री ईश्वर कृष्ण वात्स्यायन, प्रसिद्ध गणितज्ञ व ज्योतिषी आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, विष्णु शर्मा आदि इस समय में ही हुए थे। नारद स्मृति व पाराशर स्मृति की रचना भी इसी समय में हुई थी। इसी प्रकार पुराण व महाकाव्यों के अंतिम संस्करण भी इसी समय लिखे गये। प्रसिद्ध बौद्ध लेखक आचार्य मैत्रेय, असङ्ग, वसुबन्धु, कुमार जीव धर्मपाल आदि तथा जैनाचार्य चन्द्रमणि, सिद्धसेन देवनन्दिन आदि भी इसी समय हुए थे।

हर्ष के समय की भारतीय शिक्षा की ह्वेनसाग यात्री ने बड़ी प्रशंसा की है। उसने कहा है कि सात वर्ष की अवस्था से ही बालक को वैदक, तर्कशास्त्र, व्याकरण, यान्त्रिक कला और दर्शन शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। उसने अनेक शिक्षा केन्द्रों का भी वर्णन किया है जिनमें वल्लभी का हीनयान विश्वविद्यालय तथा नालंदा का महायान विश्वविद्यालय विशेष थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। हर्ष साहित्य प्रेमी था। उसने बाण भट्ट को राज्याश्रय दिया। बाण के सम्बन्धी मयूर को भी राजाश्रय दिया गया। मयूर ने भ्रष्टक की रचना की। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कवि भर्तृहरी को भी हर्ष ने राज्याश्रय दिया था अथवा नहीं। हर्ष ने स्वयं 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका' तथा नागानन्द की रचना की।

कला:—अशोक के शासन काल में मौर्य कला पनपने लगी। विशाल स्तूप, सारनाथ का धर्म राजिका स्तूप, अनेक स्तम्भ जो चुनार के बलुआ पत्थर से बनाये जाते थे तथा सारनाथ का स्तम्भ तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अशोक के शासन काल में भिक्षुओं के निवास के लिए विहार तथा दरीगृह निर्मित किये गये। बाराबरा की पहाड़ियों में निर्मित गुफाओं में भिक्षु रहते थे। इन गुफाओं की दीवारें बड़ी चमकीली हैं। इन स्तम्भों की चमकती पॉलिश आज भी दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देती है। अशोक ने अनेक भवनों का भी निर्माण करवाया था जिनके अवशेष अब नहीं मिलते हैं। चीनी यात्री फाह्यान ने एक ऐसे भवन को देखा था जिसकी उसने भूर-भूरि प्रशंसा की है और लिखा है कि "ऐसा अद्भुत भवन अशोक ने देवताओं द्वारा बनवाया होगा क्योंकि इसका निर्माण-कौशल मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं।"

शुङ्ग काल में कला की पर्याप्त उन्नति हुई। चित्रकार मनोहर तथा सजीव चित्र बनाते थे। "विदिशा के समीप साँची के प्रसिद्ध स्तूप के सुन्दर द्वारों के बनाने वाले शिल्पकार शुङ्ग राज्य के विदिशा के हाथी दाँत के काम करने वाले कारीगर थे।" शुङ्ग कला के द्वारा अधिकांश जनता के मानस, सांस्कृतिक आदर्श तथा उसकी परपरा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इसमें तत्कालीन जन-जीवन का चित्र यथार्थ रूप में चित्रित है। लोगों के मकान, देवताओं की मूर्तियाँ, साधुओं के आश्रम, गाड़ियाँ, रथ, नौका, वेश-भूषा, शस्त्र, आभूषण यथार्थ रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। कनिष्क के समय में कला के क्षेत्र में महायान धर्म के प्रभाव से बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया जाता था। गान्धार कला अर्थात मूर्ति कला की वह विशिष्ट शैली जो गान्धार प्रदेश के आसपास फली फूली इस समय की महान देन है। गान्धार के अतिरिक्त सारनाथ, अमरावती तथा मथुरा भी उस समय महान कला-केन्द्र थे।

गुप्तकालीन कला उत्कृष्ट थी। विदेशी शैली विशेषतया गान्धार और मथुरा, अब भारतीय हो गई और सौन्दर्य तथा भावाभिव्यक्ति में भी भारतीय कला इस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची। इस कला के आदर्श ने ही समस्त भारत की कला को प्रभावित कर दिया। अनेक विदेशी आक्रमणों के कारण अनेक कलाकृतियाँ नष्ट हो गई हैं,

फिर भी जो उदाहरण हैं, वे उत्कृष्ट कोटि की हैं। इस काल में ही वास्तुकला का सर्वो-त्कृष्ट रूप नागर व द्राविड़ शैली और वास्तु के रूप गुप्त विकास निर्मित हुए थे। इनमें भितरगाँव मंदिर, देवगढ़ के दुर्ग व नाचना मंदिर, बोधगया का महाबोधि मंदिर, कुशी नगर के महापरिनिर्वाण स्तूप, महरौली का लौह स्तम्भ, इस काल की वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। गुप्तकाल में मूर्तिकला भी काफी उन्नत व विकसित हुई थी। मूर्तियों की भावाकृति, केशविन्यास, वस्त्राभूषण आदि प्रशंसनीय हैं। विष्णु, शक्ति, शिव, बुद्ध, बोधिसत्व, पाँचों प्रमुख तीर्थंकर तथा अन्य तीर्थंकर आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। सारनाथ में प्राप्त धर्म-चक्र प्रवर्तन मुद्रा में भगवान बुद्ध की मूर्ति, कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार संगीत कला को भी राज्याश्रय मिला। समुद्र गुप्त स्वयं महान संगीतज्ञ था। चित्रकला का भी विकास हुआ था। यह कला के क्षेत्र में भी स्वर्ण युग था। हर्षकालीन मठों और विहारों की कलात्मक सुन्दरता की ह्वेनसांग ने प्रशंसा की है। उसने बुद्ध भगवान की अस्सी फीट ऊँची ताम्र मूर्ति की स्थापना की है। सीरपुर रायपुर जिले में लक्ष्मण का ईंटों वाला मन्दिर, हर्ष के समय की निर्माणकला का उत्कृष्ट नमूना है।

उपसंहार:—इस प्रकार संक्षेप में हमने मौर्यकाल से लेकर महाराज हर्षवर्धन के समय तक (अर्थात् ई० पू० ३२० से लेकर ६४८ ई० तक) की सभ्यता व संस्कृति का अवलोकन किया। वास्तव में यही युग भारत के इतिहास का स्वर्ण युग कहा जा सकता है—यद्यपि पुस्तकों में केवल गुप्तकाल को ही प्राचीन स्वर्ण युग (Classical age) की संज्ञा दी जाती है। राजनैतिक क्षेत्र में इस काल में शासन मूलतः एक ही प्रणाली से होता था; यात्रियों के समान रूप से सुख की व्यवस्था की गई थी; धार्मिक क्षेत्र में तीनों धर्मों में उतार-चढ़ाव हो रहे थे; सामाजिक जीवन एक सुव्यवस्थित रूप ले चुका था; आर्थिक क्षेत्र में कृषि प्रमुख उद्यम था और व्यापार की ओर भी तीव्र गति से प्रगति की जा रही थी। धर्म, साहित्य, कला तथा ज्ञान-विज्ञान की जागृति हो रही थी—हाँ गुप्तकाल में सर्वाङ्गीण जागृति हुई थी। अतः हमें प्राचीन भारत की स्वर्ण युगीन सभ्यता (Classical age) के अन्तर्गत इस पूरे काल की सभ्यता का ही अध्ययन करना चाहिए।

अध्ययन के लिए संकेत

(१) प्राचीन भारत की सभ्यता का वैभवकाल चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर हर्षवर्धन तक (३२० ई० पू० से ६४८ ई०) माना जाता है।

(२) मौर्य शासन प्रणाली आदर्श व्यवस्था थी। ग्राम और नगर दोनों का शासन व्यवस्थित व संगठित था। पुष्यमित्र शुंग ने एक विशाल सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना की। कनिष्क ने भी सैनिक बल तथा क्षेत्रीय शासन प्रणाली पर साम्राज्य की स्थापना की। गुप्त शासकों ने मौर्यों की सुन्दरतम शासन प्रणाली को पुनर्जीवित किया। विशाल साम्राज्य को कई प्रान्तों व प्रदेशों में बाँटा गया। राजस्व विभाग मुख्य विभाग

था। चार प्रकार के न्यायालय थे। देश में शान्ति थी। महाराज हर्ष ने भी गुप्त शासन प्रणाली का ही अनुसरण किया।

(३) मौर्य काल में समाज में वर्ण-व्यवस्था पनप चुकी थी। विवाह संस्था का महत्व था। कुछ स्त्रियाँ विदुषी थी किन्तु अधिकांश में महिला समाज का पतन हो चुका था। जन साधारण का जीवन सुखी था। आर्थिक दृष्टि से भी मौर्य कालीन समाज समृद्ध था। कृषि के साथ साथ उद्योग धन्धों का अद्भुत विकास हुआ था। विदेशों से व्यापार होता था। गुप्तकाल में एक समुन्नत व सुसंगठित समाज विकसित हुआ तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भारी प्रगति हुई। इस काल में कृषि, उद्योग धन्धे तथा व्यापारादि का समस्त रूप से उन्नत हुए। हर्ष के समय में भी समाज वर्ण और आश्रम पर आधारित था। ब्राह्मण का समाज में उच्च स्थान था।

(४) मौर्य कालीन भारत में प्रधानतया तीन धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित हो चुके थे। ब्राह्मण धर्मी थे। बौद्ध धर्म को अशोक ने खूब फैलाया। जैन धर्म इस काल में अधिक फल फूल नहीं सका था। गुप्तकालीन भारत में अश्वमेध यज्ञ के कारण ब्राह्मण धर्म की मर्यादा बढ़ी। गुप्तकाल राष्ट्रीय पुनरुत्थान का युग कहलाता है। आधुनिक हिन्दू धर्म की आधारशिला गुप्तों के समय में ही रख दी गई थी। बौद्ध धर्म के अनुयायी अब भी संख्या में काफी थे किन्तु वैदिक प्रतिसुधारण के फलस्वरूप उन्होंने अपने को सुधार लिया था और वैदिक धर्म के काफी निकट आ गये थे। आधुनिक जैन धर्म के मन्दिर, मूर्तिपूजा अर्चा, वन्दना आदि भी इस काल की ही उपज है। महाराज हर्ष के समय में बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय महत्वपूर्ण होता जा रहा था।

(५) मौर्य काल में साहित्यिक क्षेत्र में काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र आदि की रचना हुई। जैनों ने भी उत्तम ग्रन्थ रचे। कनिष्क के समय में विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन-शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान के भी ग्रन्थ लिखे गये। गुप्त युग साहित्यिक क्षेत्र में बहुत बढ़ा चढ़ा युग है। कालिदास, विशाख दत्त, शूद्रक, वात्सायन, आर्य भट्ट, ब्रह्मगुप्त, आचार्य मैत्रेय, चन्द्रगोमि, सिद्धसेन आदि इस युग में ही हुए। हर्ष के समय में बाण, मयूर, भर्तृहरि आदि हुए।

(६) अशोक के शासन काल में ,कला पनपने लगी। स्तूप, चैत्य विहार, भगवान बुद्ध की मूर्तियां कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। गुप्तकाल की मूर्तिकला बहुत उन्नत थी। हर्ष के समय मठ व विहार विकसित दशा में थे।

यह समस्त काल भारत की सभ्यता व संस्कृति का वैभव काल था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. Point out some outstanding achievements of classical Indian civilization.

प्राचीन भारतीय संस्कृति के कुछ प्रमुख कार्य-कलाप बतलाइये।

2 What do you understand by classical Indi
civilization? Point out its broad special features.

प्राचीन भारतीय संस्कृति से आप क्या समझते हैं ? मोटे रूप से उ
विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3 Write an essay on the society and culture of t
Guptas. Why is it called a golden age in the History
India?

गुप्तकालीन समाज व संस्कृति पर एक निबन्ध लिखिये। इसे इतिहास में स्
युग किसलिए कहा जाता है ?

अध्याय ७

Government and society in Medieval India

मध्यकालीन भारत में शासन-व्यवस्था व समाज

(१) प्रस्तावना (२) राजनैतिक जीवन (३) सामाजिक जीवन व आर्थिक जीवन (४) धार्मिक जीवन (५) साहित्य (६) कला।

प्रस्तावनाः—मध्यकालीन भारत से इतिहासकार सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सोलहवीं शताब्दी के दूसरे शतक तक के काल को मानते हैं अर्थात् सन् ६५० ई० से लेकर सन् १५२५ ई० तक का काल भारत के इतिहास में मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। इस लम्बे समय का विभाजन पुनः दो काल में किया जाता है—एक पूर्व मध्यकाल और दूसरा मध्यकाल। भारतीय इतिहास में पूर्व मध्यकाल से अभिप्राय सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी ई० तक का है। इस काल की विशेषता यह थी कि भारत अनेक छोटे छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था और ये स्वतन्त्र राज्य राजपूत शासकों के आधीन थे। अतः यह काल राजपूत काल के नाम से भी प्रसिद्ध है। यद्यपि इस काल में राजनैतिक क्षेत्र में पर्याप्त उथल-पुथल हुई तथापि राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा इस युग का सांस्कृतिक इतिहास अधिक महत्व रखता है। इस काल में साहित्यिक तथा कलात्मक क्षेत्र में जो अभूतपूर्व प्रगति हुई उसका न केवल भारतीय इतिहास में अपितु संसार के इतिहास में भी ऊँचा स्थान है।

दूसरा काल ग्यारहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अर्थात् १५२६ ई० तक माना जाता है। इस काल में भारत का शासन तुर्कों के हाथ में आगया था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने "भारत की खोज" में लिखा है कि तुर्क आक्रमण के समय विदेशी थे, परन्तु जब उन्होंने भारत में शासन करना आरम्भ कर दिया तो वे अपने को जड़ से भारतीय समझने लगे और भारत के अतिरिक्त अन्य देशों को उन्होंने विदेशी समझा। इसी प्रकार भारतवासियों ने मुसलमानों को आरम्भ में विदेशी आक्रमणकारी समझा, परन्तु जब वे उनको भारत से निकालने में असमर्थ रहे तो उनके निष्ठुर तथा दुराचारी होते हुए भी उनको अपना पड़ौसी समझने लगे। इस प्रकार जब लगभग तीन सौ वर्ष तक भारत मुसलमानों द्वारा शासित होता रहा तो भारतवासियों तथा मुसलमानों के जीवन में आपसी रहन सहन तथा आचार विचार में समन्वय होना स्वाभाविक था। प्रो० मार्शल का कहना है कि—"मानवता के इतिहास में दो व्यापक और समुन्नत किन्तु भिन्न सभ्यताओं के परस्पर मेल का ऐसा दृश्य कहीं नहीं मिलता।"

इन दोनों काल के, जो मध्य युग के अन्तर्गत आते हैं, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का हम यहां क्रमशः अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक जीवन:—समस्त भारत सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक अनेक छोटे छोटे प्रान्तों में बँटा हुआ था। महाराज हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त राजनैतिक एकता का आदर्श लुप्त प्राय: होने लगा था। छोटे छोटे प्रान्तों में स्थानीयता तथा वंश का आदर्श बल पारहा था और इसका परिणाम विदेशियों के आक्रमण के रूप में सामने आया। किसी प्रान्तीय राज्य में उस आक्रमण का सामना करने की शक्ति नहीं थी। फलत: देश को अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ा। कुछ राज्यों के प्रयत्न करने पर भी भारत एक राजनैतिक सूत्र में नहीं बन्ध सका। अत: राजनैतिक शक्ति का ह्रास हुआ। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने गणतान्त्रिक व्यवस्था को गणों का नाश कर समाप्त कर दिया था। अत: राजनैतिक चेतना का भी लोप हो गया और राज्य एकतान्त्रिक होने के साथ साथ ही निरंकुश भी हो गये। ग्राम पंचायतें केवल स्थानीय व्यवस्था से ही सम्बन्ध रखतीं थीं। अतः जनता अब राज भक्त चाटुकारिता आदि दुर्गुणों को आदर्श मानकर चलने लगी। अब सांघिक शक्ति का भी अभाव हो गया और प्रान्तीय राज्य आपस में संघर्ष करते रहे। सैनिक संगठन भी पुरानी लकीर पीटता रहा। संख्या में अधिक होते हुए भी भारतीय सेना विदेशी सेनाओं का सामना करने में असमर्थ रही।

ग्राम में शासन का पूर्णाधिकार ग्राम सभा को था। शासन विभिन्न कार्य के लिए निर्मित विभिन्न समितियों के द्वारा होता था। इन समितियों के सदस्यों का चयन बड़े सुव्यवस्थित तरीके से किया जाता था। ग्राम सभा राजकीय कर वसूल करती थी, शिक्षा का प्रबन्ध करती थी, ग्राम की रक्षा करती थी, मंडी की व बाजार की व्यवस्था, ग्रामीणों के हित के कार्य आदि समस्त कर्तव्य भी ग्राम सभा के ही थे।

बारहवीं शताब्दी के उपरान्त का मध्यकालीन भारत हमें भिन्न चित्र देता है, जैसाकि ऊपर हम देख चुके हैं, भारतवर्ष की राजनैतिक एकता तो हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त ही समाप्त हो गई थी और जो कुछ राजपूत कालीन राजनैतिक जीवन छोटे छोटे प्रदेशों में विभक्त भारत में विद्यमान था वह अन्तिम हिन्दू नरेश पृथ्वीराज चौहान की पराजय के पश्चात् समाप्त हो गया। यद्यपि यह भारत में मुस्लिम सत्ता का प्रारम्भिक काल था, परन्तु इस अपरिपक्व राजनैतिक अवस्था का भी भारतवासियों पर प्रभाव पड़ा क्योंकि समाज और जीवन राजनैतिक परिस्थितियों और प्रचलित शासन-व्यवस्था से अवश्य प्रभावित होता है।

दिल्ली के सुल्तान स्वतन्त्र एवं स्वेच्छाचारी थे। वे निरंकुश शासन करते थे। यही कारण था कि शनैः शनैः उन्होंने खलिफाओं का नियंत्रण अङ्गीकार करना समाप्त कर दिया था। सुल्तान कुछ मन्त्रियों की भी नियुक्ति करते थे परन्तु वे मन्त्री केवल सलाहकार के रूप में होते थे। अन्तिम निर्णय सुल्तान का ही माना जाता था। श्री एस. आर. शर्मा का कथन है कि "वास्तव में भारत में मुस्लिम राज्य सभी अर्थों में स्वाधीन होता था और सुल्तान समस्त प्रशासतात्मक व्यवस्था में धौड़ा होता था। कर्मचारियों की नियुक्ति में उसकी अनुकम्पा ही नियुक्त होने वाले अमीरों की योग्यता मानी जाती थी। अमीरों

का अस्तित्व सुल्तान की इच्छा पर आधारित होता था : अतः सुल्तान राज्य का सर्वेसर्वा, सम्पूर्ण शक्ति तथा न्याय का स्रोत होता था। वह राज्य का प्रभुत्व-सम्पन्न प्रमुख तथा सेना का अध्यक्ष होता था। उसकी इच्छा ही कानून थी।

मुस्लिम शासन धर्म पर आधारित था। उलेमा लोग सुल्तान के सलाहकार होते थे। काज़ी न्याय करते थे। मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कह कर पुकारते थे। उन्हें राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। उन्हें राज्य मे उच्च पद प्रदान नहीं किये जाते थे। अधिकांश सुल्तान इसी धारणा के थे कि हिन्दुओं को इतना दीन बना दिया जाए कि उन्हें दोनो समय भोजन नसीब न हो। उन्हें घुड़सवारी जैसे साधन उपलब्ध नहीं थे। अलाउद्दीन कहा करता था, "मैं इन हिन्दुओं को मेरे भय से भयभीत इस प्रकार घरों में घुसा देखना चाहता हूँ जिस प्रकार कि बिल्ली के भय से चूहे बिल में घुस जाते हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुओं का राजनैतिक जीवन में कुछ भी प्रभाव नहीं रहा था।

साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभाजित था। यद्यपि विभिन्न प्रान्तों के सूबेदारों की नियुक्ति सुल्तान स्वयं करता था और उन्हें हटाना भी सुल्तान ही के हाथों में था तथापि सूबेदार सुल्तान को कर देकर अपने को अन्य कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्र समझते थे। इनके पास स्वयं की सेना होती थी जिस पर समय समय पर सुल्तान को भी निर्भर रहना पड़ता था। इसी कारण प्रायः सूबेदार स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे। इन दिनों सिंहासन-रोहण का कोई नियम नहीं था। शासक की कसौटी उसकी शक्ति थी। राजनैतिक जीवन में इस प्रकार के परिवर्तन होते हुए भी भारत के प्राचीन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर मुस्लिम शासन का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

सामाजिक जीवन:—पूर्व मध्यकालीन समाज का विकेन्द्रीकरण हो रहा था। अब वर्ण-जाति जन्म से मानी जाने लगी और इनमें स्थानीय, साम्प्रदायिक तथा व्यवसाय सम्बन्धी अनेक वर्ग हो गये। समाज भी छोटी छोटी इकाइयों में बँट गया। यह भेद भोजन, विवाह, रीति-रिवाज, पूजा पद्धति आदि में विभिन्नता के कारण बढ़ता गया। समाज में संकीर्णता, ऊँच-नीच के विचार बढ़ रहे थे। निम्न वर्ग में चांडाल, शूद्र आदि समाज से बहिष्कृत कर दिये गये थे और इनका समाजिकरण पृथक हो गया था, फिर भी अभी तक समाज मे कट्टरता नहीं आई थी। समान वर्ण के विवाह उत्तम माने जाते थे किन्तु अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धार्मिक विवाह भी होते थे। कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द का विवाह बौद्ध राजकुमारी कुमार देवी के साथ हुआ था। विवाह अधिकतर वयस्क आयु में ही होते थे। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। छुआछूत बढ़ती जा रही थी किन्तु उच्चवर्णों के समाज में अभी तक सहभोज होता था। वैदिक काल की तुलना में स्त्रियों का स्थान काफी गिर गया था, फिर भी अभी तक उनका समुचित आदर होता था। कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। हमें

कई विदुषी स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं—मंडन मिश्र की पत्नी भारती, गणित शास्त्र में प्रवीण भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, काश्मीर की रानी दिद्दा और कर्नाटक की इलाम्बा, राजशेखर की पत्नी प्रसिद्ध कवियित्री अवन्ति सुन्दरी आदि। पर्दा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। सती प्रथा का काफी प्रचलन था। सुदूर दक्षिण में देवदासी प्रथा चालू हो गई थी। विधवा विवाह केवल छोटी जातियों में होता था।

उत्तर मध्यकाल में यद्यपि भारतवासियों के जीवन में कोईम हान परिवर्तन नहीं हुआ तथापि सैकड़ों वर्षों के सहवास से मुस्लिम जीवन का हिन्दुओं पर और हिन्दुओं का मुसलमानों पर प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं की राजपूत कालीन सामाजिक महत्ता अब क्षीण होने लगी। मुसलमान तो प्रारम्भ से ही हिन्दू सभ्यता को समाप्त करने पर तुले हुए थे। लाखों हिन्दुओं को यवन बनाया गया और हजारों देवालयों को धाराशायी किया गया। कत्लेआम तथा जबरदस्ती धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी जब वे भारत को मुसलमानों का देश न बना सके तो इन्होंने शान्ति से उनके साथ रहने का प्रयास किया। तब बल पूर्वक मुसलमानों ने हिन्दू महिलाओं के साथ विवाह करना प्रारम्भ किया तो उन हिन्दू-स्त्रियों ने उनके हरम में हिन्दू रीति रिवाजों का प्रचलन प्रारम्भ किया और मुसलमानों के शुष्क हृदय में सरसता का संचार कर उनकी निष्ठुरता एवं कठोरता को कोमलता में परिणित करने का प्रयास किया परन्तु हिन्दू समाज पर इसका उलटा प्रभाव पड़ा। स्त्रियों ने अपनी इज्जत बचाने के लिए सती-प्रथा का कठोरता से पालन करना प्रारम्भ किया तथा उनमें पर्दा प्रथा कठोर रूप से चालू हुई।

माता पिता ने अपनी इज्जत रखने के लिए अपनी पुत्रियों की बाल्यावस्था में ही शादी करना प्रारम्भ किया। यद्यपि हिन्दुओं की जाति-प्रथा की बुराइयां स्पष्ट होने लगीं थीं किन्तु फिर भी अपने सामाजिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उन्होंने जाति-प्रथा का दृढ़ता से पालन किया। जार्ज वर्डस्वर्ड ने ठीक ही कहा है कि—"जब तक हिन्दू जाति-प्रथा को कायम रखेंगे तब तक ही हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान रहेगा अन्यथा नहीं।"

मुसलमानों के हाथ भारत की अतुल सम्पत्ति आ गई थी क्योंकि वे यहाँ के शासक बन गये थे। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता से करों के रूप में खूब धन एकत्र किया। भूमि कर, धार्मिक कर अथवा जजिया उस समय के प्रमुख कर थे। जजिया उस समय मुस्लिम शासकों की आय का तथा हिन्दुओं को अपमानित करने का प्रमुख साधन था। भूमि कर की दर उस समय $\frac{1}{3}$ से लेकर $\frac{1}{2}$ तक थी। अलाउद्दीन खिलजी तथा मोहम्मद तुगलक ने ५० प्रतिशत तक भूमि कर वसूल किया। इसके अतिरिक्त लूट तथा लावारिसों की सम्पत्ति को जब्त कर लेना भी दिल्ली के सुलतानों की आमदनी का एक अच्छा साधन था। लूट के माल से कभी कभी सैनिक भी धनवान हो जाता था। परन्तु उन्होंने यह धन प्रजा हित में व्यय न कर अपने आमोद-प्रमोद में व्यय किया। यही कारण था कि उनका जीवन विलासी बन गया था और हिन्दू दरिद्र बन गये थे। हिन्दू स्त्रियों को

मुसलमानों के यहाँ निम्न कोटि के कार्य करने पड़ते थे। देश का व्यापार तब भी हिन्दुओं ही के हाथों में था। व्यापार बराबर उन्नत होता जा रहा था। अतः हिन्दू व्यापारियों की आर्थिक दशा अधिक शोचनीय नहीं हुई थी। कृषि की अवस्था मुसलमानों के आक्रमणों के कारण अवनत हुई और कृषकों का शोषण भी सर्वाधिक हुआ। अतः अमीर खुसरो ने लिखा कि, "शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों के रक्त बिन्दुओं से बना है।" गृह उद्योग निरन्तर विकसित होते रहे।

धार्मिक जीवन: गुप्त काल मे उत्पन्न धार्मिक प्रवृत्तियाँ मध्यकाल के प्रारम्भ तक चलती रहीं। वैदिक प्रति सुधारणा के फल स्वरूप ब्राह्मण धर्म अधिक लोकप्रिय हो रहा था और अन्य सम्प्रदायों को अपने में पचा रहा था। इस काल में कुमारिल और शंकराचार्य जैसे सुधारक हुए। कुमारिल ने वैदिक कर्मकाण्ड को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का ऊंचा तत्वज्ञान दिया। उन्होंने जैन और बौद्ध दर्शन के अनेक सिद्धान्तों को वैदिक धर्म मे सम्मिलित किया तथा बौद्ध मत का घोर खंडन किया। इस काल में ही बुद्ध की गणना ब्राह्मणों के दस अवतारों में होने लगी। अपनी इस समन्वय शक्ति से वैदिक धर्म समाज का व्यापक धर्म हो गया। धार्मिक क्षेत्र में सबसे अहितकर बात धर्म का कई सम्प्रदायों व उपसम्प्रदायों में बँटना था—जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म सौर, गणपत्य आदि। इनमें भी अनेक उप-सम्प्रदाय थे। अब वाह्य आडम्बर बढ़ गया। वैष्णवों में गोपी लीला समाज, शैवों मे पाशुपत, कापालिक तथा अघोर पन्थी समाज, शक्ति में आनन्द भैरवी, भैरवी चक्र, सिद्धि मार्ग आदि अनैतिक पन्थ उत्पन्न होगये। ब्राह्मणों में भी तान्त्रिकवाद बढ़ता जा रहा था। इन भ्रष्टाचारी मार्गों मे समाज की रक्षा करने के लिए कई महात्माओं का जन्म हुआ जिसमे ब्राह्मण धर्म इस्लाम का सामना कर जीवित रह सका। इन सन्तों मे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, तामिल, में आलवार वैष्णव सन्त, नायनमार, काश्मीर में नन्द शैव धर्म, कर्नाटक में लिंगायत आदि उल्लेखनीय है।

ब्राह्मण धर्म की तरह बौद्ध धर्म में भी वाह्याडम्बर, विलासिता भ्रष्टाचार बढ़ रहा था। बौद्ध भी तान्त्रिक और वाम मार्गी हो गये थे। इनके विहार विलासिता के केन्द्र बन गये थे। तिब्बत और हिमालय प्रदेश की जातियों के सम्पर्क के कारण भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति बढ़ती चली गई। ह्वेनसांग ने स्वयं इस प्रवृत्ति को सिन्ध में प्रचलित देखा। यह पतित दशा मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भी थी। ऐसे जर्जरित बौद्ध धर्म पर शंकर और रामानुज का आन्तरिक प्रहार और मुसलमानों का वाह्य आक्रमण घातक सिद्ध हुआ। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म भारत में सदा के लिये लुप्त हो गया। जैन धर्म ने भी अपना मार्ग बदला। मन्दिर, मूर्ति पूजा, अर्चना, वन्दना आदि प्रवृत्तियों के साथ साथ अब इसमें अन्ध-विश्वास भी घर कर गया था। इनमें अनेक सम्प्रदाय व उपसम्प्रदाय बन गये। फिर भी इनके कठोर

आचार और उदासीन वृति ने इनमें वाम मार्गी तथा भ्रष्टाचारी प्रवृत्तियों का समावेश नहीं होने दिया। कठोर आचार तथा तपस्या के कारण जैन धर्म के अनुयायियों की संख्या कम हो रही थी और इस धर्म के मानने वाले गुजरात व महाराष्ट्र से कर्नाटक व द्रविड़ प्रदेश तक फैल गए थे। इस प्रकार सामान्य धार्मिक जीवन में कई एक अन्ध-विश्वास घर कर गये थे जिससे जनजीवन में अपने भविष्य के प्रति अविश्वास, कलियुग की हीनता में विश्वास, भाग्यवाद, फलितज्योतिष, भूत प्रेत, जादू टोना आदि में विश्वास बढ़ता गया।

मुस्लिम काल में मुसलमानों के भारत पर आक्रमण तथा आक्रमण के समय बरती गई नीति ने हिन्दुओं की धार्मिक भावना को बड़ी ठेस पहुँचाई। जिस समय महमूद गजनवी ने भारत-विख्यात सोमनाथ की मूर्ति खंडित की तो हिन्दुओं को मूर्ति पूजा से कुछ श्रद्धा उठने लगी थी और उन्हें परमात्मा के अस्तित्व में कुछ शंका होने लगी थी। उनके धार्मिक जीवन में शनैः शनैः उदासीनता प्रवेश कर रही थी। फिर भी हिन्दुओं के हृदय में सदियों पुराने हिन्दू संस्कार अपना स्थान नहीं छोड़ सकते थे। इसके विपरीत उनके हृदय में धार्मिक भावना दृढ़ता से गहरी बैठती गई। भारतीय संस्कृति की रक्षा सदा महात्माओं ने की है। इस समय भी कुछ ऐसे महात्मा उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दू धर्म में प्रविष्ट बुराइयों को दूर कर भक्ति-प्रसार से उनके नीरस जीवन को सरस बनाने का प्रयास किया। इस प्रयास को 'भक्ति आन्दोलन' के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि भक्ति मार्ग भारत में कोई नया मार्ग नहीं था और उपनिषदों में इसका बीज मिलता है तथा 'गीता' व 'भागवत' में इसका विशद विश्लेषण किया गया है तथापि विभिन्न समय पर विभिन्न धर्माचार्यों ने विभिन्न प्रकार से इस पर जोर दिया है। तेरहवीं व चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन में सहयोग देने वाले महात्माओं का संक्षेप में विवरण दिया जाता है।

रामानुजाचार्यः—ये भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक थे। इनका जन्म १०१६ ई० में कांजीवरम् में हुआ था। ये विशिष्ट द्वैतवादी थे। वे स्वामी शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने वैष्णव मत के आधार पर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उनका मन्तव्य था कि ईश्वर किसी शून्यता का नाम नहीं है, किन्तु प्रेम तथा सौन्दर्य की मूर्ति को ही ईश्वर कहते हैं। उनका कहना था कि विष्णु सर्वेश्वर हैं और वे मनुष्य पर दयाकर इस पृथ्वी पर जन्म लेते रहते हैं। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की तथा अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए ७०० मठों की स्थापना की।

रामानन्दः—ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे और वैष्णव थे। ये जाति-प्रथा में विश्वास नहीं रखते थे। इनके समाज में सभी वर्गों के शिष्य विद्यमान थे। इनके समय से पूर्व कृष्ण-भक्ति प्रचार थी। इन्होंने राम भक्ति का प्रचार किया। इनके शिष्यों ने कुछ कुछ का राम-भक्ति का प्रचार अपनी भाषा हिन्दी में किया।

कबीरः—कबीर का जन्म १३६८ ई० में हुआ था। इनका पालन पोषण नीरू तथा नीमा नाम के मुस्लिम परिवार ने किया था। ये एक कट्टर सुधारक थे और एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। ईश्वर की एकता में उनका अटल विश्वास था। ये निराकार निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। इन्हें भी जाति प्रथा से घृणा थी और मूर्ति पूजा में भी इन्हें विश्वास नहीं था। ये अपनी स्पष्टवादिता के लिए विख्यात हैं। उन्होंने हिन्दू व मुसलमान दोनों को बाह्य आडम्बर के लिए फटकारा। उन्हें रहस्यवादी कवि भी माना जाता है।

नामदेवः—इनका नाम दक्षिण भारत के भक्त कवियों में विख्यात है। ये एक निम्न जाति के मराठा साधु थे। इन्होंने जाति बन्धनों की कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्तिपूजा पर बल देते हुए ईश्वर की एकता में विश्वास प्रकट किया है। ये भक्ति को ही मोक्ष का प्रमुख साधन समझते थे।

गुरु नानकः—ये भी एक आदर्शवादी सुधारक थे। इनका जन्म १४६४ ई० लाहौर के निकट तलवन्डी नामक ग्राम में हुआ था। इन पर इस्लाम की सादगी का गहरा प्रभाव पड़ा था। ये भी एकेश्वरवादी थे और जाति प्रथा को नहीं मानते थे। ये सिक्ख धर्म के प्रवर्तक थे। सन्यास धारण करने के पश्चात् ये अपने विचारों को फैलाने के लिए देश के विभिन्न भागों में घूमते रहे और १५३८ ई० में करतारपुर के समीप इनका देहान्त हो गया।

वल्लभाचार्यः—ये वैष्णवों की एक दूसरी शाखा के प्रधान पोषक थे। इनका जन्म १४७६ ई० में बनारस के समीप एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये कृष्ण के महान भक्त थे और कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते थे। इन्होंने शुद्धाद्वैत का प्रचार किया। इनकी मान्यता थी कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पहले संसार से विरक्ति लेना आवश्यक है। इनके सिद्धान्तों का प्रचार विशेष रूप से ब्रजमण्डल, गुजरात तथा राजस्थान में हुआ।

चैतन्य महाप्रभु.—ये बंगाल के महान सुधारकों में से थे। इनका जन्म १४८५ ई० में नदिया में हुआ था। इन्होंने २५ वर्ष की आयु में ही वैराग्य ले लिया था। चैतन्य अपने विचारों का प्रचार करने के लिए इधर उधर घूमते थे। ये भी जाति-प्रथा से घृणा करते थे। ये कर्म से भी अधिक भगवान की भक्ति को स्थान देते थे। इनके इष्टदेव कृष्ण थे। अतः ये जनसाधारण को भगवान कृष्ण की उपासना करने का ही उपदेश देते थे। इन्होंने आचरण की शुद्धता पर विशेष रूप से जोर दिया। १५३३ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

भक्ति आन्दोलन पन्द्रहवीं शताब्दी में ही समाप्त नहीं हुआ वरन् आगे भी चलता रहा। महात्मा तुलसीदास, सूरदास तथा मीराबाई ने इसे सफलता पूर्वक संचालित किया और भारत-वासियों को भगवद्-भक्ति का पाठ पढ़ाया।

इस आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय जन-जीवन में एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ। हिन्दू-धर्म में से मिथ्याडम्बर दूर किया गया। किसी सीमा तक हिन्दू समाज में से ऊँच-नीच की भावना भी कम हुई। निम्न वर्णों के लोगों को भी समाज में आदर मिलने लगा। संस्कृत के स्थान पर सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग होने लगा। इस आन्दोलन से हिन्दू समाज में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हुई जिसके कारण वे मुसलमानों के सामाजिक जीवन के आगे पूर्णतया घुटने नहीं टेक सके। इसका एक परिणाम यह भी निकला कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को और मुसलमानों ने हिन्दुओं को समझने का प्रयास किया।

साहित्य:—पूर्व मध्यकाल में भारत की साहित्यिक भाषा संस्कृत थी यहाँ तक कि बौद्ध और जैन भी संस्कृत में अपने ग्रन्थ लिखने लगे थे। राजकीय दान-पत्र, प्रशस्ति-पत्र तथा साहित्य और शास्त्रीय-ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जाते थे। लगभग दसवीं शताब्दी के अन्त में प्रान्तीय भाषाएँ उदाहरणार्थ—हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, तामिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम आदि विकसित होरहीं थीं। गुप्त-कालीन साहित्यिक प्रगति का प्रवाह अब भी बह रहा था, परन्तु उसका वेग तीव्र नहीं था। हर्ष और बाण की रचनाओं के अतिरिक्त भवभूति, वाक्पतिराज, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, कल्हण, विल्हण, जयदेव, भट्टनारायण, भोज, विग्रहराज, माघ तथा श्री हर्ष की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

दर्शन के क्षेत्र में शंकर, रामानुज, धर्मकीर्ति आदि के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। व्याकरण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, दण्डनीति, गणित, संगीत आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इस युग के साहित्य में सरलता के स्थान पर क्लिष्टता आगई। दर्शन में शुष्क तर्क का आविर्भाव हुआ। इस समय के लेखक दूरदर्शी व मौलिक नहीं थे केवल अतीत का अनुकरण करने वाले थे। समाज में शिक्षा का उच्च स्थान था। प्राचीन शिक्षा प्रणाली ही प्रचलित थी। समस्त भारत में बौद्ध विहार, मन्दिर, मठ, आश्रम और गुरुकुल फैले हुए थे। इस काल को मौलिक रचनाओं का काल नहीं कहा जा सकता है।

मुस्लिम काल में तुर्कों और अफ़गानों की राज्य भाषा फारसी थी। भारत का जन-साधारण प्रान्तीय भाषा का प्रयोग करता था। शनैः शनैः दोनों भाषाओं का सम्मिश्रण प्रारम्भ हुआ। भारतीय जन-साधारण की भाषाओं में फारसी व अरबी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा। इस प्रकार अनायास ही उर्दू भाषा का जन्म होगया। उर्दू के जन्म से हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क और निकटतम होगया। साहित्यिक प्रगति भी सराहनीय रही। प्रसिद्ध मुसलमान कवि अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में अपनी साहित्यिक रचनाएँ भेंट की। जायसी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ 'पद्मावत' की रचना इसी समय की। इसी प्रकार मुस्लिम सन्त कबीर आदि ने हिन्दी को खूब अपनाया। फारसी साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। खुसरो, मौलाना मोइनुद्दीन, मौलाना अहमद थानेश्वरी, बदरुद्दीन शाकर शेख आदि ने अपने अमर ग्रन्थों की रचना इसी काल में की।

बङ्गला साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ और मुस्लिम सुल्तानों ने इसे काफी प्रोत्साहन दिया। विद्यापति, कृत्तिवास आदि बङ्गाली कवियों को राज्याश्रय मिला।

कला:—पूर्व मध्य-कालीन भारत में राजाओं ने मन्दिर बनवाने को न केवल प्रोत्साहन ही दिया था बल्कि कलाकारों को आश्रय भी प्रदान किया। इस काल में गुप्त-कालीन कला की सरलता, सजीवता और मौलिक कल्पना का सर्वथा अभाव है किन्तु यह कला सज्जित और शृंगार से परिपूर्ण है। मुसलमानों के आक्रमणों से कला के उच्चकोटि के नमूने तो नष्ट हो गये फिर भी अनेक राजप्रासाद, देवालय, मूर्ति, द्वार आदि अब भी तत्कालीन कला के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में शेष हैं। उत्तर भारत में मन्दिरों की नागर शैली थी, जिसमें ऊँचे-ऊँचे शिखर बनाये जाते थे। दक्षिण भारत में वेसर शैली थी जिसके उदाहरण बीजापुर और एलोरा के आस-पास मिलते हैं। सुदूर दक्षिण में द्रविड़ शैली थी जिसमें मन्दिरों के ऊपर विशाल विमान या रथ बनाये जाते थे। मन्दिरों में अलंकार और सजावट अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। उत्तरी भारत के मन्दिरों में बुन्देलखण्ड के देवगढ़ व खजुराहो उड़ीसा में भुवनेश्वर, आबू में दिलवाड़ा तथा ग्वालियर उदयपुर, काश्मीर आदि के मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। इलौरा का कैलाश मन्दिर वेसर शैली का सुन्दर नमूना है। तंजौर, कांची, मदुरा, महाबलीपुरम में द्रविड़ शैली के मन्दिर विद्यमान हैं। मन्दिर निर्माण में अतुल धनराशि व्यय की गई थी। मन्दिर कई भागों में विभाजित होने के कारण विशाल रूप धारण कर गये थे। अनेक सम्प्रदाय, उप-सम्प्रदाय बढ़ने के कारण देवी-देवता यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, नाग, पशु, पक्षी आदि की मूर्तियाँ बनती थी। ब्राह्मण देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, गणेश आदि; बौद्धों में बुद्ध, अवलोकितेश्वर आदि; जैनियों में तीर्थंङ्कर आदि की मूर्तियाँ बनती थीं। मूर्तियाँ कला की दृष्टि से उच्च-कोटि की होती थीं और पत्थर, कांसा, तांबा, सोना आदि की निर्मित होती थीं।

चित्रकला विकसित थी फिर भी इसके इतने अधिक उदाहरण नहीं मिलते हैं जितने कि मन्दिर और मूर्तियों के। चित्रकला के कुछ अच्छे नमूने अजन्ता के गुफा मन्दिरों में और कुछ सीमन, लंका आदि के खण्डहरों में मिलते हैं।

मुस्लिम कालीन मध्यभारत में हिन्दु-मुस्लिम सम्पर्क का सबसे बड़ा प्रतीक हमें कला के क्षेत्र में वास्तु कला में मिलता है। इस काल की वास्तु कला को 'इण्डो-सारसेनिक अथवा 'इण्डो-मुस्लिम' या 'पठान कला' के नाम से पुकारते हैं। मुस्लिम सुल्तानों ने वृहत् इमारतें बनवाईं किन्तु उनके बनवाने में भारतीय कारीगरों का ही उपयोग किया गया। अन्दर विचार, डिजाइन आदि मुसलमानों के होते हुए भी भारतीय कारीगरों ने अपने आदर्शों की छाप उस समय के भवनों आदि पर डाल ही दी। इस कला के उत्कृष्ट नमूनों में कुतुब मिनार, दरगाह औलिया, अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, अदीना मस्जिद आदि की गणना की जाती है।

इसी प्रकार संगीत कला में भी हिन्दु-मुस्लिम सम्पर्क से कई नवीन चीजों का निर्माण हुआ। कव्वाली और खयाल मुसलमानों की देन हैं जिसे कालान्तर में हिन्दुओं ने अपना लिया। चित्र कला का भी इस समय पर्याप्त विकास हुआ।

अध्याय-सार

(१) मध्यकालीन भारत का काल सन् ६५० ई० से सन् १५२६ ई० तक का माना जाता है—पूर्वार्द्ध में राजपूत काल माना है और उत्तरार्द्ध में सुल्तानों का समय माना जाता है।

(२) राजपूतकाल में छोटे-छोटे प्रान्तीय निरंकुश राज्य हो गये। राजनैतिक चेतना लुप्त हो गई। विदेशी नीति के प्रति उदासीनता आ गई। विदेशियों के आक्रमण से देश की रक्षा नहीं की जा सकी।

सुल्तानों के समय में शासक निरंकुश थे। ये शासक धर्म के आधार पर शासन करते थे। राजपूत शक्ति का ह्रास हो चुका था। मुस्लिम राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था। निर्बल सुल्तान के समय में सूबेदार अपने को स्वतन्त्र बनाने का प्रयास कर रहे थे।

(३) पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक जीवन में विकेन्द्रीकरण आ गया। समाज छोटी छोटी इकाइयों में बँट गया व संकीर्ण हो गया फिर भी उसमें लचीलापन था।

मुस्लिम आक्रमण तथा मुस्लिम शासन से हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। मुसलमानों के आने से हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा तथा बाल-विवाह आरम्भ हुआ। लूट के माल से मुस्लिम शासक व सेना दोनों धनी हो गए। मुसलमानों का जीवन विलासी था। हिन्दुओं का आर्थिक जीवन शोचनीय था। वे करों के भार से दबे रहते थे। हिन्दू महिलाओं को मुसलमान अमीरों के घरों के काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

(४) राजपूत काल में ब्राह्मण धर्म अधिक व्यापक व लोकप्रिय बन गया। जनता के धार्मिक जीवन में आडम्बर और बाह्याचरण की वृद्धि हो गई। बौद्ध धर्म भारत से लुप्त होगया।

सुल्तानों के समय में मुसलमानो के आक्रमण तथा उन द्वारा बरती गई नीति से हिन्दुओं की धार्मिक वृत्ति को बड़ी ठेस पहुँची। हिन्दुओं की मूर्तिपूजा के लिए निष्ठा कम होने लगी और परमात्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी हिन्दू समाज में विभिन्न धारणायें उत्पन्न होने लगीं। इस काल में भारत में रामानुजाचार्य, रामानन्द, कबीर, नामदेव, गुरुनानक, वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु जैसे महात्मा पैदा हुए। उन्होंने अपने उपदेशों से भारत में विभिन्न प्रकार की भक्ति का सूत्रपात किया। भक्ति आन्दोलन से हिन्दू धर्म की रक्षा हुई।

(५) साहित्य और राज्य की भाषा पूर्व मध्यकाल में संस्कृत थी। रचनाओं में सरलता, सजीवता और मौलिकता का अभाव था। साहित्य दर्शन के क्षेत्र में इस समय अपूर्व प्रगति हुई। मुस्लिम काल में तुर्कों और अफगानों की राज्य भाषा फारसी थी। जनसाधारण हिन्दी का प्रयोग करते थे। अनेक मुस्लिम हिन्दी कवि हुए।

(६) राजपूत काल में ललित कलाओं को राज्याश्रय प्राप्त था। मुस्लिम काल में हिन्दू सम्पर्क से पठान कला ने जन्म लिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) What do you understand by Medieval India? What is the importance of Pre-Medieval period in the History of India? What were the changes in the Political and Social life during the period and how did they affect India?

मध्यकालीन भारत में आप कौनसे काल की गणना करेंगे? भारतीय इतिहास में पूर्व मध्यकाल का क्या महत्व है? इस काल के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में क्या परिवर्तन हुए और भारत पर उनका क्या प्रभाव पड़ा?

(२) Describe the religious and cultural condition of India during the Pre-Medieval period.

पूर्व मध्यकालीन भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

(३) What do you mean by 'Bhakti Movement'? Show its importance in the History of India?

भक्ति-आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? इसका भारत के इतिहास में महत्व समझाइये।

(४) Describe the economic, Social and religious condition of the people in medieval India under the Delhi Sultanate.

दिल्ली सल्तनत के आधीन मध्यकालीन भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का वर्णन कीजिए।

Growth of composite Indian Culture

भारत की समन्वित संस्कृति का विकास

(१) प्रस्तावना (२) सामाजिक जीवन (३) आर्थिक जीवन (४) शिक्षा और साहित्य (५) धार्मिक जीवन (६) भवन-निर्माण कला (७) चित्र कला (८) संगीत।

प्रस्तावना:—भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। विश्व में जब-जब सभ्यता का समारम्भ काल था तब भारतीय संस्कृति अपने उत्थान मार्ग पर द्रुत गति से चली जा रही थी। धर्म और आध्यात्मवाद इस संस्कृति में विशिष्ट स्थान रखते हैं तथा समन्वय और एकीकरण की इसमें अपार शक्ति है। प्रो० डाडवेल के मतानुसार इसमें समुद्र की भाँति सोखने की शक्ति है। पहले बताया जा चुका है कि विदेशी जातियों ने भारतीय संस्कृति को यथा-शक्ति प्रभावित किया। विदेशी आक्रमण-कारियों की शृंखला में मध्य-एशिया के राजकुमार जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने १५२६ को तत्कालीन दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को पानीपत के मैदान में पराजित किया और दूसरे ही वर्ष खनवाह के युद्ध में राणासांगा को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। इस वंश का अन्तिम बादशाह बहादुरशाह था जिसे १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बन्दी बना लिया गया पर इस वंश का अन्तिम प्रभावशाली सम्राट औरङ्गजेब था जो कि १७०७ में मरा। १७०७ से १८५७ तक के मुगलवंश के उत्तराधिकारी निर्बल एवं अयोग्य थे। १५२६ से १७०७ तक के मुगल शासन में भारतीय संस्कृति पर मुगल संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा। भारतीय संस्कृति ने, बिना अपने अस्तित्व खोये, अपने समन्वय और सहिष्णुता के तत्वों के आधार पर अपने काल में कई प्रकार के संवर्धन किए। इस काल की संस्कृति मुगल कालीन समन्वित संस्कृति के नाम से जानी जाती है। प्रोफेसर एस. आर. शर्मा के मतानुसार मुगल संस्कृति के तत्व न तो हिन्दू हैं और न मुस्लिम पर दोनों का सुन्दरतम समन्वय है। प्रारम्भिक मुसलमानों ने प्रत्येक हिन्दू वस्तु का नाश किया पर मुगलकालीन मुसलमानों ने ऐसा न कर उसे अपनाया तथा उनमें अपने तत्वों का मिश्रण कर एक नवीन संस्कृति का रूप दिया। इसी कारण इस संस्कृति का अपना विशिष्ट स्थान है।

सामाजिक जीवन

मुगलकालीन समाज तीन वर्गों में विभक्त था एक सामन्त वर्ग दूसरा निम्नवर्ती मध्यम वर्ग तथा तीसरा निम्न वर्ग। यह समाज सामन्तवादी आधार पर संगठित था। बादशाह प्रधान होता था। इस प्रकार के वर्गों में उनके विशेष कर्तव्य होते थे।

सामन्त वर्ग:—इस वर्ग में विदेशी व्यक्ति भी सम्मिलित थे। इसी वर्ग के अधिकतर लोग प्रशासकीय कार्यों में लगाये जाते थे। सादा भारतीय जीवन के विपरीत इस वर्ग के लोगों का जीवन भोग-विलास पूर्ण होता था। इस वर्ग के लोगों के वस्त्र, भोजन एवं जीवन निर्वाह के अन्य सभी साधन विलासता के द्योतक थे। भोग-विलास पूर्ण जीवन मुगल राज-दरबार के लिए एक आवश्यक वस्तु थी। विलासी जीवन के साथ साथ इस वर्ग में गर्व, आत्म सम्मान एवं शोषण के भाव भी कूट कूट कर भरे हुए थे। जरी के बेल बूटे वाले कपड़े, रेशम एवं मलमल के वस्त्र एवं बहुमूल्य आभूषण इस वर्ग की साधारण वेशभूषा में सम्मिलित थे। इनका भोजन अत्यधिक स्वादिष्ट होता था। हिन्दू सामन्तों ने मध्य एशिया और ईरानी अमीरों के रीति-रिवाजों का अनुकरण किया जिसके फलस्वरूप बड़ी बड़ी दावतें, दुर्लभ फल और पाक शास्त्रकला के अनुसार बनाये गए रुचिकर एवं स्वादिष्ट भोजन (गुलाब जामुन, बालू शाही, बरफी आदि) भारत मे लोकप्रिय होने लगे। मांस का भी काफी प्रयोग होता था पर गो मांस प्रयोग में नही लाया जाता था। इस वर्ग में मद्यपान का दुर्व्यसन भी काफी मात्रा में था। अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद एवं खेल-तमाशों में यह वर्ग खूब भाग लेता था। इस वर्ग के मकान काफी भव्य एवं सुसज्जित होते थे इस वर्ग के लोग बहुपत्नि, दासी एवं नर्तकियों को काफी मात्रा में रखते थे फलतः अत्यधिक धन, शिक्षा का अभाव, असंयम तथा मदिरा पान के आधिक्य ने उन्हें अवनति-पथ पर डाल दिया और उनमें ईर्ष्या-द्वेष बैर तथा षड्यन्त्र बढ़ने लगे।

मध्यम वर्ग:—इस वर्ग में प्रायः राज्य के कर्मचारी तथा व्यापारी शामिल थे। ये लोग आडम्बर एवं गर्व में धन का व्यय नहीं करते थे। परिणामतः इनका जीवन सामन्त वर्ग से अधिक सुखी था। इस वर्ग के लोग अपने निर्धारित स्तर के अनुसार ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। इनका जीवन शान्त, संयमी तथा मितव्ययी था। स्थानीय अधिकारियों के भय से ये लोग अपना धन छिपाकर रखते थे।

निम्न वर्ग:—इस वर्ग में मजदूर, कृषक एवं शिल्पी थे। इस वर्ग के व्यक्तियों का जीवन कठोर एवं संघर्षमय था। साधारणतः भुखमरी नहीं थी पर ऊनी वस्त्र एवं जूते जैसी वस्तुएँ इस वर्ग के लिए प्राप्त न थीं। इनका कार्य स्वेच्छा का न था। इन्हें अपने स्वामी की दया पर निर्भर रहना पड़ता था इनका वेतन कम और कार्य अधिक था। इनका जीवन स्तर दासता से कुछ ही अधिक था। अकबर के समय में, कृषकों का जीवन सुखी था पर बाद में राज की मांग बढ़ने से वे भी दुःखी होने लगे। साधारणतया ये लोग ईमानदार और वचन के पक्के हुआ करते थे।

स्त्रियों की दशा:—स्त्रियों की दशा पहिले की अपेक्षा अच्छी नही थी। हिन्दू स्त्रियों में सती प्रथा एवं बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पर्दा प्रथा पहिले की अपेक्षा अधिक कठोर हो चली थी। स्त्रियों की स्थिति पहिले की अपेक्षा पतित होती जा रही थी। सामान्यतः स्त्री-शिक्षा नहीं थी। फिर भी उस काल में जहानआरा, रोशन आरा, चांद-बीबी, नूरजहाँ तथा शिवाजी की माता जीजाबाई बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थीं।

मनोरंजन:—उस समय खेलकूद एवं व्यायाम में काफी रुचि थी। पोलो, शिकार, कुश्ती एवं पशु युद्ध तथा कबूतर उड़ाने आदि खेलों में भी लोगों की काफी रुचि थी।[1] इनके अतिरिक्त तारा, चौपड़ शतरंज एवं पाँसा भी मनोरंजन के साधन बाजीगर का खेल, नटकला एवं कटपुतलियों के खेल भी मनोरंजन के प्रसिद्ध सा में से थे।

वस्त्र एवं आभूषण:—मुगलकाल में वस्त्रों के प्रति विशेष रुचि जाती थी। रेशम, मलमल एवं जरी के बहुमूल्य कपड़े सामन्तवर्ग के लोग पहिनते राजदरबार में बहुत शान शौकत रखी जाती थी। साधारण हिन्दू जनता धोती पहि थी पर मुसलमानों के प्रभाव से पायजामा, अचकन का प्रयोग बढ़ चला था। आभूष का प्रयोग हिन्दू और मुसलमान दोनो ही करते थे। विवाह के समय सेहरा पहन मुसलमानों का ही प्रभाव है।

अन्य प्रथायें:—इस काल में लोग अन्धविश्वासी थे। हिन्दू और मुसलम दोनो ही ज्योतिष, की भविष्य वाणी में विश्वास करते थे एवं धार्मिक व्यक्ति के स्मारकों, गुरुओं, महन्तों एवं पीरों की सेवा किया करते थे। हिन्दू होली, रक्षा बन्ध दशहरा तथा दीपावली आदि त्योहारों को मानते थे। मुसलमान ईद, मुहर्रम एवं बक ईद मनाते थे। हिन्दू और मुसलमान के सम्पर्क से हिन्दू भी मुसलमानो के पीर एवं पैगम्ब को मानने लगे थे। जाति प्रथा एवं छूआ छूत उस काल में प्रचलित थी। धर्म सम्बन्ध में एकेश्वरवाद को लोग मानने लगे। सतनामीपन्थ में हिन्दू और मुसलमान दो ही सम्मिलित होते थे। हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का सुन्दर समन्वय अकबर के प्रयत्नों काफी मात्रा में हुआ।

आर्थिक जीवन

उस काल में आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। देश में विदेशियों के आने सम्बन्ध में कोई रोक टोक न थी पर कोई भी विदेशी देश से बाहर धन नहीं ले ज सकता था।

नगर:—उसकाल में आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने एवं व्यापार की वृद्धि से कई प्रसिद्ध नगर बस चुके थे। उनमें से देहली, आगरा, फतेहपुर, सीकरी एवं बनारस आदि प्रमुख हैं। प्रसिद्ध यात्री फिच (Fitch) ने तो उस काल में फतेहपुर और आगरा को लन्दन से भी अधिक बड़ा बताया है। मानसरेट के मतानुसार लाहौर विश्व के महानतम नगरो में से एक था और देहली लाहोर से भी बड़ी थी। [illegible]शियों के मतानुसार उस समय की नगर की जनता बहुत घनी थी।

आवागमन:—उस काल में पक्की सड़कें एवं रेले न थीं। प्रमुख नगर कच्ची सड़कों द्वारा मिले हुए थे और सड़कों के किनारे छाय दार वृक्ष एवं सरायें थीं। बड़ी नदियों में नावों से सामान लाया और भेजा जाता था। शाही डाक हरकारों द्वारा ले जायी जाती थी। उस समय समाचार एक दिन में हरकारों द्वारा ७० या ८० मील तक पहुँचाया जा सकता था।

कृषि:—उस काल में कृषि के औजार आजकल प्रचलित प्राचीन ढंग के औजार ही थे। कृत्रिम सिंचाई के साधनों का अभाव था। कृषि की फसलें भी आजकी भांति ही थीं। सामान्यतः अनाज की कमी नहीं थी पर इस काल में कई बार अकाल पड़ा। उस समय कृषकों की दशा बड़ी खराब थी।

उद्योगधन्धे एवं हस्तकला:—रुई का उत्पादन तथा सूती कपड़े का निर्माण बहुत प्रसिद्ध उद्योग धन्धे थे। सूती कपड़े बुनने के प्रमुख केन्द्र थे जौनपुर, बनारस, पटना एवं लखनऊ आदि। ढाका अपनी बारीक मलमल के लिए बहुत प्रसिद्ध था। कपड़ों में विभिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाता था। रेशम के कारखाने सीकरी, लाहौर एवं काश्मीर में थे। एडवर्ड टेरी के मतानुसार इनके अतिरिक्त लकड़ी के सन्दूक, कलमदान, अलमारी, तीर, कमान, तलवार, मिट्टी के बर्तन एवं चमड़े की वस्तुएँ बनाने के भी कई कारखाने थे।

व्यापार:—देश के विभिन्न भागों में व्यापार होता था। इसके अतिरिक्त विदेशों से भी व्यापार काफी मात्रा में होता था। सूतीवस्त्र, अफ्रीका, अरब, मिश्र ब्रह्मा एवं मलाया को भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त, कागज, नील, अफीम एवं विभिन्न प्रकार की नशीली चीजें भी विदेशों को भेजी जाती थीं। घोड़े, धातुएँ, हाथीदांत मूँगा, हीरा, पन्ना, मखमल, चीनीमिट्टी यूरोप की शराब तथा काच, के बर्तन आदि आयात की प्रमुख वस्तुएँ थीं। गोआ, कालीकट, कोचीन, सूरत एवं मछलीपट्टम आदि नगर समुद्री व्यापार के प्रमुख बन्दरगाह थे।

कीमतें:—वस्तुयें सस्ती थी। सामान्य दरें इस प्रकार थी—

गेहूँ	१ रुपये का	१२ मन
जौ	"	८ "
चावल	"	१० "
नमक	"	१६ "
दूध	"	४४ सेर

दैनिक मजदूरी कम थी पर कुशल श्रमिकों का वेतन अच्छा था। स्मिथ के मतानुसार अकबर और जहांगीर के समय में ऊँची श्रेणी के मजदूरों के पास आज की अपेक्षा अधिक खाने को था। उस काल की आर्थिक स्थिति के बारे में मूरलैण्ड कहते हैं, "Speaking generally, the masses lived on the same economic plane as now"

पर यह आर्थिक स्थिति औरङ्गजेब के समय में बिगड़ने लग गयी थी। चारों ओर फैले हुए युद्धों ने कृषि को बहुत हानि पहुँचाई तथा हस्तकला-कौशल को भी काफी हानि पहुँचाई। सर जादूनाथ सरकार के शब्दों में "इस प्रकार भारत की आर्थिक हीनता और दरिद्रता का प्रारम्भ हुआ।"

शिक्षा व साहित्य

मुगल काल में आधुनिक स्कूल व कॉलेजों की भाँति किसी शिक्षण संस्था की स्थापना नहीं की गई। नागरिकों को शिक्षित करना मुगल सरकार ने अपना कर्तव्य नहीं समझा परन्तु फिर भी विभिन्न तरीकों से शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक मसजिद के साथ एक मकतब होता था जिसमें उसके पास के लड़के एवं लड़कियां पढ़ा करतीं थीं। यह मकतब आधुनिक प्राइमरी स्कूल था। मकतब की शिक्षा पाने के बाद छात्र मदरसे में पढ़ा करते थे यहाँ उन्हें उच्च शिक्षा दी जाती थी, उन्हें मदरसे में सामाजिक व्यवहार, नैतिकता, अंकगणित, रेखागणित ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक स्थान पर शिक्षा पा सकते थे। पर हिन्दुओं के लिए पृथक शिक्षा केन्द्र भी थे। संस्कृत प्रेमी छात्रों को व्याकरण, दर्शन शास्त्र, तर्क शास्त्र, और वेदान्त आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता था। सामान्यतः शिक्षा का माध्यम अरबी था। सुसंस्कृत समाज में शिष्टता के लिए फारसी का अध्ययन अवश्य किया जाता था। मुसलमान छात्र उच्च शिक्षा पाने के लिए मक्का जाया करते थे। मक्का की उपाधि का सबसे अधिक सम्मान किया जाता था। कुलीन स्त्रियाँ अपने घर में ही शिक्षकों द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थीं। मुगल सम्राट अपनी राजकुमारियों की शिक्षा विदुषी ईरानी स्त्रियों द्वारा करवाते थे। गरीबों की लड़कियां तो प्रायः निरक्षर ही रह जाया करती थीं।

मुगल सम्राट स्वयं साहित्य के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने साहित्य को बहुत संरक्षण दिया। सम्राट अकबर स्वयं पढ़ा लिखा नहीं था पर फिर भी उसने साहित्य-संवर्धन के लिए बड़ा सराहनीय कार्य किया। इस काल में फारसी, हिन्दी, उर्दू एवं संस्कृत साहित्य की काफी प्रगति हुई।

फारसी साहित्यः—अकबर कालीन फारसी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया जाता है। पहला ऐतिहासिक, दूसरा अनुवादित तथा तीसरा काव्य। ऐतिहासिक ग्रन्थों के अन्तर्गत तारीख-ऐ-अली, आइने-ए-अकबरी, अकबरनामा, तबकात-ए-अकबरी और मासीर-ए-रहीमा आदि ग्रन्थ आते हैं। इनके रचियताओं में से फैजी और अबुलफजल बहुत प्रसिद्ध हैं।

अनुदित ग्रन्थों में वे ग्रन्थ आते हैं जो अकबर की आज्ञा से उस काल में संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से फारसी में अनुवाद किए गए थे। बदाउनी ने रामायण का, इब्राहीम सरहिन्दी ने अथर्वेद का, फैजी ने गणित शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती का फारसी में अनुवाद किया। यूनानी एवं अरबी भाषा के कई ग्रन्थों का भी फारसी में अनुवाद किया गया।

इसके अतिरिक्त अनेक कवियों ने कई अच्छे काव्यों की रचना की। इन कवियों में गिजाली, फैजी, मुहम्मद हुसैन नजीरी तथा जमालुद्दीन आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। अब्दुर रहीम खानखाना भी फारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि था।

जहाँगीर एवं शाहजहाँ के काल में भी कई ग्रन्थ रचे गए। इनमें पादशाहनामा और शाहजहाँनामा मुख्य हैं। इनके अलावा शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह की रचनायें बहुत सराहनीय हैं। उसने भगवद्गीता, उपनिषद और योगवशिष्ट का फ़ारसी में अनुवाद किया तथा 'फतवा-ए-आलमगीरी' की रचना की।

हिन्दी साहित्य:—इस काल में हिन्दी साहित्य भी काफी बढा। अकबर स्वयं हिन्दी कविता में काफी रुचि रखता था। उसने अनेक कवियों को अपने दरबार में संरक्षण दिया। उसके दरबारियों में राजा भगवानदास, मानसिंह और राजा बीरबल प्रसिद्ध कवि थे अब्दुर रहीम खान खाना भी हिन्दी का अच्छा कवि था। उसने 'रहीम सतसई' की रचना की। नरहरी और गंग भी अकबर के दरबार में प्रसिद्ध कवि थे। इस काल के प्रसिद्ध कवि हैं सुर और तुलसी सूरदासजी ने 'सूरसागर' की रचना कर वात्सल्य रस की वह मधुर मन्दाकिनी प्रवाहित की जो न भूतो, न भविष्यति। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' की रचना कर तत्कालीन समाज के सन्मुख आदर्श सामाजिक जीवन के ढाँचे का प्रदर्शन किया जिसमे तत्कालीन समाज को बहुत लाभ हुआ। तुलसीदासजी ने रामगीतावली, कृष्णगीतावली, विनय पत्रिका, पार्वती मंगल, जानकी मंगल दोहावली एवं वैराग्य संदीपनी आदि ग्रन्थ भी लिखे पर इन सबमें उनकी रामायण सर्वोपरि है। मुगल काल के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं केशवदास, सुन्दरदास, सेनापति, भूषण, देव एवं बिहारी इनके लिखे ग्रन्थों में प्रमुख हैं रामचन्द्रिका, रसिक प्रिया, कवि प्रिया, विज्ञान गीता, बिहारी सतसई, शिव बवनी, छत्रसाल शतक तथा शिवराज भूषण आदि।

उर्दू साहित्य:—मुसलमानो के भारत में आने के कारण एवं हिन्दुओं के सतत सम्पर्क के कारण एक नई भाषा उर्दू का जन्म हुआ। मुगल काल में इस भाषा का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था पर फिर भी उस काल में उर्दू की खूब प्रगति हुई। मुगलों की अपेक्षा दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा के शासको ने उर्दू भाषा को बहुत प्रोत्साहन दिया। इसकाल के प्रसिद्ध उर्दू कवि थे नूरी आजमपुरी, हजरत कमालुद्दीन मखदूम शेखसादी, मुहम्मद अफजल अकबर, नासिर अफजली इलाहाबादी और पण्डित चन्द्रभान। अठारवी शताब्दि के प्रारम्भ में दिल्ली उर्दू साहित्य के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गया था। औरङ्गजेब की मृत्यु के उपरान्त उर्दू कविता की बहुत उन्नति हुई और गालिब, शाह मोमिन एवं ज़ौक जैसे प्रसिद्ध कवि हुए।

संस्कृत साहित्य:—जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अकबर के समय में कई संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया पर उस काल के शासकों के लिए यही पर्याप्त नही था। उन्होंने संस्कृत के विद्वानों को भी आश्रय प्रदान किया जिसके फलस्वरूप संस्कृत साहित्य में भी अभिवृद्धि हुई। जगन्नाथ एवं गिरधरनाथ इस काल के बहुत प्रसिद्ध संस्कृत के कवि हैं। पण्डित जगन्नाथ की 'गंगालहरी' तो बहुत ही

प्रसिद्ध हैं । पुरुषों के अतिरिक्त वैजयन्ती और बल्लभदेवी भी संस्कृत की प्रसिद्ध ज्ञाता स्त्रियाँ थी ।

फारसी, हिन्दी, उर्दू एवं संस्कृत भाषाओं के साहित्य के अलावा बंगला, मराठी एवं गुजराती साहित्य की भी इस काल में बहुत प्रगति हुई । इस तरह हम देखते हैं कि मुगल काल में साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत उन्नति हुई ।

धार्मिक जीवन

मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण के कारण भारत में सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति बहुत शोचनीय होगई थी । पन्द्रहवीं शताब्दी की भाँति सोलहवीं शताब्दी में भी धार्मिक विप्लव हुए पर उस काल में लाखों व्यक्ति धर्म से भ्रष्ट हो चुके थे । उस काल में कृष्ण और राम की भक्ति करने वालों के पृथक पृथक दो सम्प्रदाय थे । कृष्ण भक्ति मार्ग के प्रवर्तक थे वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलनाथ और राम भक्ति शाखा के प्रमुख उपदेशक थे गोस्वामी तुलसीदास । दोनों सम्प्रदायों का अपना अपना महत्व है । उस काल के अस्त व्यस्त समाज को श्री कृष्ण के सुन्दर बालगोपाल स्वरूप ने अपनी ओर आकृष्ट किया और तुलसी के राम ने उस समाज में संयम नियमपूर्ण आदर्श जीवन का पाठ पढ़ाया ।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सुधारक थे जिन पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा। इनमें राजस्थान के संत दादू एवं लालदास तथा धर्मदास मुख्य हैं। इन्होंने धार्मिक कर्म काण्ड का विरोध किया । इस प्रकार हिन्दुओं में उस समय कृष्ण भक्ति, राम भक्ति तथा ज्ञान मार्ग के मानने वाले तीन प्रकार के संतों ने अपने अपने विचारों को फैलाया। इनका क्षेत्र उत्तरी भारत था । बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का नाम बहुत प्रसिद्ध था। उनके अनुयायियों ने भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया और बताया कि भक्ति के बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती ।

दक्षिण में भी उस काल में कई धार्मिक आन्दोलन हुए। प्रसिद्ध सन्त एकनाथ ने भक्ति पर विशेष जोर दिया और बताया कि भक्ति के प्रताप से स्त्री, शूद्र व अन्य सभी व्यक्ति मोक्ष पा सकते हैं । सन्त तुकाराम महाराष्ट्र में प्रसिद्ध महात्मा थे । उन्होंने शुद्ध हृदय से ईश्वर की भक्ति करने, एवं यथाशक्य दया प्रदर्शित करने पर बल दिया । मराठों को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले सन्त थे रामदास । श्री समर्थ रामदास शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु थे । उनके विचारानुसार राम की भक्ति ही मुक्ति का सबसे अच्छा साधन था ।

मुसलमानों में भी कई सूफी फकीर थे जो कहते थे कि मानव जीवन का सत्य ईश्वर से प्रेम करना तथा उसी में विलीन हो जाना है। इन सब विचार धाराओं से पारस्परिक प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता एवं समानता की भावनाओं की वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरूप एकेश्वरवाद का मत प्रतिपादित हुआ ।

भवन निर्माण कला

बाबर से लेकर औरङ्गजेब तक, (औरङ्गजेब के अतिरिक्त) सभी मुगल सम्राट् महान् निर्माता थे। मुगलों के प्रभाव से भारतीय भवन निर्माण कला ने एक नया रूप धारण किया। उससे पूर्व भवन निर्माण में सादगी एवं विशालता प्रमुख थी पर मुगलों के प्रभाव से उसमें भी ऐश्वर्य का प्रदर्शन होने लगा। हिन्दू और ईरानी कला के सुन्दर समन्वय से मुगल शैली का निर्माण हुआ। मुगल कालीन भवनों की प्रमुख विशेषतायें हैं गोल गुम्बद, पतले स्तम्भ, विशाल खुले द्वार एवं जालीदार खिड़कियां। फर्ग्युसन मुगल शैली को विदेशी बताता है पर हैवल इस बात को स्वीकार नहीं करता और कहता है कि मुगल शैली देशी एवं परदेशी शैलियों का सुन्दर समन्वय है। कलाकारों ने विदेशी तत्वों को इस चतुराई से अपनाया कि वे भारतीय कला में पूर्ण रूप से मिल गए जिससे भारतीय कला के पृथक अस्तित्व का पता लगाना सुलभ नहीं है। मुगलकाल में अनेक इमारतों का निर्माण हुआ जिनमें निम्नलिखित बहुत प्रसिद्ध हैं।

बाबर के बनाये हुए आगरा, सीकरी एवं धौलपुर के मकान जो आजकल खण्डहर हो चुके हैं। हुमायूं द्वारा निर्मित पंजाब, रोहतास एवं मकोत के दुर्ग, शेरशाह का बनाया हुआ दिल्ली का पुराना किला झेलम नदी पर रोहतास गढ़ तथा सहसराम में स्वयं का मकबरा, अकबर द्वारा निर्मित आगरे का किला, लाहौर का किला, तथा इलाहाबाद और अजमेर का किला फतेहपुर सीकरी नगर एवं उसके भीतर के दीवान-ए-खास, दीवान-ए-आम, पंचमहल, जोधाबाई का महल, बीरबल का महल और नगर के बाहर जामा मसजिद और उसका बुलन्द दरवाजा जहांगीर के समय का अकबर का मकबरा और इत्माद्दौला का मकबरा और शाहजहाँ के समय का बना हुआ ताजमहल, मोतीमसजिद, मुमताज बुर्ज, झरोखा-ए-खास, दौलत खाना-इ-खास, जामा मसजिद, निजामुद्दीन औलिया की गुम्बज दीवान-ए-आम, शीशमहल, नौलखा महल आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। शाहजहाँ के समय में भवन निर्माण की कला चरम सीमा पर पहुँच गई थी। शाहजहाँ के भवनों की विशेषता है सुनहरे रंग का खुला प्रयोग, नक्काशी की बारीकी एवं रत्नों तथा मणियों का कलात्मक जड़ाव। अकबर कालीन भवन निर्माण कला में हिन्दू प्रभाव जो काफी दृढ़ था, शाहजहाँ के समय में लुप्त हो गया था। शाहजहाँ के समय की सब से सुन्दर इमारत ताजमहल है जो आज भी विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है। शाहजहाँ का मयूर सिंहासन भी अपने ढंग का एक ही था। औरङ्गजेब की इस कला के प्रति कोई रुचि नहीं थी तथा उसके समय में कोई उल्लेखनीय इमारत भी नहीं बनी। मुगल कला का प्रदर्शन राजपूतों द्वारा बनाये गए महलों में मिलता है।

चित्रकला

भारत में चित्रकला हमेशा से ही राजसभा में फली फूली है। चित्रकारों द्वारा चुने गये विषय प्रायः धार्मिक या पौराणिक होते थे। इसके अतिरिक्त

हिन्दू जीवन के दृश्य जैसे वृक्ष के तले ध्यान लगाए योगी, पूजन करती कन्यायें, हाथी, हिरन आदि खूब चित्रित किए जाते थे। इन सभी रचनाओं में सादे और आकर्षक ढंग से प्रकृति को चित्रित किया जाता था। जटिल और मिथ्या तत्व इसमें नहीं लिए जाते थे। दिल्ली के मुसलमानों ने हिन्दुओं की चित्रकला को प्रोत्साहित नहीं किया। मुगलकालीन चित्रकला भारतीय और ईरानी तत्वों का सुन्दर समन्वय है। प्रारम्भिक मुगल चित्रकला पर ईरानी कला का अधिक प्रभाव था पर धीरे धीरे भारतीय चित्रकला ने इसे अपने रंग में रंग लिया। बाबर की चित्रकला के प्रति काफी रुचि थी और उसके पुत्र हुमायुं की भी इस कला के प्रति रुचि उत्पन्न हो गई थी। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के फल स्वरूप हिन्दू चीनी और ईरानी शैलियों का चित्रकला में सुन्दर समन्वय हुआ। अकबर ने चित्रकला को हर प्रकार से प्रोत्साहित किया और चंगेजनामा, जफरनामा, रामायण और कालिया दमन जैसे अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों के चित्र बनाने के लिये अनेक चित्रकारों को नियुक्त किया। उसके समय में अब्दुसमद, दसवंत, आदि प्रसिद्ध चित्रकार थे। अकबर के समय की चित्रकला जहाँगीर के समय में जाकर परिपक्व हुई। जहाँगीर स्वयं चित्रकला का इतना मर्मज्ञ था कि वह चित्र देख कर ही चित्रकार का नाम बता देता था। प्राकृतिक दृश्य उसके प्रिय विषय थे। उसके समय में भारतीय चित्रकला ने ईरानी कला को अपने आप में समा लिया था। जहाँगीर का युग मुगल चित्रकला का स्वर्णयुग माना जाता है। फारूखबेग, मुहम्मद नादिर, मुराद मंसूर, बिशन, केशव, मनोहर माधव और तुलसी नामक चित्रकार उसके समय के प्रसिद्ध चित्रकार थे। पर्सी ब्राउन के शब्दों में "With his (Jahangir) passing away the soul of Mughal painting also departed, its outward form remained for a time but its real spirit died with Jahangir." शाहजहाँ के समय में दरबार में चित्रकारों की संख्या कम हो गई। चित्रकला में प्राचीन सरलता नहीं रही केवल रंगों का अत्यधिक प्रयोग, मोटी रेखा (चित्र के चारों ओर) आदि आकर्षण ही उस समय विशेष थे। शाहजहाँ ने अपने आपको भवन निर्माण कला की ओर लगाया। उसके समय के चित्रकार थे मीरहाशिम, अनूपचित्र और चित्रमणि आदि। औरंगजेब के समय में तो इसका ह्रास ही हुआ। मुगल शैली से आगे चलकर राजपूत व [illegible] चित्र कला का जन्म हुआ।

संगीत कला

मुगल सम्राटों ने संगीत को भी अच्छा संरक्षण दिया। बाबर संगीत का प्रेमी व [illegible] था। हुमायूं संगीतज्ञ व [illegible] का [illegible] था। अकबर को संगीत से विशेष रुचि थी, वह [illegible] था। [illegible] के लिए, [illegible] का [illegible] था। [illegible]

मुसलमानों के सहयोग से इस काल में गजल, दादरा, तराना, ठुमरी, कव्वाली तथा मियाँ की टोडी और गुजरी जैसे रागों का जन्म हुआ। ईरानी संगीतज्ञों के मेल से एक नवीन संगीत शैली का जन्म हुआ जो दोनों शैलियों से अधिक मनमोहक थी। जहाँगीर एवं शाहजहाँ ने भी संगीतज्ञों को प्रोत्साहन दिया। शाहजहाँ स्वयं सुन्दर हिन्दी गीतों का रचयिता था। उसके समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जगन्नाथ और जनार्दन भट्ट। शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त संगीत का पतन होने लगा। औरङ्गजेब तो गाने बजाने से घृणा करता था। उसकी मृत्यु के बाद मुहम्मद शाह रंगीले ने संगीत को प्रोत्साहन दिया यद्यपि मुसलमान राजदरबार में संगीत को बहुत आश्रय मिला पर शिक्षित मध्यम वर्ग ने इसे बहुत नहीं अपनाया क्योंकि संगीत और नृत्य पृथक नहीं थे और नृत्य मुख्यतः नर्तकियाँ करती थीं। भविष्य में सर्व साधारण ने संगीत को प्रोत्साहन नहीं दिया परन्तु दक्षिणी भारत में संगीत गरीब से लेकर राजा तक सभी का विषय बना रहा।

मुगलों की सांस्कृतिक देन

यदि मुगलकाल पर सामूहिक रूप से दृष्टि डाली जाए तो विदित होगा कि मुगलों के शासन काल ने भारत को बहुत कुछ दिया है।

मुगलों में ऐश आराम की भावना बहुत थी वे अपना जीवन बड़े शान शौकत एवं तड़क भड़क से व्यतीत किया करते थे। इससे भारतीय उच्च वर्ग में भी विलासिता की भावना बढ़ी और अनेक प्रकार के सुगन्धित इत्र, तेल, सजावट के साधन एवं पाकशास्त्र के अन्तर्गत अनेक प्रकार की तरकारियाँ प्रचलित हुईं। वेषभूषा में भी अनेक प्रकार के आभूषणों एवं वस्त्रों का प्रचार हुआ। मुगलों ने एक ओर विलासी जीवन दिया तो दूसरी ओर सांस्कृतिक जीवन में भी परिवर्तन किया। उनके प्रभाव से अचकन एवं चूड़ीदार पायजामे को प्रमुख स्थान मिला। हिन्दुस्तानी भाषा जो कि हम आजकल बोलते हैं मुगलों की ही देन है। इसके अतिरिक्त विचार, साहित्य एवं कला पर भी मुगलों का काफी प्रभाव पड़ा। वास्तव में मुगल कालीन भारत में संस्कृति के क्षेत्र में पुनर्जागृति और समन्वय दोनों ही हुए।

मुगल सम्राटों के विलासमय जीवन ने एवं उनकी कलात्मक भावना ने अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण किया। महलों में सुन्दर फँवारे, एवं नहरों के दोनों ओर हरे भरे लहलहाते वृक्ष एवं रंग बिरंगी फूलों की क्यारियाँ उनकी ही देन हैं। इस सम्बन्ध में काश्मीर का शालीमार, निशात और लाहोर का शालीमार बाग उल्लेखनीय है। अनेक सुन्दर भवन जिनका उल्लेख पहिले किया जा चुका है मुगलकाल की स्मृति के अमिट स्मारक हैं।

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है मुगलकाल में फारसी, हिन्दी, उर्दू, मराठी, बंगाली, गुजराती एवं संस्कृत आदि साहित्य की काफी प्रगति हुई। इस काल में अनेक ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में किया गया तथा अनेक मौलिक ग्रन्थ

लिखे गए। हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र इसी काल में कवि रत्न थे। हिन्दू कवियों के अतिरिक्त मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की।

हिन्दू मूर्ति पूजक थे और मुसलमान थे बुतशिकन अर्थात् मूर्ति भंजक। मुगल काल में दोनों जातियों ने एक दूसरे को बहुत प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप एकेश्वरवादी भावना को प्रोत्साहन मिला। हिन्दू समाज में जाति विरोधी आन्दोलन भी इसी का प्रभाव था। हिन्दुओं में कबीर, रामानन्द, दादू, चैतन्य और नानक आदि सुधारक इसी पारस्परिक प्रभाव की उपज थे। ईरान से आने वाले अनेक व्यक्तियों ने सूफी मत का प्रचार किया। इस प्रकार आपस के भेदभाव के स्थान पर ईश्वर एक है और हम सब उसके निर्मित जीव हैं इस विचार धारा को प्रोत्साहन मिला।

इस प्रकार लगभग छः सौ वर्ष के मुसलमानों के दीर्घ शासन ने भारती संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। शिकार, बाज उड़ाना व अन्य प्रकार के खेलों का प्रचा हुआ। शासन प्रणाली, दरबार की प्रथायें, दरबारी उपाधियाँ एवं उनकी विलासि आदि सभी का प्रयोग हिन्दू नरेशों ने किया। इस युग में मुसलमानों ने भार में कागज का प्रचार किया जिससे ज्ञान वृद्धि में आशातीत योग मिला। इस प्रकार ह देखते हैं कि मुगलों ने हमें कुछ दुर्व्यसन दिये तो दूसरी ओर अनेक अच्छ वस्तुएँ भी दीं।

अध्याय-सार

(१) मुगलों व हिन्दुओं के दीर्घ सहवास से भारतीय कला व सभ्यता में महा परिवर्तन हुए। उनके शासन काल में साहित्य तथा कला का विकास कुंठित नहीं रहा।

(२) इस समय का समाज अमीर, मध्यम व मजदूर इन तीन वर्गों में बँटा हुआ था। अमीरों का जीवनस्तर ऊँचा था। वे अच्छा खाते और अच्छा पहनते थे। दीन मनुष्यों के शोषण से वे विलासी जीवन व्यतीत करते थे। मध्यम वर्ग का जीवन सादा और सरल था। दहेज प्रथा के कारण पुत्री की शादी करने में माता पिता को कठिनाई होती थी। मजदूर वर्ग का जीवन दयनीय था। इन्हें बड़े आदमियों के घर का काम व बेगार करनी पड़ती थी। स्त्रियों का समाज में आदर नहीं था। उन दिनों पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह का खूब प्रचलन था।

(३) जन साधारण की आर्थिक दशा अच्छी थी। कृषक खेती करते थे। कुटीर व्यवसाय उन्नत था। व्यापारी भी सुखी थे।

(४) शिक्षा सरकार की ओर से नहीं दी जाती थी। शिक्षा सर्वांगीण न होकर धार्मिक विषयों तक ही सीमित थी। स्त्रियों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। फारसी भाषा के साथ भारत के राज्यों की विभिन्न भाषाएँ भी विकसित हो रहीं थीं।

मुगल शासन साहित्य की उन्नति के लिए भी स्मरणीय है। फारसी भाषा में उस समय कई ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई थी। हिन्दी भाषा के कई ग्रन्थों का

फारसी में अनुवाद किया गया। हिन्दी साहित्य ने ऐसे कवियों को जन्म दिया जिनकी आज तक तुलना नहीं की जा सकती।

(५) उत्तरी भारत में हिन्दुओं में उस समय कृष्ण भक्ति, राम भक्ति तथा ज्ञान मार्ग के मानने वाले तीन प्रकार के संतो ने अपने अपने विचारों को फैलाया। मुसलमानों में भी कई सूफी फ़क़ीर थे।

(६) मुगल शासक भवन निर्माता कहे जाते हैं। स्थापत्य कला में विशेष रुचि अकबर व शाहजहाँ ने ली। शाहजहाँ का काल इस कला का स्वर्ण युग था। जहाँगीर चित्रकला का अच्छा ज्ञाता था। उसके दरबार में अच्छे अच्छे चित्रकार थे। औरंगजेब सभी कलाओं का शत्रु था। मुस्लिम सम्पर्क से भारत मे ग़ज़ल कव्वाली व ठुमरी आदि कई नवीन प्रकार के गीत गाये जाने लगे। मुगलों के समय में कला का सर्वांगीण विकास हुआ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मुगलकालीन सामाजिक जीवन की क्या विशेषताएँ थी ?

What were the main features of the social life under the Mughals ?

(२) शिक्षा प्रसार तथा साहित्य रचना में मुगल शासकों की क्या देन है ?

What was the contribution of the Mughals towards the spread of education and creation of literature ?

(३) मुगल कालीन स्थापत्य तथा चित्र कला के विकास पर प्रकाश डालिए।

Trace *the growth of architecture and painting* during the Mughal period.

(४) मुगल कालीन संस्कृति को समन्वित संस्कृति की संज्ञा किसलिए दी जाती है ? तत्कालीन धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए।

Why is the Mughal culture called 'Composite culture' ? Describe the religious condition of that period.

अध्याय ६

THE IMPACT OF BRITISH ADMINISTRATION

ब्रिटिश शासन का प्रभाव

१८५७ ई० में भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से निकाल कर स्वाधीनता प्राप्त करना था। यद्यपि इस विद्रोह का दमन क्रूरतापूर्वक किया गया तथापि इसका प्रभाव देश के राजनीतिक जीवन पर पड़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर इंग्लैण्ड की रानी का शासन स्थापित हुआ। इंग्लैण्ड ने १८५८ ई० से १५ अगस्त १९४७ ई० तक भारत पर शासन किया। इस युग में ब्रिटिश शासन का भारत के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

राजनीतिक प्रभाव

१८५८ ई० में इंग्लैण्ड की सरकार ने भारतीय शासन प्रणाली में परिवर्तन करना आवश्यक समझा। इस परिवर्तन का आधार बना शासक और प्रजा के बीच विश्वास संबंध। ब्रिटिश शासकों ने अनुभव किया कि अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का सबसे बड़ा कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशासनिक असफलता। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने भारत के निवासियों को भी शासन में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया तथा कुछ ऐसी सुविधायें भी दीं जिससे देशवासी ब्रिटिश शासन में भाग लेने के लिये आकृष्ट हों। भारतीयों को अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्त किया गया। इस प्रकार अंग्रेज और भारतीय साथ साथ काम करने लगे, जिसके फलस्वरूप भारतीय अधिकारी ब्रिटिश शासन से परिचित हो गए। यद्यपि अंग्रेजों ने शासन का वास्तविक नियंत्रण अपने हाथों में ही रखा तथापि नीचे के पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया।

(१) ब्रिटिश प्रशासन और न्याय पद्धति का विकास—प्रशासन में परिवर्तन के साथ साथ न्याय पद्धति में भी परिवर्तन किया गया। पश्चिमी न्याय पद्धति के सिद्धान्त, भारतीय न्याय पद्धति के साथ जोड़ दिए गए। हिन्दुओं एवं मुसलमानों के समस्त कानूनों का संकलन किया गया। दण्ड देने की एवं न्याय पद्धति के विषय में विस्तार पूर्वक नियम बनाए गए। दीवानी और फौजदारी विधान तैयार किए गए। मुसलमान फौजदारी कानून (Muslim Criminal Code) के स्थान पर भारतीय दण्ड विधान (Indian Penal code) लागू किया गया। फौजदारी तथा दीवानी के मुकदमों के लिये एकरूप नियम बनाए गए। इससे भारत के सभी भागों में (देशी राज्यों के अतिरिक्त) एकरूप न्याय पद्धति का विकास हुआ। न्यायालयों का संगठन भारतीय परम्परा तथा अंग्रेजी पद्धति के समन्वय से हुआ।

इन न्यायालयों में वकालत करने के लिये देशवासी इंगलैण्ड जाकर बैरिस्टर की परीक्षा पास करने लगे। इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप भारत में ब्रिटिश न्याय पद्धति स्थापित हुई। इसी प्रकार प्रशासन के प्रत्येक विभाग का संगठन किया गया।

पुलिस का संगठन इस प्रकार किया गया कि भारतीय सदा ब्रिटिश अधिकारियों के अधीन रहकर कार्य करें। दैनिक प्रशासन की व्यवस्था के लिये नौकरशाही (Bureaucracy) का विकास हुआ। इस प्रथा के परिणाम स्वरूप भारत का प्रशासन ब्रिटिश शासन का प्रतिबिम्ब बन गया। इस प्रथा की नींव इतनी गहरी डाली गई कि देश स्वतंत्र होने पर भी इस प्रथा को समाप्त नहीं किया गया। न्याय पद्धति और प्रशासन के क्षेत्र में ब्रिटिश शासन की छाप अमिट है।

(२) ब्रिटिश सैनिक पद्धति का विकास—विद्रोह के समय भारतीय सैनिकों ने अंगरेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था। इस विद्रोह ने अधिकारियों के मन में यह बात बैठा दी थी कि भारतीय सेना का पुनर्संगठन करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रिटिश तथा भारतीय सैनिकों के बीच २:१ का अनुपात बनाये रखने के लिये सैनिक टुकड़ियों का संगठन किया गया। सेना के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर केवल ब्रिटिश सैनिक ही नियुक्त किए जाते थे। इस नीति से भारत का सैन्य संगठन ब्रिटिश पद्धति के आधार पर हुआ। कालान्तर में अंगरेजों ने स्वामीभक्त भारतीय सैनिकों को उच्च पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ किया, परन्तु उन्हें कभी किसी भी सैनिक टुकड़ी का स्वतंत्र रूप से संचालन करने का अवसर नहीं दिया।

(३) प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास—१८६१ ई० का भारत परिषद् अधिनियम उदार नीति के वातावरण में तैयार हुआ था। इस अधिनियम द्वारा शासक और प्रजा के बीच सम्पर्क की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के मनोनीत सदस्यों में भारतीयों को स्थान मिला। भारतीय परिषद् अधिनियम १८७४ ई० के अनुसार स्वयं लार्ड डफरिन ने स्पष्ट किया कि उसका उद्देश्य भारत में ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली का प्रवर्तन करना नहीं है। इसके उपरान्त १८९२ ई० के अधिनियम ने भारतीयों में उत्साह नहीं बढ़ाया। १९०९ ई० के सुधार विधेयक द्वारा निर्वाचन प्रणाली का विकास प्रारम्भ हुआ। यद्यपि इस विधेयक से निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व का क्षेत्र संकुचित ही बना रहा, तथापि इस अधिनियम से भारत में प्रतिनिधित्व तथा निर्वाचन प्रणाली का विकास प्रारम्भ हुआ।

१९१९ ई० में वैधानिक और प्रशासनीय व्यवस्था में सुधार किया गया; जिसके फलस्वरूप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाई गई तथा सदस्यों को अधिक अधिकार दिए गए। प्रान्तों में द्वैध प्रशासन प्रारम्भ हुआ। यह स्वशासन की सार्वजनिक मांग को कुछ सीमा तक पूरा करने में सफल हुआ। इस अधिनियम ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को मजबूत बनाया। मुसलमान, पंजाब के

सिख, बम्बई के मराठे, तथा मद्रास के अब्राह्मणों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया। १९३५ ई० के अधिनियम द्वारा प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया। ब्रिटिश शासन में प्रथम बार भारतीय मंत्रियों ने प्रान्तीय शासन की बागडोर संभाली। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के प्रभाव स्वरूप भारत में प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास हुआ।

(४) स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रारम्भ—यद्यपि भारत में प्राचीन काल से गांवों तथा व्यवसायियों की स्वायत्त शासन की संस्थाएं विद्यमान थीं, जो भीषण राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल के बीच भी जीवित रहीं, तथापि वैधानिक रूप से १८७० ई० में स्थानीय स्वायत्त शासन प्रारम्भ हुआ। लार्ड मेयो के प्रान्तीय अर्थ व्यवस्था के प्रस्ताव (१८७० ई०) में स्थानीय शिक्षा स्वास्थ्य-व्यवस्था, चिकित्सा की सुविधा आदि का उल्लेख था। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप नगरपालिकाओं के लिये कानून बनाए गए। लार्ड मेयो के उपरान्त लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास के लिये प्रयत्न किया। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वायत्त शासन प्रणाली प्रारम्भ हुई। सरकार ने स्वायत्त शासन के लिये कानून बनाए। स्वायत्त शासन प्रणाली से छोटी छोटी इकाइयों में जनतांत्रिक भावना का विकास भी हुआ।

(५) ग्रामीण स्वायत्त शासन का प्रारम्भ—लार्ड रिपन ने १८८२ ई० में एक प्रस्ताव द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थानीय संस्थाओं को चलाने का निर्देश दिया। उसने इस बात का समर्थन किया कि ग्रामीण संस्थाओं का क्षेत्र छोटा हो तथा सार्वजनिक हितों का निर्णय जिला परिषदों में किया जाए। इसके साथ यह सुझाव भी रखा गया कि छोटी छोटी स्थानीय समितियों पर नियंत्रण रखने के लिये जिला परिषदों की स्थापना की जाए। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विकेन्द्रीकरण आयोग (Decentralisation commission) ने ग्रामीण स्वायत्त शासन के कार्य पर विशेष बल दिया। इस प्रकार ग्रामीण स्वायत्त शासन की स्थापना हुई।

(६) प्रेस और समाचार पत्रों का विकास—प्रारम्भिक स्थिति में भारतीय प्रेस ने सरकार का ध्यान आकर्षित नहीं किया, क्योंकि तब यह अंगरेजों के हाथों में था और केवल स्थानीय समाचार छापता था। भारतीयों के हाथों में प्रेस ने स्वतंत्र रूप धारण किया। यह राजनीतिक शिक्षा तथा राष्ट्रीयता का प्रचार करने लगा। प्रान्तीय भाषाओं में भी समाचार छपने लगे। समाचार पत्रों ने सरकार की आलोचना प्रारम्भ की, फलस्वरूप सरकार ने ऐसे अधिनियम बनाए जिससे समाचार पत्रों पर अंकुश स्थापित हो। सरकार की आलोचना पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया। शासन को समय समय पर ऐसे कानून बनाने पड़े जिससे प्रेस तथा समाचार पत्र स्थानीय समाचार अथवा साधारण लेखों के अतिरिक्त सरकार की आलोचना न छापें। इस नियंत्रण के परिणाम स्वरूप समाचार पत्रों की संख्या बढ़ी। इस स्थिति से सरकारी कर्मचारियों में हलचल [illegible]। दमनकारी कानूनों से बचने के लिये भारतीयों ने अंगरेजी में समाचार

प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। जैसे जैसे समय बीतता गया समाचार पत्रों का प्रभाव बढ़ता गया।

(७) साम्प्रदायिकता का विकास—साम्प्रदायिकता ब्रिटिश शासन प्रणाली का सबसे क्रूर अभिशाप है, जिसने भारत की एकता को नष्ट कर देश का विभाजन किया। १८५७ ई० के विद्रोह के बाद अंगरेज हिन्दू और मुसलमानों की एकता नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे क्योंकि दोनों के बीच भेदभाव उत्पन्न करना ब्रिटिश शासन की नीति रही। ब्रिटिश शासन प्रबन्ध ने साम्प्रदायिकता के विस्तार के लिये सरकारी नौकरी तथा व्यवस्थापिकाओं के प्रतिनिधित्व में हिन्दू, मुसलमान, सिख, मराठा, हरिजन आदि के लिये आनुपातिक रूप से स्थान सुरक्षित रखना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप शासन कार्य का आधार साम्प्रदायिकता बना। यह विष भारत के राष्ट्रीय जीवन इतने में दृढ़ रूप से फैला कि प्रशासन तथा राष्ट्रीय जीवन में साम्प्रदायिकता के अतिरिक्त किसी और आधार अथवा सिद्धान्त पर शासन करना असंभव हो गया। यद्यपि भारत स्वतंत्र है तथापि साम्प्रदायिकता का विष हमारे देश की एकता के लिये आज भी सबसे बड़ा अभिशाप बना हुआ है।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन का भारत के राजनीतिक जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि देश स्वतंत्र होने पर भी हम उस प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। आज हमारे देश का प्रशासनिक संगठन वही है जो अंग्रेजों के समय में था, केवल अन्तर इतना आगया है कि इसने पूर्णतः भारतीय आवरण पहन लिया है।

आर्थिक प्रभाव

आर्थिक क्षेत्र में भी ब्रिटिश-शासन का भारतीय जीवन पर प्रभाव पड़ा, जो इस प्रकार है—

(१) कृषि और सिंचाई का विकास:—भारत सदा से कृषि प्रधान देश रहा है, परन्तु ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत कृषि में परिवर्तन और सुधार हुए। १८९९–९७ ई० में बंगाल को छोड़कर सारे भारत में घोर अनावृष्टि रही। इस अनावृष्टि के फल-स्वरूप भयानक अकाल पड़ा। अकाल का सामना करने के लिये कृषि एवं सिंचाई की व्यवस्था में सुधार करना आवश्यक था। सरकार केवल कर वसूली से सन्तुष्ट रहती थी। कृषकों की अवस्था को सुधारने एवं वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार कृषि करने के विषय में सरकार बिल्कुल उदासीन थी। लार्ड कर्जन ने भूमि सुधार की योजनायें बनाई कृषि बैंक (Agricultural Banks) तथा सहकारी समितियों (Co-operative societies) की स्थापना की गई। कृषि सुधार की नई योजना के नियंत्रण और निरीक्षण के लिये एक उच्च कृषि-अधिकारी की नियुक्ति की गई। पूसा में एक कृषि अन्वेषण संस्था (Agricultural Research Institute) की स्थापना की गई। कृषि-संबंधी अन्वेषण और शिक्षण के लिये प्रान्तों में कृषि-कालेज तथा प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए।

कृषि की उन्नति के साथ साथ सिंचाई की व्यवस्था में भी उन्नति हुई। सर आर्थर कॉटन के नेतृत्व में नैहरिक ढंग से सिंचाई की व्यवस्था की गई। एक आयोग नियुक्त की गई, जिसकी सिफारिशों के अनुसार पंजाब तथा उत्तर-प्रदेश, में नहर-प्रणालियों का निर्माण प्रारम्भ किया गया। नहर प्रणालियों का प्रभाव लगभग १५ लाख एकड़ भूमि पर पड़ा। इस प्रकार अनावृष्टि तथा अकाल से बचने के लिये सिंचाई अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई।

(२) रेल, सड़कें तथा जलमार्गों का विकास:—रेलों का जाल बिछाने का श्रेय ब्रिटिश शासन को ही प्राप्त है। यद्यपि रेल लाइन बिछाने का कार्य १८५३ ई० से पहिले प्रारम्भ हुआ था, तथापि इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। दुर्भिक्ष-आयोग समिति के सुझावों के फलस्वरूप सरकार ने स्वयं तथा कम्पनियों की सहायता से रेल लाइनों को बिछाने का कार्य प्रारम्भ किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही रेल लाइन बिछाने का कार्य बड़ी तेजी के साथ प्रारम्भ हुआ तथा भारत स्वतन्त्र होने तक देश में रेल लाइनों का जाल बिछ चुका था। रेल-मार्ग का भारत के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत का व्यापार-वाणिज्य बढ़ा तथा देश में सामाजिक समन्वय की भावना दिन दिन होती दिखाई पड़ी।

रेल-मार्ग के साथ-साथ सड़कें तथा जल-मार्गों का विकास भी हुआ। अंग्रेजों ने सैनिक, तथा अन्य कारणों से सड़कों का निर्माण करना आवश्यक समझा। मुगलों के समय की सड़कों की मरम्मत की गई तथा नई सड़कों का निर्माण किया गया जिससे देश के सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर सड़कों द्वारा पहुँचा जा सके। अनेक स्थानों पर सीमेन्ट की सड़कें भी बनाई गई। यद्यपि व्यापार और वाणिज्य के लिये जलमार्गों का विकास आवश्यक था, तथापि ब्रिटिश सरकार ने केवल उन्हीं जलमार्गों का विकास किया जिससे ब्रिटिश व्यापार और वाणिज्य को लाभ पहुँचे।

वायुयान द्वारा यातायात तथा वस्तुयें भेजने का कार्य भी ब्रिटिश सरकार की देन हैं। भारत में वायु-मार्ग का विकास धीरे-धीरे हुआ एवं अंग्रेजों के समय तक यह साधारणतः सैनिक कार्यों तक सीमित रहा। अ-सैनिक कार्यों के लिये पृथक उड्डयन-विभाग की स्थापना हुई।

(३) डाकघर, टेलीग्राफ, टेलीफोन तथा बेतार का विकास:—अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत डाक-तार विभाग की स्थापना हुई। तार की व्यवस्था लार्ड डलहौजी के समय से प्रारम्भ हुई थी तथा इसका विकास धीरे-धीरे सारे देश में हुआ। देश के कौने कौने में डाकघरों की स्थापना की गई तथा चिट्ठी आदि भेजने के लिये सुगम प्रणाली अपनाई गई। वायुयान द्वारा डाक भेजने की भी व्यवस्था की गई। इस प्रकार कम से कम समय में काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तथा गुजरात से असम तक पत्र तथा तार आदि आने और जाने लगे।

डाक-घर की व्यवस्था के उपरान्त तार, टेलीफोन तथा बेतार (Wireless) द्वारा सन्देश भेजने की व्यवस्था की गई। देश में स्थान-स्थान पर बेतार-घर स्थापित किये गये तथा समुद्र, रेल एवं वायु मार्गों के बीच बेतार द्वारा सन्देश प्राप्त करने और भेजने की व्यवस्था की गई। रेडियो का प्रचार हुआ। इससे भारत तथा विश्व के समस्त देशों के बीच सम्पर्क स्थापित हुआ। इस प्रकार ब्रिटिश शासन-काल में यातायात तथा संवाहन के आधुनिक उपायों का विकास हुआ जिसने भारत की आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया।

(४) औद्योगिक विकास व्यापार और वाणिज्य—प्राचीनकाल से भारत औद्योगिक देश रहा है। जिस समय आधुनिक युरोप में असभ्य जातियाँ बसी हुई थीं, उस समय भारत अपने शिल्पियों के लिये प्रसिद्ध था। भारत का व्यापार एक ओर फारस की खाड़ी और मध्य पूर्व एशिया तथा दूसरी ओर जावा और सुमात्रा तक फैला हुआ था। वास्तव में मध्य पूर्व के व्यापारिक मार्ग से होने वाला भारतीय व्यापार ही था जिसने युरोपीय व्यापारियों को आकर्षित किया। अंग्रेजों के आगमन से भारतीय उद्योग-धन्धे और वाणिज्य बिगड़ने लगा। भारत इंगलैण्ड के अधीन हो चुका था इसलिये भारत इंगलैण्ड की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने लगा, जिसके परिणाम स्वरूप भारत के उद्योग धन्धे समाप्त हो गये।

प्रथम विश्व युद्ध के समय अंग्रेजों ने भारत में ऐसे कारखाने खोले जिनमें युद्ध की सामग्री तैयार हो सके। युद्ध के उपरान्त इन कारखानों को नष्ट नहीं किया गया वरन् उन्हें रुई, कपड़ा, ऊनी कपड़े आदि कारखानों में बदल दिया गया। इस प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध भारतीय उद्योग-धन्धे और व्यापार वाणिज्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। युद्ध के उपरान्त लोहा और फौलाद, पटसन, कोयला, पेट्रोलियम, रेशम, मेंगनीज, कागज, सीमेन्ट आदि के कारखाने खुले। द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक भारत में अनेक प्रकार के कारखाने खुल चुके थे। द्वितीय विश्व युद्ध ने औद्योगिक विकास को खूब प्रोत्साहित किया। इस प्रकार अंग्रेजों के शासन का भारत के औद्योगिक विकास पर प्रभाव पड़ा।

यद्यपि व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में अंगरेज अपना स्वार्थ छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे, तथापि औद्योगिक विकास के साथ व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि हुई तथा भारत पश्चिमी और पूर्वी देशों के बीच व्यापार और वाणिज्य का महत्वपूर्ण केन्द्र बना।

सांस्कृतिक प्रभाव

ब्रिटिश शासन का भारतीय संस्कृति पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यद्यपि मुसलमानों ने इस देश पर बहुत समय तक शासन किया, तथापि वे भारतीय संस्कृति की आत्मा एवं चेतना पर स्थायी प्रभाव न डाल सके। अंग्रेजों ने प्रारम्भ से ही भारतीय समाज की दुर्बलताओं से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। उन्होंने भारत में केवल राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिये ही संघर्ष नहीं किया वरन् उन्होंने हमारे देश को अपनी देश की

संस्कृति में इस प्रकार रंगा कि हम धीरे धीरे अंगरेजी सभ्यता और संस्कृति के दास अथवा उपासक बन गये। यह अंगरेजों की सबसे बड़ी जीत थी क्योंकि हमारे देश ने राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त की परन्तु आज भी हम अंगरेजी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त न हो सके।

अंगरेजी शासन के विकास के साथ पश्चिमी संस्कृति ने भारत में प्रवेश किया। पश्चिमी संस्कृति ने हमारे जीवन के प्रत्येक अंग पर प्रभाव डाला। ब्रिटिश शासन का प्रभाव भारत के समाज पर पड़ा। सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का अन्त किया गया तथा आधुनिक सामाजिक प्रथाओं का प्रचार हुआ। ब्रिटिश शासन का भारतीय संस्कृति पर निम्न प्रकार से प्रभाव पड़ा—

(१) आधुनिक शिक्षा का विकास—भारत में पाश्चात्य शिक्षा तथा अंगरेजी भाषा का प्रचार ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण देन है। ईसाई प्रचारकों ने बंगाल, मद्रास तथा बम्बई में पाठशालायें खोली। भारतीयों ने भी ऐसी पाठशालायें खोलीं। १८३५ ई० में लार्ड बेन्टिक के शासनकाल में लार्ड मैकॉले ने अंगरेजी माध्यम में शिक्षा देने की व्यवस्था की। इस कार्य के फलस्वरूप अनेक अंगरेजी पाठशालाओं की स्थापना हुई। इसके उपरान्त लार्ड हार्डिन्ज ने घोषणा की कि सरकारी नौकरी केवल ऐसे व्यक्तियों को मिलेगी जिन्होंने अंगरेजी पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की हो। इस घोषणा के लगभग दस वर्ष बाद भारत में लन्दन विश्वविद्यालय के नमूने पर कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।

अंगरेजी शिक्षा के फलस्वरूप भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन का प्रभाव हमारे देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विचारों पर पड़ा जिसने उनमें राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन की तीव्र लालसा उत्पन्न कर दी। १८५४ ई० में ईस्ट इन्डिया के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सभापति चार्ल्स वुड ने अंगरेजी शिक्षा के प्रसार के लिये एक योजना बनाई। इस योजना से भारत में अंगरेजी शिक्षा-प्रसार का नवीन युग प्रारम्भ हुआ। १८८२ ई० तक विश्वविद्यालय की शिक्षा में प्रगति हुई। प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं के खुलने से अंगरेजी शिक्षा का प्रचार हुआ। १८८२ ई० मे लार्ड रिपन ने जो उस समय गर्वनर-जनरल थे, डब्लू हन्टर के सभापतित्व में बाईस सदस्यों का शिक्षा आयोग (Education commission) नियुक्त किया। इस आयोग ने वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर शिक्षा देने का सुझाव दिया तथा यह भी सलाह दी कि देशी भाषाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए तथा वैयक्तिक प्रयत्नों पर निर्भर रहा जाए।

लार्ड कर्जन के समय से शिक्षा में सुधार होने प्रारम्भ हुए। उसने १९०२ ई० में एक विश्वविद्यालय आयोग (University commission) नियुक्त किया जिसका उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालयों की जाँच करना तथा सुधार एवं सुझाव द्वारा उनका शिक्षा स्तर ऊँचा करना था। इस आयोग की सलाह के अनुसार १९०४ ई० में युनिवर्सिटी

एक्ट बना। इस एक्ट में अनेक दोष थे। १९१७ ई० में माइकेल सेडलर के सभापतित्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त हुआ। इस आयोग की सिफारिशों पर अन्य विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त राष्ट्रीय चेतना, साम्प्रदायिकता आदि के कारण लगभग ६ विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इसी समय पूना में इण्डियन वीमेन्स युनिवर्सिटी की भी स्थापना हुई।

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये ८ वर्ग मील पर एक प्राथमिक विद्यालय खोला गया। माध्यमिक शिक्षा की ओर भी इसी प्रकार ध्यान दिया गया। जिला बोर्ड एवं नगरपालिकाओं को भी स्कूल खोलने की आज्ञा दी गई। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के प्रभाव स्वरूप भारत में आधुनिक ढंग पर अंगरेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। इस शिक्षा का भारत की संस्कृति पर स्थायी प्रभाव पड़ा।

(२) प्राचीन साहित्य का पुनरुज्जीवन तथा आधुनिक भारतीय साहित्य का विकास—अंगरेजों में बहुत से ऐसे व्यक्ति थे जो भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर आकृष्ट हुए। इन्होंने भारत के प्राचीन ग्रन्थों की पुनः प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया। अंगरेजों ने वेदों को छापना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार युरोप के विद्वानों ने भी बौद्ध एवं ब्राह्मणों ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद करना प्रारम्भ किया। सर चार्ल्स विल्किंस, सरविलियम जोन्स, मोनियर विलियम्स, विन्टर निटज्, मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया एवं उन पर टीकायें लिखीं। जर्मनी के एक विद्वान ने दर्शन-ग्रन्थों पर भाष्य लिखे। पोलेण्ड के महान संस्कृत के आचार्य स्टेनिसला एफ माईकेलस्की ने अपना समस्त जीवन भारत की प्राचीन साहित्य के पुनरुज्जीवन के लिए अर्पण कर दिया। इङ्गलैण्ड और युरोप के विद्वानों के परिश्रम स्वरूप भारत का प्राचीन गौरव विश्व के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। इसका भारत की संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्राचीन साहित्य के पुनरुज्जीवन से देश का राष्ट्रीय गौरव बढ़ा और सांस्कृतिक जागरण हुआ। प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के लिये बंगाल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई।

ब्रिटिश शासन का भारत की प्रान्तीय भाषाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। प्रत्येक प्रान्त में अंगरेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। प्रान्त के लोगों ने अंगरेजी साहित्य का अध्ययन किया एवं प्रान्तीय साहित्य को अंगरेजी साहित्य की विशेषताओं से रंग दिया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारत की प्रान्तीय भाषाओं में आधुनिक साहित्य का विकास हुआ। साहित्यिकों ने अपनी अपनी भाषा के साहित्य में अंगरेजी भावना, शैली, दृष्टिकोण निरूपण आदि अपना ली।

भारत में गद्य साहित्य का विकास अंगरेजी पुस्तकों के अनुवाद से प्रारम्भ हुआ वास्तव में हमारे गद्य-साहित्य का विकास अंगरेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हुआ। हमारे नाटकों पर भी अंगरेजी साहित्य की छाप स्पष्ट नजर आती है। गाल्सवार्दी तथा बर्नार्ड शॉ के नाटकों का अनुकरण किया गया। एकांकी नाटक अंगरेजों की महत्वपूर्ण देन है।

उपन्यास एवं छोटी छोटी कहानियों पर भी अंगरेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा अनुवाद और मौलिक ग्रन्थ लिखे गए। इन ग्रन्थों से नवीन साहित्यिक परम्परा का विका हुआ एवं ज्यों ज्यों प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यकों का विदेशी भाषाओं का ज्ञान बढ़ गया, त्यों त्यों हमारी साहित्यिक परम्परा बदलती गई।

काव्य के क्षेत्र में भी अंगरेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। सॉनेट (Sonnet तथा ओड (Ode) की शैली का अनुकरण किया गया। अतुकान्त कविता (Blan verse) का विकास हुआ एवं भारत के प्रसिद्ध कवियों ने अतुकान्त कविताओं की रचना क अंगरेजी गीत काव्य (Lyrics) का भी अनुकरण किया गया। रोमान्टिक वा (Romanticism) का भारतीय काव्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस प्रकार भारत क आधुनिक काव्य का विकास नवीन ढंग से हुआ।

निबन्ध रचना, भाषा-कोष, व्याकरण, तथा ऐतिहासिक साहित्य के विकास प अंगरेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। समाचार पत्रों में लिखने की शैली एवं सम्पादन कल भी अंगरेजों की देन है।

(३) ललित कलाओं का विकास:—ब्रिटिश शासन का भारत की ललित कलाओं पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। यद्यपि अंगरेजों की कलात्मक भावनायें पूर्णतः विकसित हो चुकी थीं तथापि उन्होंने भारत की ललित कलाओं के प्रति विशेष रुचि दिखलाई। अंगरेजों ने भारत की कलात्मक कृतियों की रक्षा एवं अध्ययन के लिये विभागों का संगठन किया। इन विभागों पर योग्य व्यक्ति नियुक्त किए गए।

भारतीय चित्रकला पर अंगरेजी तथा युरोपीय प्रणाली (Technique) का प्रभाव पड़ा। रंग, चित्रों की रचना, चित्रों का विषय, एवं चित्रकला के अन्य अंगों पर अंगरेजी एवं युरोपीय प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप भारत में आधुनिक शैली का विकास हुआ। तैल-चित्र (Oil painting) पेस्टल रंग, सूखे रंग का पानी के साथ प्रयोग तथा पेन्सिल और स्याही द्वारा चित्रांकन की पद्धति का विकास अंगरेजों की ही देन है। इस प्रकार चित्रों का विषय एवं उसकी सजावट में भी अंगरेजी चित्रकला का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

वास्तुकला के क्षेत्र में अंगरेजों ने एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसमें भारतीय एवं युरोपीय शैलियों का सुन्दर समन्वय था। यहाँ पर यह याद रखने योग्य बात है कि भारत में जितने गिरजाघर बने वे युरोपीय शैली के ही थे परन्तु निवास स्थान, शिक्षालय अथवा अन्य कार्यों के लिये जो भवन बने उनमें भारतीय एवं विदेशी शैलियों का समन्वय था। इस नीति के फलस्वरूप अंगरेजों के गिरजाघर पुराने ढंग के हैं तथा उनकी बनाई हुई इमारतें नवीन ढंग की। दिल्ली का राष्ट्रपति भवन, सचिवालय, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, मद्रास के उच्च न्यायालय का भवन, तथा बम्बई की कुछ इमारतों में देशी और विदेशी शैलियों का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है।

अंगरेज ठंडे देश के रहने वाले थे अतः उन्हें भारत की गर्मी में काम करना असंभव था। उन्होंने प्रत्येक प्रान्त के सुन्दर पहाड़ी स्थलों पर बंगले, क्लब, सचिवालय आदि बनाने प्रारम्भ किये जिससे वे गर्मियों से छुटकारा पा सकें तथा काम भी कर सकें। इस नीति के फलस्वरूप भारत में पहाड़ी-नगरों (Hill Stations) का विकास हुआ जो आज भी हमारे लिये पर्यटन तथा स्वास्थ्य उन्नति के स्थान हैं।

भारत की मूर्तिकला पर भी अंगरेजी शैली का प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव मुख्यतः टैक्निक के रूप में था।

संगीत और नृत्य के ऊपर भी अंगरेजी प्रभाव पड़ा। यद्यपि हमारे देश के शास्त्रीय संगीत पर विदेशी प्रभाव नाम मात्र के लिये भी नहीं पड़ा तथापि लोक-प्रिय संगीत पर अंगरेजी तथा युरोपीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के संगीत पर अंगरेजी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। गीतों की रचना एवं उनकी स्वरलिपि में अंगरेजी गीतों का प्रभाव पड़ा। यन्त्र-संगीत के क्षेत्र मे धीरे धीरे अंगरेजी धुनो का अनुकरण किया गया। आर्केस्ट्रा (Orchestra) का प्रारम्भ विदेशी शैली की देन है।

नृत्य के क्षेत्र में भी अंगरेजों ने युरोपीय शैली का अनुकरण किया था। इस अनुकरण का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। यद्यपि शास्त्रीय नृत्यों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ तथापि समूह नृत्य के क्षेत्र में 'बैले' (Ballet) अंगरेजों की ही देन है।

नाट्य कला के क्षेत्र में नाट्य शाला का निर्माण, मंच की सजावट एवं 'टैक्निक' रोशनी डालने की प्रणाली, वेश-भूषा, मेक अप, ओडिटोरियम (Auditorium) की व्यवस्था, ध्वनि प्रसारण एवं नियंत्रण की प्रणाली आदि अंगरेजों की ही देन है। भारतीय नाट्यशालाओं एवं मंच का आधुनिकरण अंगरेजी संस्कृति की देन है।

(४) धार्मिक और दार्शनिक विचारों में परिवर्तन:— ब्रिटिश शासन काल में ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उन्होंने स्कूल और हस्पताल खोले तथा भारतीय जनता पर इस प्रकार का प्रभाव डाला कि विश्व में ईसाई धर्म के अतिरिक्त कोई और धर्म न तो इतना उदार है और न इतना सच्चा। इस प्रचार का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर पड़ा। कुछ मनुष्यों ने ईसाई धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा ईसाई बन गए, परन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव ब्रह्म समाज के विकास पर पड़ा। ईसाई धर्म ने हिन्दू धर्म को चुनौती दी एवं इस चुनौती के परिणाम स्वरूप भारत में सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता थे राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, परमहंस रामकृष्ण आदि। इस धार्मिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म का पुनरुज्जीवन हुआ।

दार्शनिक विचारो पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव पड़ा। यद्यपि भारत में दार्शनिक विचारो का पूर्ण विकास हो चुका था तथापि पाश्चात्य दर्शन का भारतीय दार्शनिक

विचारों पर प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव साधारणतः राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में दिखाई पड़ा। नैतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में विदेशी विचारों ने भारतीय दर्शन को प्रभावित नहीं किया।

(५) विश्व के देशों से सम्पर्क: –ब्रिटिश शासन ने भारत को विश्व के समस्त देशों से परिचित कराया। अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड, अफ्रीका तथा अन्य देशों के साथ भारत का जो सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंध स्थापित हुआ वह ब्रिटिश शासन की देन है। यदि जर्मनी के संस्कृत के विद्वान वेदों का संग्रह करना चाहते थे तो उन्हें यह कार्य ब्रिटिश सरकार के सहयोग से करना पड़ता था। यदि अमेरिका जापान अथवा जर्मनी के व्यापारी भारत में अपनी वस्तुयें बेचना चाहते थे तो उन्हें ब्रिटिश शासन के सहयोग पर भरोसा करना पड़ता था। इस प्रकार भारत का विश्व के जिस देश से भी संबंध स्थापित हुआ उसका श्रेय ब्रिटिश शासन को प्राप्त है। अंगरेजों के आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के कारण भारत को विश्व से परिचित करना आवश्यक था। इस संपर्क के परिणामस्वरूप हमारे देश के राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रभाव पड़ा।

(६) वैज्ञानिक भावना और प्रणाली का विकास:—अंगरेजी शिक्षा का भारतीय विचार धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। किसी भी समस्या पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की इच्छा, प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण तथा वैज्ञानिक तथ्यों की खोज करने की जिज्ञासा अंगरेजी भाषा और शासन की देन है। रामानुजम, जगदीश चन्द्र बोस, सी. वी. रमण, डा० मेघनाद शाह, पी. सी. राय जे. सी. घोष, बीरबल सहानी, आदि वैज्ञानिकों ने भारत में वैज्ञानिक भावना और प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। आधुनिक ढंग की मशीनें, रेडियो टेलीविजन, तार, टेलीफोन तथा अन्य प्रकार के वैज्ञानिक यंत्रों से भारतीय विचार धारा में महान् परिवर्तन दिखाई पड़ा। हमारे देश की धार्मिक और सामाजिक विचार धारा में परिवर्तन दिखाई दिया। जिन वस्तुओं को हम दैविक घटना मानकर डरते अथवा आनन्द मनाते उनका वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ जैसे—चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण राहू-केतु का ग्रास नहीं रह गया वरन् उसका वैज्ञानिक कारण स्पष्ट रूप से हमारी समझ में आने लगा। इसी प्रकार दैनिक जीवन की घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा एवं इससे वैज्ञानिक भावना और प्रणाली का विकास हुआ।

(७) सामाजिक परिवर्तनः—ब्रिटिश शासन का हमारे देश के समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। हमारे देश की वेश-भूषा खान-पान, रहन-सहन, सामाजिक चलन आदि में अंगरेजी छाप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा। वेष-भूषा में पतलून, कोट, कमीज, टाई हेट आदि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, खान-पान में अंगरेजी शिष्टाचार और बर्तनों का प्रयोग हुआ, इसी प्रकार रहन-सहन तथा सामाजिक चलन में अंगरेजों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ा।

१८५७ ई० के उपरान्त अंगरेजों ने पिट्ठुओं का एक विशेष वर्ग बनाया। इस वर्ग में उच्च मध्यम वर्ग तथा मध्यम वर्ग के लोग थे। वास्तव में इस वर्ग का जन्म एक महान उद्देश्य को लेकर हुआ। यह उद्देश्य था—भारत में अंगरेजी शासन को चिरस्थायी बनाने के लिये एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता जो ब्रिटिश शासन को सर्वोत्कृष्ट माने, वफादारी से राष्ट्रीय आन्दोलन को भरसक दबाने की चेष्टा करे, अंगरेजी स्वार्थों की रक्षा करे, तथा किसानों और अपने क्षेत्र के मनुष्यों पर इस प्रकार का प्रभाव रक्खें की वे कभी भी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस तक न करें। इन समस्त कार्यों के पुरस्कार स्वरूप उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की पदवियों से विभूषित किया गया, तोपों की सलामी निश्चित की गई, अंगरेजो के क्लबों में बैठने और मिलने का मौका दिया गया, तथा इंगलैण्ड जाने पर सम्राट अथवा रानी से हाथ मिलाने का भी अवसर दिया गया। इस वर्ग के सन्तानों को चाहे वे अनपढ़ और मूर्ख क्यों न हो नौकरियां दी गई। इस प्रकार अंगरेजों ने हमारे समाज में एक ऐसे वर्ग का संगठन किया जो भारतीय होते हुए भी अपने कार्यों, चाल-चलन तथा बोलचाल से विदेशी लगने लगे। यह वर्ग हमारे राष्ट्रीय जागरण के लिये अहितकर सिद्ध हुआ।

साधारण मध्यवर्ग पर विदेशी शिक्षा का दूसरे रूप में प्रभाव पड़ा। जिन्होंने मैजिनी, बर्क, शेरीडन आदि के भाषण पढ़े, जिन्होंने फ्रांस की क्रांति, अमेरिका का स्वातंत्र्य युद्ध, इंगलैंड की रक्तहीन क्रांति तथा आयरलैंड के संघर्ष के विषय में पढ़ा उन्होंने भारत में स्वाधीनता आन्दोलन का मंत्र फूंका। उन्होंने सब कुछ त्याग कर भारत की परतंत्रता की बेड़ियां तोड़ीं। यह वर्ग भारत के समस्त कल्याणकारी कार्यों का दीपदर्शक बना। इस प्रकार अंगरेजी शासन के परिणाम स्वरूप हमारा सामाजिक ढांचा बदला।

(८) भारत में पुनर्जागरण:—उपर्युक्त सभी प्रभावों के फलस्वरूप भारत में पुनर्जागरण (Renaissance) हुआ। प्रारम्भ में यह केवल बौद्धिक जागरण था परन्तु क्रमशः इसने नैतिक शक्ति का रूप धारण कर लिया। कालान्तर में नैतिक शक्ति का भारत की राजनैतिक विचार धारा पर प्रभाव पड़ा तथा इसने स्वतंत्रता आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। सामाजिक जीवन में अराजकता और अव्यवस्था के स्थान पर सुधार हुआ, राजनैतिक जीवन मे मुक्ति आन्दोलन छिड़ा, साहित्य और ललित कला के क्षेत्र में आधुनिकरण, हुआ शिक्षा के क्षेत्र में अंगरेजी भाषा का प्रसार हुआ, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने कदम बढ़ाया, तथा विविध प्रकार के आन्दोलनों से भारत पुरानी रूढ़ियों को छोड़कर नवनिर्माण की ओर बढ़ा।

अध्याय-सार

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध १८५७ ई० में विद्रोह हुआ। इस विद्रोह के परिणाम-स्वरूप रानी का शासन स्थापित हुआ। पिछले ६० वर्षों में ब्रिटिश शासन का भारत के राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

राजनीतिक प्रभाव

(१) ब्रिटिश प्रशासन और न्याय पद्धति का विकास। न्याय पद्धति और प्रशासन के क्षेत्र में ब्रिटिश शासन की छाप अमिट है।

(२) ब्रिटिश सैनिक पद्धति का विकास। भारतीय सेना का पुनर्गठन अंगरेजी पद्धति के अनुसार हुआ।

(३) प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास। १८६१ ई०, १८७४ ई०, १८९२ ई०, १९०९ ई० १९१९ ई० तथा १९३५ ई० के अधिनियमों द्वारा प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास हुआ।

(४) स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रारम्भ। १८६० से प्रारम्भ हुआ। लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन के विकास के लिये विशेष प्रयत्न किया।

(५) ग्रामीण स्वायत्त शासन का प्रारम्भ। लार्ड रिपन के शासन काल में प्रारम्भ हुआ। विकेन्द्रीकरण आयोग ने ग्रामीण स्वायत्त शासन पर विशेष बल दिया।

(६) प्रेस और समाचार पत्रों का विकास। ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीति की प्रतिक्रिया-आलोचना और राष्ट्रीयता का विकास।

(७) साम्प्रदायिकता का विकास। भारत की एकता को नष्ट कर दिया। राष्ट्रीय एकता के लिये सबसे बड़ा अभिशाप।

आर्थिक प्रभाव

(१) कृषि एवं सिंचाई का विकास। दुर्भिक्ष आयोग के परिणाम स्वरूप कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था में परिवर्तन।

(२) रेल, सड़क तथा जलमार्गों का विकास। रेलों का जाल बिछा। सड़कें बनी एवं जलमार्गों का विकास हुआ।

(३) डाक और तार व्यवस्था। देश में डाकघरों की स्थापना चिट्ठी भेजने के नाना उपायों का विकास।

(४) रेडियो और बेतार की व्यवस्था। विश्व से संपर्क।

(५) उद्योग एवं वाणिज्य का विकास। अनेक प्रकार के कारखानों की स्थापना। वाणिज्य और व्यापार का विकास।

सांस्कृतिक प्रभाव

(१) शिक्षा का प्रसार। अंगरेजी शिक्षा का प्रसार। केवल अंगरेजी शिक्षा प्राप्त करने वालों को सरकारी नौकरी मिलने का अवसर मिला। विश्वविद्यालयों की स्थापना।

(२) साहित्य का विकास। गद्य, पद्य, निबन्ध, भाषा-कोष, व्याकरण आदि की रचना अंगरेजी शैली के अनुसार।

(३) ललित कलाओं का विकास। चित्रकला, वस्तुकला, संगीत, नृत्य तथा नाट्यशालाओं पर अंगरेजी तथा विदेशी प्रभाव।

(४) धार्मिक और दार्शनिक विचारों में परिवर्तन। राजनीतिक एवं सामाजिक दर्शन पर विदेशी प्रभाव। धार्मिक एवं नैतिक दर्शन पर विदेशी प्रभाव का प्रभाव।

(५) विश्व के देशों से संपर्क। भारत का अन्तरराष्ट्रीय समाज में पदार्पण। सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में।

(६) वैज्ञानिक भावना और प्रणाली का विकास। वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति का विकास। जीवन की दैनिक घटनाओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास।

(७) सामाजिक परिवर्तन। रहन-सहन, खान पान, सामाजिक चलन में अंगरेजी प्रभाव। वफादार उच्च मध्य वर्ग का संगठन। साधारण मध्य वर्ग द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ करना।

(८) भारत में पुनर्जागरण। उपर्युक्त प्रभावों के परिणाम स्वरूप। पहिले बौद्धिक, फिर नैतिक तथा अन्त में राजनीतिक मुक्ति, आन्दोलन के रूप में विकास।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) ब्रिटिश शासन का भारत के राजनीतिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

What was the impact of the British rule on the political life of India?

(२) ब्रिटिश शासन के अधीन हमारे देश के आर्थिक जीवन में कहाँ तक परिवर्तन हुए?

How far the economic life of our country changed under the British rule?

(३) क्या यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन का सबसे अधिक प्रभाव हमारे सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा?

Is it correct to say that the greatest impact of British rule was on our cultural life?

(४) ब्रिटिश शासन का हमारे सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के प्रति क्या देन है?

What is the contribution of the British rule to our social and religious life?

अध्याय १०

NATIONAL MOVEMENT (1857-1947 A. D.)

राष्ट्रीय आन्दोलन (१८५७–१९४७ ई०)

१८५७ ई० में अंगरेजी शासन का एक युग समाप्त हुआ। इस युग में अंगरेजों के प्रति घृणा का भाव बहुत बढ़ गया था। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस युग ने वह सामग्री प्रस्तुत कर दी जिसमें से भारत की स्वतंत्रता के भावी संग्राम की शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। १८५७ ई० का विद्रोह क्या केवल विद्रोह मात्र था अथवा स्वतंत्रता संग्राम का प्रारम्भ ? इस प्रश्न का उत्तर विवादों से पूर्ण है। एक ओर इस विप्लव में राष्ट्रीयता और देशभक्ति दिखाई पड़ी तो दूसरी ओर यह केवल सिपाहियों का विद्रोह था जो कम्पनी सरकार की सत्ता नष्ट कर विदेशी शासन से मुक्त होना चाहती थी। इस विप्लव ने कम्पनी सरकार को समाप्त कर दिया परन्तु देश को स्वतंत्रता नहीं मिली। यद्यपि १८५८ ई० में रानी विक्टोरिया की घोषणा का स्वागत हुआ, तथापि देश में निराशा के बादल छा गए एवं भारतीयों की क्रियात्मक शक्ति कुछ समय के लिये सुप्त दिखाई पड़ी। पुनर्जागरण से भारत में नव चेतना प्रस्फुटित हुई एवं राष्ट्रीयता का विकास हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे—

राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण

(१) अंगरेजी शिक्षा का प्रभाव:—अंगरेजी शिक्षा का भारत के मध्य व' पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस वर्ग में ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने अंगरेजी के ग्रन्थों का अध्ययन किया। अंगरेजी लेखकों की पुस्तकों ने उनके हृदय में देशभक्ति और राष्ट्रीयता के विचा उत्पन्न किए। अंगरेजी भाषा ने स्वतंत्रता की विचारधारा को प्रोत्साहित किया। पश्चि और भारत के बीच संपर्क बढ़ा। भारत से अनेक युवक इंगलैण्ड जाकर शिक्षा प्रा करने लगे तथा लौटने पर स्वतंत्रता संग्राम के नेता बने। इस प्रकार अंगरेजी भाषा क भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव पड़ा।

(२) प्रेस और साहित्य का प्रभाव:—राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में भारत के समाचार पत्र, प्रेस तथा साहित्य ने महत्वपूर्ण योग दिया। समाचार पत्रों ने राजनीतिक शिक्षण तथा ब्रिटिश सरकार की आलोचना द्वारा राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिये अनेक अधिनियम बनाए परन्तु इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। भारतीय समाचार पत्र दबे नहीं वरन् उन्होंने निर्भीक होकर ब्रिटिश शासन की आलोचना की। समाचार पत्रों की निर्भीकता का जन साधारण पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

साहित्य के क्षेत्र में बंकिमचन्द्र का आनन्द मठ, शरतचन्द्र का पथेर दाबी, तथा बंगाल के अन्य साहित्यकारों की कृतियों ने राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित किया।

महाराष्ट्र में भी साहित्यकारों ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। अंगरेजी साहित्य के उन ग्रन्थों का अनुवाद भी हुआ जो राष्ट्रीय भावना के प्रतीक थे। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन को भारतीय साहित्य से बड़ी प्रेरणा मिली।

(३) सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन:—अंगरेजी शिक्षा, प्रेस और साहित्य का विकास, विदेशों से संपर्क आदि के कारण हिन्दू समाज में नवीन जागरण हुआ। इस जागरण के नेतागण थे राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, परम हंस रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द। राजा राममोहन ने ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा हिन्दू समाज के कुसंस्कारों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने समाज में उदार विचारधारा को प्रोत्साहन दिया स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना की। आर्य समाज ने भी हिन्दू समाज के कुसंस्कार को दूर करने का प्रयत्न किया तथा शुद्धि द्वारा हिन्दुओं को ईसाई धर्म अंगीकार करने से बचाया। परमहंस ने सेवा भाव पर इतना अधिक बल दिया कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके शिष्यों ने मानव-सेवा अपना जीवन का उद्देश्य बनाया। रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति को नवीन चेतना दी। उन्होंने विदेशों में भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान दिए। उनके भाषणों में इतनी शक्ति थी कि अनेक विदेशी उनके शिष्य बने तथा उन्होंने भारतीय संस्कृति का प्रचार किया।

समाज सुधारकों के अतिरिक्त सनातन धर्म, जैन धर्म, तथा अन्जुमन हिमायतुल-इस्लाम की स्थापना हुई। दक्षिण में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना से हिन्दुओं की अवस्था में सुधार हुआ। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी सुधार हुए। सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला, क्योंकि कुसंस्कारों से पूर्ण समाज कभी भी राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन नहीं कर पाता।

(४) आर्थिक शोषण:—आर्थिक शोषण का विरोध भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बना। १८५७ ई० के उपरान्त अंगरेजों ने भारत का आर्थिक शोषण प्रारम्भ किया। अंगरेज व्यापारी केवल अपने स्वार्थ के लिये इस प्रकार से व्यापार करने लगे कि भारतवासियों का व्यापार नष्ट हो गया। देश में दरिद्रता छा गई। किसान भूखों मरने लगे परन्तु अंगरेजी कम्पनियों का लाभांश बढ़ता ही गया। यदि भारत में रेल लाइन बिछाई जाती, डाकघर बनाये जाते, टेलीफोन के तार डाले जाते अथवा मशीनों के पुर्जे मंगाये जाते तो केवल इंग्लैण्ड ही समस्त वस्तुयें भेजता था। भारत में ऐसे कारखाने नहीं खोले गये जिनसे इंग्लैण्ड के व्यापारियों और पूंजीपतियों को हानि हो। इस नीति के परिणामस्वरूप भारत के मनुष्य दिन प्रतिदिन दरिद्र होते चले गए। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का नारा राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये महत्वपूर्ण था। इंगलैण्ड की बनी वस्तुओं का बहिष्कार आर्थिक शोषण को समाप्त करने का महत्वपूर्ण तरीका था।

अंगरेजों की आर्थिक नीति के कारण देश में बेकारी बढ़ी, कुटीर उद्योग धन्धे समाप्त हो गए तथा भूमिहीन किसान मजदूरी के लिये भटकने लगे। शिक्षित बेकारों ने उग्र राष्ट्रीयता का समर्थन किया। सरकारी नौकरियों में प्रवेश सीमित होने के कारण युवकों में असंतोष फैला जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा दिया। इस प्रकार आर्थिक शोषण से जो असंतोष उत्पन्न हुआ उसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन केवल राजनीतिक आन्दोलन नहीं रहा वरन् आर्थिक आत्म निर्णय का कार्यक्रम बना।

(५) विदेशी घटनाओं का प्रभाव:—हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन पर विदेशी घटनाओं का भी प्रभाव पडा। अमेरिका का स्वातंत्र्य युद्ध, आयरलैण्ड का अपने अधिकारों के लिये संघर्ष, जर्मनी और इटली का राष्ट्रीय एकीकरण, फ्रांस तथा इंगलैण्ड की जनतांत्रिक विचारधारा तथा चीन और जापान की जागृति ने हमारे देश के नेताओं को प्रभावित किया। विदेशी नेताओं के भाषण, कार्य प्रणाली तथा देश के लिये त्याग आदि का वर्णन हमारे देश के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन ने ऐनी बेसेन्ट को प्रभावित किया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से हमारे देश के नेताओं को प्रोत्साहन मिला।

(६) राजनीतिक जागृति:—१८५७ के उपरान्त हमारे देश में राजनीतिक उदासीनता छा गई। अंगरेजों ने इस उदासीनता को बहुत अच्छा समझा क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि विप्लव के उपरान्त भारतीयों में अंगरेजों के विरुद्ध कार्य करने की शक्ति समाप्त हो गई परन्तु राजनीतिक उदासीनता को दूर करनेवाले कुछ भारतीयों ने एक संस्था का संगठन किया। पुनर्जागरण ने राजनीतिक उदासीनता को नष्ट कर मुक्ति आन्दोलन का संदेश दिया। इंग्लैण्ड से लौटे हुए व्यक्तियों ने अंगरेजी जीवन की अच्छाइयों पर प्रकाश डाला एवं उनमें यह प्रेरणा फूंक दी कि अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करना प्रत्येक राष्ट्र अथवा व्यक्ति का पवित्र कर्तव्य है। इंगलैण्ड के जनतांत्रिक सिद्धान्तों का अनुकरण किया गया तथा राजनीतिक दलों की स्थापना की गई। समाचार पत्र तथा समकालीन साहित्य ने राजनीतिक जागृति के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किया। राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप १८८५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

अध्ययन की सुविधा के लिये हमारे देश का राष्ट्रीय आन्दोलन चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) राष्ट्रीय जागरण की ओर (१८५७–१९०५ ई०) (२) उग्र राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता (१९०५–१९१९ ई०) गांधी युग (१९१९–१९४७ ई०) में दो भाग (क) अहिंसा की परीक्षा (१९१९–१९४२ ई०) (ख) स्वतन्त्रता की ओर (१९४२–१९४७ ई०)।

राष्ट्रीय जागरण की ओर (१८५७ से १९०५ ई०)

१८५७ ई० के विप्लव के उपरान्त लगभग दस वर्ष तक भारत में किसी ... राजनैतिक हलचल नहीं दिखाई पड़ी। १८६६ ई० में दादाभाई नौरोजी ... का ध्यान भारतवासियों की समस्याओं की ओर आकर्षित करने के लिये

'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' नामक संस्था की स्थापना की। इसके उपरान्त भारत में भी ऐसे संस्थाओं की स्थापना होने लगी जो अंगरेजों का ध्यान अपनी समस्याओं की ओर आकर्षित करना चाहते थे। १८७५ ई० में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'इण्डियन एसोसिएशन' नामक एक राजनीतिक संस्था की स्थापना की। सुरेन्द्रनाथ ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में 'इण्डियन एसोसिएशन' के उद्देश्यों का प्रचार किया। इस संस्था के दो अधिवेशन हुए, एवं द्वितीय अधिवेशन में लगभग २०० प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। १८८४ ई० में 'इण्डियन नेशनल यूनियन' नामक संस्था की नींव बम्बई में डाली गई। १८८५ ई० में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ तथा इसका नाम बदल कर 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' रखा गया। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व बंगाल के प्रसिद्ध वकील उमेशचन्द्र बनर्जी ने किया। इस अधिवेशन के प्रस्तावों में स्वतन्त्रता की मांग नहीं की गई।

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन १८८६ ई० में कलकत्ते में हुआ। उसके सभापति हुए दादाभाई नौरोजी। दादाभाई नौरोजी का जन्म बम्बई के एक पारसी परिवार में १८२५ ई० में हुआ। १८५१ ई० में उन्होंने गुजराती भाषा में एक साप्ताहिक पत्र निकाला। १८७४ ई० में बड़ौदा राज्य के दीवान नियुक्त हुए तथा १८८५ ई० में बम्बई व्यवस्थापिका परिषद् के नामज़द सदस्य नियुक्त हुए। इसके एक वर्ष बाद कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन के सभापति बने। १८९२ ई० में केन्द्रीय फिंसबरी से ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुन लिये गए। १८९३ ई० में लाहौर में पुनः कांग्रेस के सभापति हुए, एवं अपनी मृत्यु—१९१७ ई० तक कांग्रेस की सेवा करते रहे तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भाग लिया। १८९२ ई० में भारत अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम का भारत के राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव पड़ा।

१८८६ ई० के उपरान्त कांग्रेस का प्रचार कार्य धीमा पड़ गया एवं ऐसा प्रतीत होने लगा कि वार्षिक अधिवेशन के अतिरिक्त कांग्रेस के पास कोई और कार्यक्रम नहीं है। परन्तु इस समय बाल गंगाधर तिलक के भाषणों ने देश में हलचल पैदा कर दी। १८९७ ई० में अंगरेजी सरकार के विरुद्ध अपना भाषण छपाने के अपराध में तिलक को १८ महीने का कड़ा कारावास दिया गया। इसी वर्ष अमरावती के अधिवेशन में अंगरेजों से उन्हें छोड़ देने की मांग की गई। इंगलैण्ड तथा यूरोप के कुछ विद्वानों ने भी उन्हें छोड़ देने की मांग की अतः १८९८ ई० में उन्हें छोड़ दिया गया। तिलक गरम दल के नेता थे। उन्होंने पहली बार यह बात पूरे जोर के साथ कही थी कि अंगरेजों से भीख मांगने पर हिन्दुस्तानियों को कुछ न मिलेगा। उन्हें यह निश्चय कर लेना होगा कि "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" उन्होंने अंगरेजी शासन की बुराईयों की आलोचना ऐसे कड़े शब्दों में की कि चापलूस राजभक्त कांप उठे। उन्होंने प्रार्थना, और मांग की नीति छोड़कर शक्ति, संगठन तथा आत्म निर्भता के आधार पर राष्ट्र की शक्ति बढ़ाने का उपदेश दिया। यही आगे चलकर राष्ट्र की भावना का आधार बना। इस प्रकार १९०५ ई० तक भारत में धीरे धीरे राष्ट्रीय जागरण होता दिखाई पड़ा।

उग्र राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता का जन्म (१९०५-१९१९ ई०)

१८९२ ई० के उपरान्त कांग्रेस में दो दल हो गए—नरम दल और गरम दल। दोनों दलों का उद्देश्य एक ही था परन्तु कार्य पद्धति भिन्न थी। १८९९ ई० में लार्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने भारतीय शासन में इस प्रकार सुधार करना प्रारम्भ किया कि देशवासी उसके विरोधी बन गए। विश्वविद्यालय अधिनियम के मामले में भारत के नेताओं ने कर्जन का विरोध किया। १९०३ ई० में कर्जन के मस्तिष्क में बंगाल को भाजन का प्रश्न आया। उसने अंग्रेजी शासन के हित में यह समझा कि बंगाल की शक्ति और एकता को विभाजन द्वारा नष्ट कर दिया जाए। अतः उसने इस विभाजन के लिये एक मसविदा बनाया जो १९०४ ई० में राज्य सचिव के पास भेज दिया गया। १९०५ ई० में विभाजन का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। बंग-भंग की घोषणा द्वारा बंगाल की आत्म-चेतना पर आघात किया गया। नेताओं ने अनुभव किया कि कोरे भाषण और विरोध से सरकार को हिलाया न जा सकेगा। इसी आवश्यकता ने स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार-आन्दोलन को जन्म दिया। कालान्तर में ये कांग्रेस के स्थायी अंग बन गए। स्वदेशी आन्दोलन का श्रीगणेश १९०५ ई० में कलकत्ता के टाउन हाल के एक सार्वजनिक आन्दोलन द्वारा हुआ। जिस दिन बंगाल विभाजन की घोषणा हुई उस दिन सारे बंगाल में शोक-दिवस मनाया गया। लोगों ने सारा दिन उपवास किया, हिन्दू-मुसलमानों में भ्रातृत्व की भावना बनाए रखने के लिए राखी बांधी तथा शपथ ली कि जब तक बंग-भंग की योजना समाप्त नहीं कर दी जायेगी तब तक वे यथा संभव विदेशी वस्तुओं का त्याग करेंगे।

सरकार इस आन्दोलन की उग्रता से घबरा गई। सरकार ने आन्दोलन का दमन करना प्रारम्भ किया। वन्दे मातरम् का उच्चारण अवैध घोषित किया गया। बंग विभाजन ने उग्र राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया। इसका प्रभाव मद्रास, पंजाब, महाराष्ट्र आदि पर भी पड़ा। इस आन्दोलन का रूप हिंसात्मक बना। अंगरेजों को मारना, रेलगाड़ी उड़ाने का प्रयत्न आदि से देश में आतंकवादियों और सरकार के बीच एक प्रकार का संघर्ष छिड़ गया। अंगरेजी अधिकारियों को मारने के लिये षडयंत्र रचे गए तथा क्रान्तिकारी समितियों का संगठन हुआ। १९०६ ई० में गोखले ने लार्ड मिण्टो से सार्वजनिक अपील की कि वे शिक्षित वर्ग की सहायता से देश में शान्ति स्थापित करें। इस अपील का कुछ प्रभाव पड़ा एवं वैधानिक सुधारों के लिये एक समिति का संगठन किया गया इसके उपरान्त १९०९ ई० का भारत अधिनियम बना। इस अधिनियम के बाद उग्रवादी दल का प्रभाव कम होने लगा।

साम्प्रदायिकता का जन्मः—१८८८ ई० के उपरान्त सर सैयद अहमदखां ने हिन्दुओं का विरोध करना प्रारम्भ किया एवं उन्हें विश्वास हो गया कि कांग्रेस की स्थापना मुसलमानों के हित में नहीं है। उन्होंने 'मुस्लिम सुरक्षा संघ' आदि का निर्माण किया। यद्यपि

उस समय अंगरेजी सरकार सर सैयद अहमदखां का समर्थन नहीं कर रही थी तथापि प्रिंसिपल बैक ने 'मोहम्डन डिफेन्स एसोसिएशन' नामक संस्था की स्थापना मे महत्वपूर्ण योग दिया। क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्ति हिन्दू थे अतः सर सैयद अहमदखां ने सरकार को मुसलमानों का पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मुसलमानों में अंगरेजो के प्रति राजभक्ति की भावना उत्पन्न की जिससे वे ब्रिटिश शासन के सच्चे समर्थक बन सकें। सरकार ने मुसलमानों की इस नीति का स्वागत किया। इसके उपरान्त मुसलमान कांग्रेस के समान एक संस्था का संगठन करने के लिये प्रयत्न करने लगे। १९०६ ई० में ३५ मुसलमानों का एक शिष्ट मंडल (Delegation) लार्ड मिन्टो से मिला। उन्होंने लार्ड मिन्टो के सामने अपनी मांगें रक्खी। लार्ड मिन्टो विभाजन नीति का समर्थक था, इसलिये उसने १९०९ ई० के अधिनियम में पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व रक्खा। १९०६ ई० में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। लीग की स्थापना तथा १९०९ ई० के अधिनियम मे पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप मुसलमान अपने आपको अलग समझने लगे। मुसलमान सरकारी नौकरी, व्यवस्थापिका परिषद् आदि में साम्प्रदायिक आधार पर पृथक स्थानों की मांग करने लगे।

१९१२ ई० में दिल्ली में शाही दरबार हुआ। यह दरबार भारत में जार्ज पंचम का स्वागत करने के लिये हुआ। इस दरबार में कुछ महत्वपूर्ण घोषणायें की गईं। बंग-विच्छेद में संशोधन कर बंगालियों को सन्तुष्ट किया गया तथा सरकारी नौकरियों के विषय में जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई। १९११ से १९१६ ई० तक के वर्षों में क्रांतिकारी प्रवृत्तियां सक्रिय रही तथा सुधारों का आन्दोलन भी चलता रहा। १९१५ ई० में तिलक के नेतृत्व में उग्र दल ने पुनः कांग्रेस में प्रवेश किया। इसी वर्ष भारत रक्षा कानून पास हुआ जिसने बिना जाँच के कार्यपालिका को मनुष्य को बन्दी करने का अधिकार दिया। इस कानून के परिणामस्वरूप क्रांतिकारियों ने या तो आन्दोलन बन्द कर दिया अथवा छिपे छिपे कार्य करते रहे। विदेशों मे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। बर्लिन में भारतीय राष्ट्रीय दल की स्थापना हुई। इसका संबंध जर्मन 'जनरल स्टाफ' से कर दिया गया। सरदार गुरुजीतसिंह सिख और पंजाबियों को लेकर कनाडा पहुँचा परन्तु उसे अपने साथियों के साथ लौटना पड़ा।

भारत इंगलैंड के अधीन होने के कारण प्रथम विश्व-युद्ध में उतरा। इस युद्ध को जीतने में भारत ने इंगलैंड की जितनी सहायता की उतनी राष्ट्रमण्डल के किसी भी देश ने नहीं की। भारत के लोग यह सोचने लगे कि युद्ध की समाप्ति पर इंगलैण्ड भारत को स्वतंत्र कर देगा तथा जनतंत्र की स्थापना होगी। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार की निष्ठा के साथ सहायता की। युद्ध के उपरान्त भारत को मिला आर्थिक संकट, और राजनैतिक धर्मसंकट। युद्ध के बाद भारत की आंखें खुल गई तथा इंगलैण्ड के प्रति घोर अविश्वास की भावना उत्पन्न हुई जो राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये लाभ दायक सिद्ध हुई।

होमरूल आन्दोलन (Home Rule movement):—१९१४ ई॰ में तिलक जेल से छूटे तथा वे पुनः अपने कार्य में जुट गए। इसी समय श्रीमती एनी बेसेंट नामक आयरिश महिला ने भारत की राजनीतिक उथल पुथल में भाग लेना प्रारम्भ किया। उन्होंने आयरलैण्ड के समान भारत के लिये 'होमरूल' आन्दोलन चलाना चाहा। उन्होंने कांग्रेस के दोनों दलों में एकता उत्पन्न करना आवश्यक समझा। उन्होंने मुस्लिम लीग को भी इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया। १९१६ ई॰ में होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। एनी बेसेन्ट और तिलक बन्दी बना लिए गये, परन्तु आन्दोलन का जोर कम न हुआ। सारे देश में असंतोष फैल गया। राष्ट्रीय कांग्रेस ने होमरूल आन्दोलन की सराहना की।

लखनऊ का समझौता (Lucknow Pact):—१९१६ ई॰ में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन तथा अल्पसंख्यक प्रान्तों में उनके लिये विशेष महत्व का स्थान स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार किया कि सुधारों की योजना को संयुक्त रूप से स्वीकार किया जाए। इस समझौते के साथ ही कांग्रेस की मुसलमानों के प्रति अनुतोषण की नीति प्रारम्भ होती है।

होमरूल आन्दोलन तथा कांग्रेस-मुस्लिम लीग समझौते के परिणामस्वरूप राजनीतिक आन्दोलन ने जोर पकड़ा। इस समय अंगरेजी सरकार भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिये एक ऐसी घोषणा करना चाहती थी जिसके द्वारा यह राजनीतिक विकास के प्रति इंगलैण्ड के उद्देश्यों को प्रकट कर सके। अगस्त १९१७ ई॰ में अंगरेजी सरकार ने इसी उद्देश्य से एक घोषणा की। कांग्रेस के नरम दल ने इसका स्वागत किया परन्तु गरम दल ने इसका दूसरा ही अर्थ निकाला। मुसलमान 'संसदीय शासन' के नाम से शंकित दिखाई पड़े। इस समय खिलाफत आन्दोलन ने जोर पकड़ा। कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में इसका समर्थन किया।

जिस समय भारत की राजनीतिक अवस्था में असंतोष की भावना अत्यन्त उग्र रूप से दिखाई पड़ी उसी समय १९१९ ई॰ के सुधारों के विषय में शिमला और लन्दन के बीच लिखा पढ़ी होने लगी। आन्दोलन का दमन किया गया। अन्त में १९१९ ई॰ में वैधानिक सुधारों की घोषणा की गई। इस सुधार योजना से वैधानिक क्षेत्र में परिवर्तन हुए परन्तु देश को स्वतंत्र करने की इसमें कोई भी योजना नहीं थी।

गांधी युग—(क) अहिंसा की परीक्षा—(१९१९-४२ ई॰)

रौलेट विधेयक (Rowlatt Bill) के विरोध में जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था वह सारे भारत में फैला। शान्तिप्रिय जलूसों को रोकने के लिये अथवा उन्हें तितर-बितर करने के लिये लाठियां और गोलियां चलाई गईं। इस समय गांधीजी ने भारत के राजनीतिक जीवन

में सक्रिय रूप से प्रवेश किया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर लेने के लिये उनके पास एकही अहिंसात्मक अस्त्र (Non-violent weapon) था—सत्याग्रह। गांधीजी के आज्ञानुसार प्रत्येक सत्याग्रही को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह ईमानदारी से सत्य का पालन करता रहेगा। सत्याग्रह आन्दोलन का जनता ने स्वागत किय। अमृतसर में एक सैनिक टुकड़ी ने जलूस रोक कर अमृतसर हत्याकाण्ड कराया जिसका श्रेय जनरल डायर को मिला। इसके उपरान्त १६२० ई० में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के उपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन का रुख बदल दिया गया। गांधीजी ने सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience) की योजना बनाई। हजारो व्यक्तियों ने इस आन्दोलन में भाग लिया परन्तु १६२१ ई० के अन्त तक यह आन्दोलन बन्द कर दिया गया, क्योंकि कांग्रेस के सभी नेता जेल में बन्द कर दिये गए थे परन्तु कुछ ही दिनों में वे छोड़ दिये गये। मुस्लिम लीग ने इस आन्दोलन का समर्थन नहीं किया।

गांधीजी ने अहिंसा द्वारा विजय प्राप्त करने का जो कार्य प्रारम्भ किया था उस कार्य में उन्हें पहला आघात बम्बई में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन के अवसर पर हुए दंगों से लगा। मलाबार मे मोपालाओं के विद्रोह से भी गाधीजी को इसी प्रकार का आघात पहुँचा। १६२२ ई० में गाधीजी ने बार्डोली (Bardoli) से वायसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने कुछ शर्तें लिख भेजी जिनके पूरा किए जाने पर आन्दोलन बन्द किया जाएगा। सरकार ने इस पत्र की परवाह नही की। गाधीजी ने अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ बार्डोली से किया। चोरी-चौरा का हत्याकाण्ड तथा मद्रास मे प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन से हुए विद्रोह ने गाधीजी की आंखें खोल दी। उन्होंने आन्दोलन बन्द कर दिया। इसके कुछ समय बाद उन्हें बन्दी कर लिया गया तथा ६ वर्ष का साधारण कारावास दिया गया। गांधीजी के कारावास के पहले ही कांग्रेस में दो दल हो गये थे। मोतीलाल नेहरू तथा चित्तरंजनदास के नेतृत्व में "स्वराज पार्टी" (Swaraj party) नामक एक अलग दल बना। "स्वराज पार्टी" और गाधीजी के बीच पारस्परिक सम्बन्ध न हो सका। गाधीजी कारावास मे बीमार पड़ने के कारण समय से पहिले ही छोड़ दिए गये।

१६१६ ई० के सुधारों के बाद साम्प्रदायिक भावना का प्रबल रूप से विकास हुआ। "इस प्रबलता के अनेक कारण थे और सबसे बड़ी दुःख की बात तो यह है कि स्वयं महात्मा गांधी भी इसका एक कारण थे। महात्मा गाधी की भावुकता राजनीति को धर्म से बिलकुल अलग न कर पाती थी, जिसके कारण साम्प्रदायिक भावनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्रय मिलता था।" अंगरेज हिन्दू और मुसलमानों के बीच पारस्परिक विरोध उत्पन्न कर भारत पर शासन करना चाहते थे। यह उनकी नीति का महत्वपूर्ण अंग था। अतः उन्होंने धार्मिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के आधार पर हिन्दू और मुसलमानों में सदा पृथकत्व की भावनाओं को प्रोत्साहित किया। १६२२ ई० से लेकर १६३६ ई० तक सारे भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते रहे। इन दंगों से हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वैषभाव की भावना दृढ़ रूप से बढ़ी जिसने आगे चलकर पाकिस्तान का रूप धारण किया।

साइमन आयोग (Simon Commission):—१९१९ ई० के सुधारों के अनुसार यह आयोजन किया गया था कि दस वर्ष पश्चात् इन सुधारों को जांच के लिये एक आयोग नियुक्त किया जाएगा। १९२७ ई० में लार्ड साइमन की अध्यक्षता में एक शाही आयोग की घोषणा की गई। इस आयोग मे कोई भी भारतीय नहीं था, जिसका अर्थ यह था कि भावी संविधान के निर्माण मे भारतीयों की उपेक्षा की जाएगी। ब्रिटिश सरकार की इस नीति के विरुद्ध असंतोष फैला तथा इस आयोग का स्थान स्थान पर काले झन्डों से स्वागत किया गया। कांग्रेस ने इस आयोग का बॉयकाट किया।

सर्व दल सम्मेलन (All party Conference):—जब एक ओर साइमन आयोग के सदस्यों को काला झन्डा दिखाया जा रहा था तो दूसरी ओर भारत के समस्त राजनीतिक दलों का १९२८ ई० में सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में भारत के भावी संविधान बनाने के लिये एक समिति का संगठन किया गया। इस समिति का नाम नेहरू-समिति पड़ा क्योंकि इसके सभापति मोतीलाल नेहरू थे। इस समिति ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को अपना उद्देश्य रखते हुए संविधान का एक मसविदा तैयार किया। इसी वर्ष मुहम्मद अली जिन्ना इङ्गलैण्ड से लौट आए तथा उन्होंने मुसलमानों को मुस्लिम लीग के झन्डे के नीचे साम्प्रदायिक आधार पर संगठित किया। इस प्रकार जिन्ना एक राष्ट्रीय नेता के स्थान पर साम्प्रदायिक नेता बन गए। जिन्ना ने नेहरू-रिपोर्ट में तीन संशोधन प्रस्तावित किए परन्तु ये साम्प्रदायिक होने के कारण अस्वीकार कर दिये गए। इस पर जिन्ना असंतोष प्रकट किया तथा चौदह मांगें रक्खीं। कांग्रेस और जिन्ना में इन मांगों के आधार पर समझौता न हो सका।

२६ जनवरी १९३० ई०:—यह दिन भारत के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी दिन लाहौर के अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का संकल्प किया तथा यह दिन भारत स्वाधीन होने तक स्वतंत्रता दिवस के नाम से सारे भारत में प्रति वर्ष मनाया गया।

लाहौर कांग्रेस के उपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन का चक्र बड़ी तेजी के साथ घूमा। गांधीजी ने सविनय-अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होंने नमक-कानून तोड़ने का निश्चय किया तथा अपने चुने हुए सहयोगियों के साथ साबरमती आश्रम से समुद्र तटवर्ती डांडी नामक स्थान की ओर यात्रा की। आन्दोलन की इस नई प्रणाली से ब्रिटिश सरकार स्तम्भित रह गई। नमक-कानून तोड़ने के साथ साथ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। देश भर में असंतोष फैल गया। सरकार ने पूर्ण शक्ति के साथ दमन-चक्र चलाया। इस आन्दोलन के नेता बन्दी बना लिये गये। आन्दोलन के उत्साह ने थकावट का स्थान ले लिया। जनता के मन में अहिंसा की नीति की सफलता के विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ।

गोल मेज-सम्मेलन (Round Table Conference):—लार्ड इर्विन इस आन्दोलन को कुचलना भी चाहता था तथा आन्दोलन कारियों से समझौता करने के

भी पक्ष में था। तेज बहादुर सप्रू तथा एम० आर० जयकर को लार्ड अर्विन की इच्छा का आभास मिला, जिसके फलस्वरूप दोनों ने समझौते की बात-चीत चलाई। दोनों ने गांधीजी से यरवदा जेल में तथा जवाहरलाल एवं मोतीलाल नेहरू के साथ नैनी जेल में भेंट की। तीनों ने यरवदा जेल में भी जयकर और सप्रू के साथ भेंट की परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। लन्दन में बिना कांग्रेस प्रतिनिधियों के प्रथम गोल मेज-सम्मेलन १९३० ई० में प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन मे किसी निश्चित विषय पर निर्णय न हो सका।

प्रथम गोल मेज-सम्मेलन की असफलता से स्पष्ट हो गया कि भारत के विषय में किसी निश्चित् निर्णय पर पहुँचने के लिये कांग्रेस का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, अतः २६ जनवरी १९३१ ई० को कांग्रेस के नेता बिना किसी शर्त के छोड दिए गए। इसके दस दिन बाद मोतीलाल नेहरू का देहान्त हो गया। सप्रू, जयकर तथा शास्त्री के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप लार्ड अर्विन तथा गांधीजी के बीच मुलाकात हुई। इस मुलाकात के फलस्वरूप गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया तथा द्वितीय गोल मेज-सम्मेलन में भाग लिया। इस समझौते से देश के बहुत-से मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। द्वितीय गोल मेज-सम्मेलन भी असफल रहा क्योंकि साम्प्रदायिक प्रश्न पर किसी प्रकार का समझौता नहीं हुआ। भारत में पुनः हिन्दू-मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो गए।

१९३२ ई० में भारत को साम्प्रदायिक निर्णय (Communal award) मिला। इसका एक मात्र उद्देश्य था भारत की एकता को सदा के लिये नष्ट कर देना। इस निर्णय के अनुसार हिन्दू, मुसलमान, सिख, युरोपीय तथा हरिजनों के लिये पृथक निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था की गई। १९३३ ई० में समझौता करने के लिये 'एक्य सम्मेलन' बुलाया गया परन्तु यह भी असफल रहा।

१९३२ ई० मे तीसरा गोल मेज सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के बाद १९३३ ई० में एक श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया। इसमें सम्मेलन के निर्णय थे। कालान्तर में इस श्वेत-पत्र के आधार पर १९३५ ई० का भारत अधिनियम बना।

१९३२ ई० में सरकार ने कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित की तथा गांधीजी को जेल में बन्द कर दिया। गांधीजी ने २१ दिन का उपवास किया। अतः उन्हे १९३३ ई० में मुक्त कर दिया गया। जेल से छूटने के बाद गांधीजी ने पूना के अधिवेशन में भाग लिया तथा सविनय अवज्ञा-आन्दोलन की विफलता और सफलता पर विचार किया।

१९३५ ई० का भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935):—ब्रिटिश संसद की संयुक्त संसदीय समिति का विवरण १९३४ ई० में प्रकाशित हुआ। इस विवरण की ओर भारतीयों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस विवरण में सामान्य संशोधन के बाद ब्रिटिश संसद ने इसे भारत सरकार अधिनियम का रूप दिया। यह भारत के लिये नया संविधान था जिसमें संघीय व्यवस्था के

साथ साथ प्रान्तीय स्व-शासन की व्यवस्था थी । इसमें साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन क्षेत्र का विभाजन एवं विभिन्न वर्गों के लिये रक्षित स्थानों की व्यवस्था भी थी ।

इस संविधान का संघीय भाग कभी भी लागू नहीं हुआ । प्रान्तीय स्वशासन का प्रारम्भ १९३७ ई० के निर्वाचन के साथ हुआ । १९३९ ई० में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ने पर इस संविधान की सभी बातें लागू नहीं की गईं । इस संविधान के अनुसार भारत के विभिन्न प्रान्तों में निर्वाचन हुए । पांच प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत मिला, तथा वहां पर कांग्रेस मंत्रिमण्डल का संगठन हुआ । चार प्रान्तों में कांग्रेस के सबसे अधिक सदस्य चुने गए तथा कोई भी मंत्रिमण्डल उनके सहयोग के बिना संगठित नहीं हो सकता था । मुस्लिम लीग किसी भी प्रान्त में, यहां तक कि मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में भी मंत्रिमण्डल का संगठन न कर सका । इससे हिन्दू और मुसलमानों के बीच और भी तनाव बढ़ा । कांग्रेस ने बार बार समझौता करने का प्रयास किया परन्तु यह हमेशा ही असफल रहा ।

३ सितम्बर १९३९ ई० को यूरोप में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ । कांग्रेस ने ११ सितम्बर को घोषणा की कि युद्ध में भाग लेने का निर्णय भारत की जनता द्वारा होना चाहिए । कांग्रेस ने इस बात की मांग की कि यदि इंगलैण्ड भारत का पूर्ण सहयोग चाहता है तो भारत को पहले स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करे । इस घोषणा के उत्तर में वायसराय ने उत्तर दिया कि युद्ध की समाप्ति पर ही संविधानिक मामलों पर विचार किया जाएगा । गवर्नरों ने संकटकालीन स्थिति की घोषणा की । कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल से त्याग पत्र दिया । इस पर मुस्लिम लीग ने १९३९ ई० में मुक्ति दिवस मनाया ।

पाकिस्तान की मांग (Demand for Pakistan):—१९४० ई० में लाहौर में मुस्लिम लीग का शानदार अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में पाकिस्तान की मांग की गई । पाकिस्तान की मांग मुस्लिम लीग की सबसे बड़ी मांग थी । पाकिस्तान अथवा मुसलमानों के लिये पृथक राज्य की कल्पना १९२९ ई० में प्रारम्भ हुई । इस भावना का प्रथम अंकुर मुहम्मद इकबाल के भाषण में था । लन्दन-सम्मेलन के समय कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी ने मुसलमानों के लिये पृथक राज्य की योजना बनाई तथा इसका नाम पाकिस्तान-पवित्र लोगों का स्थान रक्खा । इसके उपरान्त इस सिद्धान्त पर पाकिस्तान राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । इस आन्दोलन का आधार था-हिन्दू और मुसलमान दो पृथक जाति, दो पृथक संस्कृतियां तथा दो पृथक राष्ट्र हैं अतः हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान केवल दो पृथक राष्ट्रों की स्थापना से ही हो सकता है । अंगरेज इस आन्दोलन से प्रसन्न थे । साम्प्रदायिक विद्वेष के आधार पर यह आन्दोलन जोर पकड़ता गया ।

१९४० ई० में कांग्रेस ने सरकार के साथ युद्ध में सहयोग करना इस शर्त पर ...र किया कि भारत का स्वतंत्रता घोषित किया जाए तथा अन्तरिम समय ... केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार बनाई जाए । वायसराय ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों से

बातचीत की परन्तु कोई फल न निकला। इसी वर्ष सुभाषचन्द्र बोस पकड़े गए। दमन-चक्र पुनः गतिशील हुआ। गांधी जी ने भाषण की स्वतंत्रता के लिये व्यक्तिगत सत्याग्रह का निश्चय किया। एक बार पुनः कांग्रेस के नेतागण पकड़े गए। १६४१ ई० में महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों की हार तथा १६४२ ई० में जापान द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों पर अधिकार ने अंगरेजों को कांग्रेस से समझौता करने की ओर झुकाया।

क्रिप्स मिशन (Cripps Mission):—१६४२ ई० में इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री चर्चिल ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत के नेताओं से बातचीत करने के लिये भेजा। क्रिप्स अपने साथ जो प्रस्ताव लाया था वह प्रकाशित हुआ। इसमें भारत का लक्ष्य "औपनिवेशिक स्वराज्य" बतलाया गया। इसके अतिरिक्त युद्ध की समाप्ति पर निर्वाचित, संविधान-सभा का संगठन आदि भी था। क्रिप्स ने इस घोषणा के आधार पर भारत के विभिन्न दलों के नेताओं के साथ मुलाकात की। इन मुलाकातों में अविश्वास की भावना बनी रही अतः क्रिप्स बिना किसी निर्णय पर पहुँचे लन्दन वापस लौट गया। क्रिप्स मिशन की असफलता के कारण ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता नहीं हो सका। मुस्लिम लीग ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया तथा पाकिस्तान आन्दोलन जोर से चलाया। भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी जटिल बन गई तथा अंगरेजी सरकार कांग्रेस के साथ निपटने के लिये प्रस्तुत हुई।

भारत छोड़ो आन्दोलन (Quit India movement) १६४२ ई० युरोप में युद्ध की गति तेज हो गई थी। मित्र-राष्ट्रों की हार हो रही थी तथा पूर्व में जापान धीरे धीरे भारत की ओर बढ़ा आ रहा था। गांधी जी ने अंगरेजो के सामने अनुशासित रूप से भारत छोड़ जाने का सुझाव रक्खा। ७ और ८ अगस्त १६४२ ई० को बम्बई में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक हुई। इसमें कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन को हटाने की माग की तथा अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ने का निश्चय किया। ६ अगस्त को कांग्रेस कार्य-समिति के सभी सदस्य बन्दी बना लिये गये। इस कार्य से सारे भारत में असंतोष की भावना फैली तथा स्थान स्थान पर क्रान्तियां हुईं। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ने हिंसात्मक रूप धारण किया। सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिये दुगने बल से हिंसात्मक तरीकों का प्रयोग किया। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप भारत के कुछ प्रान्तो में विप्लव दिखाई पड़ा। परन्तु यह आन्दोलन बिना योग्य नेता, संगठन, आर्थिक सहायता तथा स्पष्ट उद्देश्यों के समाप्त हो गया। यह आन्दोलन जन-जागृति (Mass awakeni ing) का उन्नत, आदर्श बन गया जिसने आने वाले युग के युवकों को स्वतंत्रता के लिये सब कुछ त्याग देने का गुरुमंत्र दिया। गांधीजी ने जब इस आन्दोलन की हिंसात्मक प्रवृत्ति के विषय में सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने १० फरवरी १६४३ ई० को उपवास प्रारम्भ किया। यह उपवास २१ दिन बाद समाप्त हुआ।

आन्दोलन के समय मुस्लिम लीग ने पूरी वफादारी के साथ ब्रिटिश शासन का समर्थन किया तथा आन्दोलन को कुचलने में पूरा सहयोग भी दिया। जिन्ना ने सरकार

को धमकी दी कि बिना पाकिस्तान की मांग स्वीकार किये हुए यदि अंग्रेजों ने कांग्रेस से समझौता करने की कोशिश की तो भारत में खून की नदियां बह जायेंगी। पाकिस्तान प्राप्ति के लिये जिन्ना ने संघर्ष समिति का संगठन किया।

गांधी युग-(ग) स्वतंत्रता की ओर (१९४३-१९४७ ई०)

१९४३ ई० में लार्ड लिनलिथगो (Lord Linlithgow) इंगलैंड लौट गया तथा उसके स्थान पर लार्ड वेवल (Lord Wavell) वायसराय बनकर आया। वेवल के आने पर राजनीतिक तनाव कुछ कम होने की आशा की गई। १९४४ ई० के भाषण में वेवल ने भारत की भौगोलिक स्थिति को अपरिवर्तनीय बतलाया। इससे यह अनुमान लगाया गया कि यह भारत का विभाजन स्वीकार नहीं करेगा। इसी समय भारत के राजनीतिक आकाश में समझौते का वातावरण दिखाई पड़ा। राजगोपालाचारी ने कांग्रेस छोड़ने के बाद हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये उन्होंने एक फार्मूला बनाया। गांधीजी ने भी इसे स्वीकार कर लिया था। १९४४ ई० में गांधीजी बिना किसी शर्त के छोड़ दिए गए। राजगोपालाचारी ने एक माह तक गांधीजी से बातचीत की, परन्तु समझौते की बात निष्फल रही क्योंकि जिन्ना अपनी मांग पर डटा हुआ था।

वेवल योजना (Wavell Plan):—१९४५ ई० में वेवल इंगलैंड गया तथा वहां उसने ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के सदस्यों से बातचीत की। महायुद्ध समाप्तप्राय: था तथा इंगलैंड में निर्वाचन की तैयारी हो रही थी। मई के प्रथम सप्ताह में जर्मनी ने आत्म समर्पण कर दिया। जून के महीने में वेवल भारत लौट आया। कांग्रेस के नेतागण छोड़ दिये गए। वेवल ने शिमला में कांग्रेस तथा लीग के नेताओं को अपनी योजना के विषय में वातचीत करने के लिये आमंत्रित किया। शिमला का सम्मेलन असफल रहा।

कैबिनेट मिशन (Cabinet mission):—१९४६ ई० में इंगलैंड के निर्वाचन में मजदूर दल को बहुमत प्राप्त हुआ। अनुदार-दल की हार तथा मजदूर दल की विजय का भारत की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। १९४६ ई० में इंगलैंड से कैबिनेट (मंत्रिमंडल) के तीन सदस्यों—लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा ए० वी० एलेकजेन्डर का मिशन भारत आया। इस मिशन ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों से भेंट की तथा १६ मई १९४६ ई० को अपना निर्णय घोषित किया। यद्यपि सभी राजनीतिक दलों ने इसकी आलोचना की तथापि सभी ने इसका स्वागत भी किया। जुलाई में संविधान सभा के लिये चुनाव हुए परन्तु इसमें मुस्लिम लीग को भारी सफलता नहीं मिली। अतः मुस्लिम लीग ने कैबिनेट-मिशन की योजना को अस्वीकार किया तथा पाकिस्तान प्राप्ति के लिये 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' करने की घोषणा की।

वेवल ने अन्तरिम सरकार (Interim Government) बनाने के लिये दोनों दलों को निमंत्रित किया। जिन्ना ने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। जवाहरलाल

लीग ने जिन्ना को मनाने की चेष्टा की परन्तु जिन्ना अपनी मांगों से न हटा, फलस्वरूप कांग्रेस ने सात व्यक्तियों के नाम दिये जिनमें दो व्यक्ति मुसलमान भी थे। इस प्रकार अन्तरिम सरकार ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

मुस्लिम लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct Action of Muslim League):—१६ अगस्त को मुस्लिम लीग ने बंगाल में प्रत्यक्ष कार्यवाही शुरू की। यह कार्यवाही लूटमार, आग लगाना, सरकारी सम्पत्ति को नष्ट करना तथा और फिर मनुष्यों को भयभीत करने के रूप में था। प्रत्यक्ष कार्यवाही का आधार हिन्दुओं को मारना, उनकी सम्पत्ति लूटना तथा उन्हें इस्लाम दाखिल करना था। वे विवश होकर सब कुछ छोड़कर भाग आये। उस समय बंगाल में सुहरावर्दी मुख्यमंत्री थे। इस नर-संहार में वे शामिल ही रहे। बंगाल की सरकार ने सिद्ध कर दिया कि मुस्लिम लीग संविधानिक तरीकों से पाकिस्तान प्राप्त नहीं कर सकी इसलिये रुष्ट होकर, नर-संहार का सहारा लिया है। इस मार काट की प्रतिक्रिया सारे देश में हुई थी। साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ गया तथा भारत में एक प्रकार का गृह-युद्ध छिड़ गया। मुस्लिम लीग के पास केवल एक ही कार्य-क्रम रह गया--"मारेंगे मर जाएंगे, पाकिस्तान बनायेंगे"। नोआखाली और बिहार के नर-संहार ने गांधी जी को इतना विचलित किया कि जब सारा देश स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तैयार हो रहा था तब वे नोआखाली में अहिंसा के सच्चे सैनिक की भांति शान्ति स्थापना में लगे हुए थे। इस नर-संहार के कुछ दिन बाद मुस्लिम लीग ने भी अन्तरिम सरकार में भाग लिया।

प्रधानमंत्री एटली की घोषणा (Declaration of-Prime Minister Attlee) फरवरी १९४७ ई०। ६ दिसम्बर १९४६ ई० को संविधान सभा की पहली बैठक हुई। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बायकाट किया। फरवरी १९४७ ई० को प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा की कि इंगलैण्ड जून १९४८ ई० तक भारतीय हाथों में सत्ता हस्तान्तरण कर देगा। इस घोषणा के साथ लार्ड वेवेल को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया तथा लार्ड लुई माउन्टबेटन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। मुस्लिम लीग का उपद्रव निरन्तर बढ़ रहा था। कांग्रेस के सामने एक ही रास्ता था—या तो भारत का विभाजन स्वीकार करे अथवा गृह-युद्ध का सामना करे। अन्त में कांग्रेस ने भारत का विभाजन ही स्वीकार किया।

माउन्टबेटन योजना (Mountbatten Plan):—३ जून, १९४७ ई० को माउन्टबेटन ने भारत विभाजन योजना की घोषणा की। इस योजना के अनुसार भारत के दो भाग कर दिए गए—भारत और पाकिस्तान। भारत और पाकिस्तान की भौगोलिक सीमायें निर्धारित की गईं। इसके उपरान्त इंगलैण्ड की संसद में भारतीय स्वतंत्रता विधेयक प्रस्तुत किया गया। विधेयक पास होने पर भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्र बने।

१५ अगस्त १९४७ ई० को भारत स्वतंत्र हुआ। एक सुदीर्घ संघर्ष, बलिदान तथा आत्मत्याग के उपरान्त हमारे देश को स्वाधीनता मिली।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के क्या कारण थे ?

What were the causes of the national movement in India ?

(२) भारत में १८५७ ई० से १९०५ ई० के बीच हुए राष्ट्रीय आन्दोलन का वर्णन कीजिए।

Describe the national movement in India from 1857 to 1905 A. D.

(३) साम्प्रदायिकता का हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

What was the impact of communalism on our national movement ?

(४) भारत ने १९१९ ई० से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किस प्रकार संघर्ष किया ?

How did India struggle for her independence since 1919 A. D. ?

(५) "अहिंसा के पथ पर चल कर ही भारत स्वतंत्रता प्राप्त करेगा" इस कथन के आधार पर, भारतीय स्वतंत्रता के लिये गांधीजी की देन का मूल्यांकन कीजिए।

"Following the path of Ahimsa India will achiev independence" In the light of this statement assess th contribution of Gandhiji towards the independence of ou country.

सामाजिक ज्ञान

द्वितीय खंड

आर्थिक विकास की समस्याएं

PROBLEMS OF ECONOMIC DEVELOPMENT

अध्याय ११

INDUSTRIAL REVOLUTION

औद्योगिक क्रान्ति

१६ वीं शताब्दी में स्पेन आर्थिक क्षेत्रों में योरोप का भाग्य निर्माता था। १७ वीं शताब्दी में हालेण्ड का अपने विनिमय व्यापार के कारण प्रभुत्व था। १८ वीं शताब्दी अपने औद्योगिक, व्यापारिक एवं औपनिवेशिक विकास के कारण फ्रांस का युग था, परन्तु १६ वीं शताब्दी में योरोप के किनारे के इस छोटे से टापू (इंगलैंड) का प्रभुत्व व महत्व विश्वव्यापी हो गया।" —नोवेल्स (Knowles)

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। प्रत्येक देश तथा प्रत्येक युग में कुछ न कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु कुछ परिवर्तन इतने नाटकीय तथा अभूतपूर्व होते हैं कि वे इतिहास में बड़े बड़े अक्षरों में अंकित कर दिये जाते हैं। योरोप तथा विशेषत इंगलैन्ड में अठारहवी शताब्दी के अन्त में इसी प्रकार के कुछ अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। इनको 'औद्योगिक क्रान्ति' (Industrial Revolution) के नाम से पुकारते हैं। उत्पादन के क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों ने वहां की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में एक क्रान्ति ला दी। संक्षेप में औद्योगिक क्रान्ति का अवधि काल सन् १७६० से १८३० तक माना जाता है, परन्तु औद्योगिक क्रान्ति समाप्त नहीं हो गई, वरन् अभी विभिन्न देशों में चालू है। इस काल में इंगलैंण्ड व अन्य योरोपीय देशों में क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन हुए जिन्होंने एक नई सभ्यता का सूत्रपात किया। अतः औद्योगिक क्रान्ति के विस्तृत अध्ययन से पूर्व इङ्गलैंड की क्रान्ति के पूर्व की आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

मध्य युग (Middle Ages):—अधिकांश इतिहासकारों ने औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ १७६० से माना है। इससे पूर्व का काल 'मध्य युग' कहलाता है। इस काल में इंगलैंण्ड व अन्य योरोपीय देश कृषि प्रधान थे। उस समय कृषि सामन्तवादी प्रथा (Feudal System) के अनुसार चलती थी। इंगलैंण्ड में गाँव को 'मेनर' (Manor) के नाम से पुकारा जाता था और गाँव के अधिकारी को मेनर का स्वामी (Lord of the Manor) कहते थे। कृषि समाज में कई वर्ग थे जिनमें कुछ धनी तथा शक्तिशाली एवं कुछ निर्धन व शक्तिहीन थे। इस काल में कृषि के तरीके साधारण, एवं उद्योग धंधे बहुत अविकसित (Undeveloped) अवस्था में थे। गाँव का जीवन सादा था एवं प्रत्येक 'मेनर' आत्म-निर्भर (Self-sufficient) था। उत्पादन अधिकांशतः व्यापार वाणिज्य के लिये न होकर उपभोग के लिये होता था।

शनैः शनैः सामन्तवाद (Feudalism) का पतन होने लगा। सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था बदलने लगी। कृषि के क्षेत्र में बाड़ाबन्दी (Enclosure), तीन खेत

(Three field system) आदि पद्धतियाँ अपनाई गईं। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंगलैण्ड में कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्हें 'कृषि क्रान्ति' Agricultural Revolution) का नाम दिया गया। फसलों के हेरफेर (Rotation of crops) की प्रणाली अपनाई जाने लगी। कृषि का वैज्ञानिकरण हुआ और ज बोने, फसल काटने एवं पशुओं की नसल सुधारने के लिए नए नए तरीके काम में लाए जाने लगे। कृषि क्रांति ने औद्योगिक क्रान्ति की भूमिका तैयार की। इसके फलस्वरूप त्पादन में वृद्धि हुई, व्यापार बढ़ने लगा एवं पूँजी एकत्र होने लगी। वैज्ञानिकरण परिणाम स्वरूप उद्योग धंधों को प्रोत्साहन मिला। इसी काल में इंगलैण्ड के ऊन वस्त्र उद्योगों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। कृषि को प्रोत्साहन देने तथा भूमिपतियो अधिकारों की रक्षा करने के लिये 'अन्न कानून' (Corn Laws) बने। इस प्रकार षि क्रान्ति ने भावी औद्योगिक क्रान्ति का शिलान्यास किया।

औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) का अर्थ:

क्रान्ति शब्द का संक्षेप में अर्थ है, "आधारभूत परिवर्तन।" इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों व क्षेत्रों में किया जाता है। जैसे—राजनीतिक क्रान्ति, र्थनीतिक क्रान्ति, क्षैत्रिक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति आदि। प्रायः क्रान्ति शब्द का अर्थ हिंसात्मक और चमत्कारिक विस्फोटों अथवा खूनी विद्रोहों से लगाया जाता है, जैसे—१७८६ की फ्रांसीसी क्रान्ति (French Revolution) अथवा १६१७ की रूसी क्रान्ति। परन्तु हमारा तात्पर्य यहाँ पर केवल औद्योगिक क्रान्ति से ही है। प्रायः कहा जाता है कि, सर्वप्रथम आरनोल्ड टोयन्बी (Arnold Toynbee) ने १८८४ में "औद्योगिक क्रान्ति" शब्द का प्रयोग किया। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि टोयन्बी के पहिले एक फ्रांसीसी लेखक ब्लान्की ने १८३७ में इस शब्द का प्रयोग किया था।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंगलैण्ड में औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्र में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये, वे इतने मौलिक तथा महत्वपूर्ण थे कि उनको औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा प्रदान की गई। इतिहासकारों में 'क्रान्ति' शब्द के उपयोग पर मतभेद रहा है। कुछ का मत है कि आर्थिक विकास के क्रम में क्रान्ति हो ही नहीं सकती। तथापि अधिकांश लेखक इन अभूतपूर्व परिवर्तनों को क्रान्ति का विशेषण देना ही उचित समझते हैं। इसका कारण यह है कि औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत हुए परिवर्तन एवं सुधार इतने तीव्र एवं असाधारण थे कि उन्होंने इंगलैण्ड ही नहीं अपितु समस्त योरोप में एक आकस्मिक हलचल मचा दी। इसके फलस्वरूप देशों की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओं में महान परिवर्तन हुए और उनकी आर्थिक व राजनैतिक नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। नोवेल्स (Knowels) के अनुसार इस घटना को क्रान्ति इसलिये नहीं कहा जाता है कि जो परिवर्तन हुए वे बहुत

शीघ्रता से हुये, परन्तु इसलिये कहा जाता है कि जो परिवर्तन हुये, वे बहुत महत्वपूर्ण या क्रान्तिकारी थे।

"The effects of these economic changes on the large masses of men and women were so profound and so dramatic in industrial progress and social suffering, that the movement may well be described as revolutionary."

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विश्व ने एक नए युग में प्रवेश किया। मानव जीवन में एक नवीन चेतना एवं जागृति का उदय हुआ। आर्थिक जीवन का सर्वोन्मुखी विकास हुआ। जो सामग्रियाँ अभी तक अमीरों को प्राप्त थी, वे अब साधारण व्यक्तियों को सुलभ हो गईं। नित्य प्रति नए आविष्कारों का जन्म होने लगा। विश्व व्यापार एवं वाणिज्य की आश्चर्यजनक प्रगति के बारे में प्रो० हैमन्ड (Prof. Hammond) ने कहा है—"The vast oceans became the high-ways and by-ways between the doorways of nations."

औद्योगिक क्रान्ति सर्व प्रथम इङ्गलैण्ड में ही क्यों ? (Why first in England)?

प्रायः यह प्रश्न उठता है कि औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इङ्गलैण्ड में ही क्यों हुई जब कि फ्रांस, बेल्जियम आदि देश भी काफी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुके थे? इसके लिये हमें इङ्गलैण्ड की तत्कालीन परिस्थितियों एवं आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्थाओं की ओर ध्यान देना होगा।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण (Causes of the Industrial Revolution)

अब तक के अध्ययन एवं खोजबीन के परिणाम स्वरूप इङ्गलैण्ड में प्रारम्भ औद्योगिक क्रान्ति के निम्नलिखित मुख्य कारण दिये जा सकते हैं:—

(१) उत्तम भौगोलिक स्थिति (Advantages of Geographical location)—उत्तम भौगोलिक स्थिति के कारण इङ्गलेन्ड को कई लाभ हुये हैं। योरोप व अमेरिका के मध्य स्थित इंगलिश चैनल (English Channel) का अधिष्ठाता इङ्गलैण्ड अपनी भौगोलिक स्थिति के लिये अन्य देशों की आंखों में सदा खटकता रहा है। विश्व महायुद्धों में जर्मनी की गीध-दृष्टि सदैव इंगलिश चैनल पर रही। अपनी उत्तम भौगोलिक स्थिति के कारण इंगलैण्ड का सारे संसार से व्यापारिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध बना रहा है और वह अपनी शक्ति बढ़ाने में सफल हुआ।

(२) जलवायु की अनुकूलता (Favourable Climate):—यहाँ का जलवायु समशीतोष्ण है, जिससे श्रमिक सदैव चुस्त व कार्यरत रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु अनुकूल होने के कारण ही यहाँ महीन व उत्तम प्रकार का वस्त्र उद्योग सफल हो सका है।

(३) औद्योगिक विकास की प्रशस्त पृष्ठभूमि (Seeds of Industrial development had been laid):—अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इंगलैण्ड में कृषि क्रान्ति हो चुकी थी। उसका ऊन व वस्त्र उद्योग अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था, जिसके फलस्वरूप विदेशी व्यापार में काफी वृद्धि हो गई थी। घरेलू व कुटीर उद्योग धंधों में पूँजीवाद का प्रादुर्भाव हो चुका था। मशीनों का उपयोग तथा उत्पादन बढ़ रहा था। इंगलैन्ड ने बहुत ही कार्य कुशल और प्रशिक्षित कार्यकर्ता तय्यार कर लिये थे।

(४) विस्तृत बाजार एवं कच्चे माल की उपलब्धि (Availability of wide markets and plenty of raw materials):—इंगलैण्डवासी कुशल व्यवसायी होने के साथ साथ साम्राज्य निर्माता (Empire Builders) भी थे। उन्होंने अपनी कुशल कूटनीति द्वारा अपने साम्राज्य का बहुत विस्तार कर लिया था। समस्त एशियाई एवं अफ्रीकी उपनिवेशों (Colonies) से कच्चा माल (Raw materials) इंगलैण्ड को भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड के पास लोहे तथा कोयले (Iron and coal) का पर्याप्त भंडार था। लोहे व कोयले की खानें पास-पास थीं। इससे विशाल उद्योगों की स्थापना में बहुत सहायता मिली। किन्तु विशाल उद्योग विक्रय क्षेत्र पर ही अवलम्बित होते हैं। भाग्यवश इंगलैण्ड को विस्तृत बाजार प्राप्त थे जिनमें उसकी विभिन्न वस्तुएं बहुत आसानी तथा काफी मात्रा में बिक जाती थीं। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य निरंतर बढ़ता चला जा रहा था और साथ ही साथ इंगलैण्ड के बाजार का क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता था।

(५) पूंजी की प्रचुरता एवं बैंक व्यवसाय का विकास (Abundance of surplus capital and growth of excellent financial institutions):—इंगलैण्ड के ऊन उद्योग व विदेशी व्यापार में विदेशों से प्रचुर सम्पत्ति कमाई थी। अतः पूँजी का कोई अभाव न था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड के बैंकिंग

व्यवसाय ने भारी प्रगति की । दी बैंक ऑफ इंगलैण्ड (The Bank of England) अपने प्रकार का प्रथम बैंक था । इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं ने पूँजी के समुचित विनियोग में बहुत सहायता पहुँचाई जिसके कारण साहसी प्रवृति (Enterprising spirit) के ब्रिटिश व्यापारियों ने नए आर्थिक कार्यों में धन लगाया एवं औद्योगिक क्रांति को तीव्र गति प्रदान की।

(६) सामुद्रिक शक्ति (Maritime Power):—उस काल में वस्तुओं का आयात व निर्यात (Import and export) जलपोतों पर ही निर्भर था। इंगलैण्ड की जहाजी शक्ति उस समय अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अतुलनीय थी। इंगलैण्ड का जहाज निर्माण उद्योग बहुत विकसित अवस्था में था और इंगलैण्ड 'समुद्रों की रानी' (Mistress of the Seas) कहलाता था। इंगलैण्ड का विश्वव्यापी व्यापार इन्हीं जलपोतों की देन था, जिसके कारण ही इंगलैण्ड का औद्योगीकरण बड़ी द्रुतगामी गति से सम्भव हो सका। नोवेल्स (Knowles) के शब्दों में "साधारणतया यह नहीं समझा जाता है कि इंगलैंड के व्यापार को बढ़ाने में अंग्रेज नाविकों का कितना महत्वपूर्ण हाथ था।"

(७) आन्तरिक शांति एवं राजनीतिक सुदृढ़ता (Internal peace and political stability):—उस समय जबकि योरोप के अन्य राष्ट्र नेपोलियन के युद्धों के कारण या अपनी गृह अशान्ति के कारण अपने देश के उत्थान के विषय में कल्पना भी नहीं कर सकते थे, आन्तरिक शान्ति के कारण इंगलैण्ड को अपने भाग्य का निर्माण करने का स्वर्ण अवसर मिल गया, और वह अन्य राष्ट्रों से आगे बढ़ गया। दृढ़ राजनैतिक व्यवस्था होने के कारण पूंजी का पूर्ण विनियोग हुआ एवं सही आर्थिक नीतियाँ अपनाई गईं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से सामाजिक एवं राजनैतिक शांति के वातावरण में इंगलैण्ड का पूर्ण आर्थिक विकास हुआ।

(८) आविष्कार (Inventions):—अठारहवीं शताब्दी के कुछ आविष्कारों ने न केवल इंगलैण्ड के उद्योगों में भारी परिवर्तन किये, अपितु समस्त संसार की उत्पादन प्रणाली में हलचल मचा दी। आविष्कारों का कृषि, उद्योग एवं यातायात पर बहुत लाभकारी सम्मिलित प्रभाव पड़ा। सन् १७६४ (१७६७ ?) में जेम्स हारग्रीव ने स्पिनिंग जेनी (Spinning Jenny) का आविष्कार किया। सन् १७६८ (१७६९ ?) में आर्कराइट ने वाटर फ्रेम (Waterframe) तथा क्राम्पटन ने १७७६ (१७७९ ?) में म्यूल (Mule) का आविष्कार किया। इन मशीनों से कातने में सरलता होगई। सन् १७७३ में जान के (John Kay) ने फ्लाइंग शटल (Flying shuttle) का आविष्कार किया। १८१५ तक कार्टराइट तथा जान्तन के प्रयत्नों से शक्ति चालित करघे (Power loom) का आविष्कार हुआ, जिससे बुनाई सरल होगई। १७६३ में वाट (James Watt) ने स्टीम एंजिन (Steam Engine) निकाल कर

से कारखानों में उपयोग योग्य बना दिया। इन सब आविष्कारों ने उद्योग जगत में एक नवीन चेतना व जागृति का सृजन किया और औद्योगिक क्रान्ति का पथ सरल कर दिया।

(६) थोड़ी जनसंख्या (Population small in reltion to vast markets):—उद्योग धंधों एवं विस्तृत बाजारों के अनुपात में इंगलैण्ड की जनसंख्या कम थी। इससे दो लाभ हुए—एक तो यह कि अधिक उत्पादन के लिये पूँजी एकत्र होती रही और दूसरा, श्रम की बचत के लिये मशीनों का उपयोग किया गया, जिससे उद्योगों की बहुत प्रगति हुई।

(१०) राज्य का सहयोग (Encouragement by the State):—तत्कालीन ब्रिटिश सरकारों ने 'पेटेन्ट का अधिकार' (Patent Rights) देकर नये आविष्कारों को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र व्यापार की नीति (Free trade policy) से उद्योगों एवं विदेशी व्यापार की बहुत उन्नति हुई।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव (Effects of the Industrial Revolution)

"The result was new people, new classes, new policies, new problems and new empires".—Knowles.

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अब तक का इतिहास औद्योगिक क्रान्ति के विभिन्न प्रभावों का साक्षी है। औद्योगिक क्रान्ति ने मनुष्यों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल दिया। देशों के आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक ढाँचों का नया गठन किया गया व नये वर्गों का विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप विकास की जो शृंखला प्रारम्भ हुई वह अभी तक चली आ रही है। नोवेल्स ने ठीक ही कहा है—"औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम हुआ नवीन मानव, नवीन वर्ग, नवीन नीतियां, नवीन समस्याएं एवं नवीन साम्राज्य।"

औद्योगिक क्रान्ति के मुख्य प्रभावों का अध्ययन दो विशिष्ट क्षेत्रों के अन्तर्गत किया जा सकता है—(अ) आर्थिक, एवं (ब) सामाजिक।

आर्थिक प्रभाव (Economic Effects)

(१) नये उद्योगों का जन्म (Brith of new Industries):—औद्योगिक क्रांति के कारण ही इंगलैण्ड में नए नए उद्योगों का जन्म हुआ और बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ खुली। उदाहरणस्वरूप, कोयला उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग, रासायनिक उद्योग, एंजीनियरिंग उद्योग आदि। इन भारी उद्योगों के विकास के कारण अन्य अनेक छोटे पूरक एवं सहायक उद्योगों (Complementary and subsidiary Industries) का भी

स्वाभाविक विकास हुआ। यहाँ तक कि इंगलैण्ड के औद्योगीकरण का प्रभाव अन्य देशों के उद्योग धन्धों पर भी पड़ा, और उन्होंने भी उत्पादन के क्षेत्र में उन्नति की।

(२) बड़े पैमाने पर कृषि (Agriculture on large scale):—जैसे-जैसे उद्योग बढ़ते गए श्रमिक गाँव छोड़कर औद्योगिक क्षेत्रों (Industrial centres) की ओर जाने लगे। भूमि पर जनसंख्या का भार कम होने एवं श्रमिकों की कमी होने के कारण कृषि में मशीनों एवं यन्त्रों का उपयोग प्रारम्भ होने लगा। यह सम्भव होने के लिए बड़े पैमाने पर खेती होना आवश्यक था। अतः खेती विस्तृत पैमाने पर होने लगी जिससे उपज में वृद्धि हुई तथा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

(३) बैंकिंग तथा यातायात में प्रगति (Development of banking and transport):—आर्थिक प्रगति के साथ ही साथ मुद्रा का चलन बढ़ता गया एवं बैंकिंग व्यवसाय की बहुत प्रगति हुई। जैसे जैसे व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ने लगा बैंकिंग एवं बीमा (Insurance) व्यवस्था का विस्तार हुआ। साथ ही साथ यातायात एवं संचार के साधनों की भी प्रगति हुई। इस सबके कारण अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग को काफी प्रोत्साहन मिला।

(४) रहन सहन के स्तर में वृद्धि (Rise in the standard of living):—बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि के साथ २ वस्तुओं के मूल्य भी कम हो गए। परिणामस्वरूप अधिक व्यक्ति अधिक वस्तुओं के उपभोग की क्षमता रखने लगे। ऐसी अवस्था में रहन सहन के स्तर मे वृद्धि स्वाभाविक ही थी। प्रो० हैमन्ड के शब्दों में—"Two centuries ago not one person in a thousand wore stockings; one century ago not one person in five hundred wore them; now not one person in a thousand is without them."

(५) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income):—बढ़ते हुए आन्तरिक उत्पादन के साथ-साथ बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण देश की राष्ट्रीय आय में महान वृद्धि हुई। आर्थिक समृद्धि बढ़ने के साथ ही इंगलैण्ड का योरोप के देशों की अर्थ व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा।

(६) श्रम-विभाजन एवं रोजगार (Division of labour and Employment):—औद्योगीकरण के साथ साथ श्रम विभाजन (Division of labour) के लाभ मिलने लगे। उत्पादन की प्रत्येक शाखा का कार्य अधिक कुशलता एवं मितव्ययता (Economy) से होने लगा। साथ ही साथ बढ़ती हुई आबादी को भी रोजगार मिलने लगा तथा लोगों की आर्थिक अवस्था में सुधार हुआ।

(७) श्रमिकों का शोषण (Exploitation of labour):—औद्योगीकरण के साथ साथ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalism) की जड़ें जमने लगीं। पूँजीपति

मालिक बन बैठे और श्रमिक दास रह गये। अपने पर आश्रित श्रमिकों का पूँजीपतियों ने शोषण प्रारम्भ किया। वे उनसे अत्यधिक समय काम लेते और बहुत कम मजदूरी देते थे। श्रमिकों की दयनीय दशा के बारे में श्री टामस (Thomas) ने लिखा है, "Labourers became mere attendants on machines, propertyless, moneyless and homeless."

(८) औद्योगिक संघर्ष (Industrial strifes):—औद्योगिक क्रांति के विकास के अन्तिम चरणों में मालिक–मजदूर झगड़े शुरु हो गए। हड़तालें (Strikes), तोड़फोड़ एवं तालेबन्दी (Lock out) के कारण उत्पादन की हानि एवं आर्थिक व्यवस्था में गड़बड़ होने लगी।

(९) श्रमिक संघों (Trade Unions) का प्रादुर्भाव:—मालिकों से लड़ने के लिये श्रमिकों ने अपना गठन किया और श्रमिक संघों (Trade Unions) की स्थापना की। अब नियमित रूप से मोर्चाबन्दी होकर अधिकारों एवं वेतन के लिये झगड़े होने लगे।

(१०) संयुक्त प्रमंडलों का विकास (Growth of joint stock companies):—यह अनुभव किया गया कि बड़े पैमाने पर उत्पत्ति के लिये बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती थी। कोई भी अकेला व्यक्ति इतनी बड़ी धनराशि नहीं जुटा सकता था। अतः संयुक्त प्रमंडलों का जन्म हुआ जिनकी पूँजी विभिन्न अंशों (Shares) में विभक्त थी, एवं कई व्यक्ति मिलकर इसकी पूर्ति करते थे। इस प्रकार बड़े उद्योगों के लिये पूँजी की समस्या समाप्त हो गई एवं औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिला।

(ब) सामाजिक प्रभाव (Social Effects)

(१) श्रमिकों की स्वतंत्रता का हनन (Loss of freedom and Independence of labourers):—औद्योगीकरण के फलस्वरूप श्रमिक स्वतंत्र न रहकर उद्योगपतियों पर आश्रित हो गया। अब उसे कारखानों की चाहरदीवारी में बंद होकर एक दास के रूप में मशीन के समान कार्य करना पड़ता था। इसके आगे चलकर कई सामाजिक कुपरिणाम निकले।

(२) जनसंख्या में वृद्धि (Increase in population):—सन् १८०१ तथा १८५१ के बीच में इंगलैंड की जनसंख्या दुगनी हो गई। इसका कारण था उद्योगों में अधिक श्रमिकों की मांग तथा मनुष्यों की बढ़ती आय जिससे वे अधिक बच्चों को पाल सकते थे। इसके अतिरिक्त शहरों में रहने वालों की संख्या बढ़ने लगी तथा दक्षिण वेल्स (South Wales) एवं मिडलैंड (Mid Lands) के कोयला तथा लोहा क्षेत्रों में आबादी घनी हो गई।

(३) पूँजीपति वर्ग का उदय (Growth of Capitalists):—औद्योगिक क्रांति के विकास के साथ-साथ पूँजीपति वर्ग भी बढ़ने लगा। मजदूरों पर

अत्याचार बढ़ने लगे तथा समाज में वर्ग (Groups) बनने लगे। पूंजीपति ही समाज के नेता बन गए तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये सब प्रकार के प्रयत्न करने लगे। सामाजिक शान्ति एवं सहयोग की भावना को इससे धक्का लगा, एवं सामाजिक विषमताएं बढ़ने लगी। वर्ग-विद्वेष (Class Conflicts) का जन्म हुआ तथा घृणा और भय का प्रादुर्भाव हुआ।

(४) सामाजिक समृद्धि:—यद्यपि वर्ग संघर्ष से सामाजिक जीवन में अशांति फैली तथापि साधारणतया सामाजिक व आर्थिक दशा में काफी सुधार हुआ। रहन सहन के स्तर बढ़ने के साथ साथ एक नई सभ्यता का जन्म हुआ, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ा, एवं सांस्कृतिक आदान प्रदान हुआ।

(५) शहरों की समस्या (Problem of cities):—औद्योगीकरण बढ़ने के साथ ही शहरों की समस्या भयंकर रूप धारण करने लगी। स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की समस्या सामने आई। घनी आबादी होने के कारण कई प्रकार की सामाजिक एवं नैतिक बुराइयों का जन्म हुआ। मकानों की समस्या भी सामने आई।

(६) कृषि प्रधान से औद्योगिक राष्ट्र:—औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैंड का स्वरूप ही बदल दिया। रहन-सहन, बोलचाल एवं साधारण व्यवहार के तरीके एवं नियम बदल गए। जीवन स्थिर एवं संयमित हो गया। रहने की सुविधाएं बढ़ने के साथ साहित्य क्षेत्र में भी कार्य हुआ। एक नए प्रकार का जीवन शुरू हुआ जिसके प्रत्येक क्षण में यंत्रों का उपयोग प्रारम्भ हो गया।

(७) संयुक्त परिवार प्रथा का विच्छेदन (Break up of Joint families):—उद्योग धन्धों के बढ़ने एवं विस्तृत क्षेत्र में स्थापित होने के बाद संयुक्त परिवार छिन्न भिन्न हो गए, तथा स्वावलम्बन का सिद्धान्त माना जाने लगा। परिवार का प्रत्येक सदस्य स्वतंत्र रूप से रहने लगा। इस प्रकार व्यापार की काफी प्रगति हुई तथा निजि व्यक्तित्व का विकास हुआ।

इन सबके अतिरिक्त इंग्लैंड का राजनैतिक महत्व भी बहुत बढ़ गया। उसने अपनी एक अद्भुत शक्ति के बल पर इंग्लैंड एक महान साम्राज्य में परिवर्तित हो गया—एक ऐसा साम्राज्य जिसमें सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता था। इंग्लैंड की राजनैतिक व्यवस्था का संसार के अन्य देशों पर बहुत गहन प्रभाव पड़ा। जिसने इन देशों को एक नई प्रकार की औद्योगिक सभ्यता का प्रसार किया, एवं बौद्धिक वैभव का जन्म हुआ।

अन्त इंग्लैण्ड का छोटा सा द्वीप एक प्रभुत्वशाली राष्ट्र बन गया। यह [illegible] है, क्योंकि संसार का [illegible] भाग निर्भर हो गया, और उसी दिन के [illegible] बल पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व जमा लिया।

(३) बड़े पैमाने पर वृद्धि ।
(४) बैंकिंग तथा यातायात में प्रगति ।
(५) रहन सहन के स्तर में वृद्धि ।
(६) राष्ट्रीय आय में वृद्धि ।
(७) श्रम विभाजन एवं रोजगार ।
(८) श्रमिकों का शोषण ।
(९) औद्योगिक संघर्ष ।
(१०) श्रमिक संघों का प्रादुर्भाव ।
(११) संयुक्त प्रमंडलों का विकास ।

(ब) सामाजिक प्रभाव—

(१) श्रमिकों की स्वतंत्रता का हनन ।
(२) आबादी में वृद्धि ।
(३) पूँजीपति वर्ग का उदय ।
(४) सामाजिक समृद्धि ।
(५) शहरों की समस्या ।
(६) कृषि प्रधान से औद्योगिक राष्ट्र ।
(७) संयुक्त परिवार प्रथा का विच्छेदन ।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंगलैंड तथा योरोप के देशों का राज महत्व बढ़ गया । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आश्चर्यजनक प्रगति हुई, एवं इसके द्वारा के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ । रहन सहन के स्तर में सुधार हुआ । यह इंग के लिये वरदान सिद्ध हुई ।

औद्योगिक क्रांति का दूसरा चरण अब अपने विकास की चरम सीमा पर आणविक शक्ति के शान्ति पूर्ण उपयोगों ने एक नये युग का सूत्रपात किया है । संसा अन्य पिछड़े देश भी अब औद्योगिक क्रांति लाने के लिये संलग्न हैं ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. Give a brief account of the industrial revolutior How did it affect the people of England ?

औद्योगिक क्रांति का संक्षेप में विवरण दीजिये । इसका इंगलैंड के निवासि पर क्या प्रभाव पड़ा ?

2. What do you understand by industri revolution ? What were its causes ? Why did it occur England first ?

औद्योगिक क्रांति से आप क्या समझते हैं ? इसके क्या कारण थे ? इसका प्रारम्भ इंग्लैण्ड में ही क्यों हुआ ?

3. Describle fully the effects of the industrial Revolution.

औद्योगिक क्रांति के प्रभाव विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ।

4 "The Industrial Revolution made England the leader of the world in the economic and the political field." Comment.

"औद्योगिक क्रांति ने इंगलैंएड को विश्व के आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में नेता बना दिया।" इस कथन की आलोचना कीजिये ।

अध्याय १२

CAPITALISM

पूँजीवाद

"पूँजीवाद एक ऐसी आर्थिक संगठन की प्रणाली है जिसमें मनुष्य-कृत व प्रकृति-कृत पूँजी का निजी स्वामित्व हो व उसका लाभ के लिये प्रयोग किया जाता हो।"

—प्रो० लॉक्स और हूट

आर्थिक प्रणालियों (Economic Systems) में पूँजीवाद का महत्व स्थान है। संसार भर में पूँजीवाद की अच्छाइयों व बुराइयों, तथा इसके भविष्य के संबंध में वादविवाद काफी समय से चला आ रहा है। विशेषतया यूरोप के देशों व अमेरिका में पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली पायी जाती है और इन सभी देशों का विश्वास है कि पूँजीवाद ही सबसे श्रेष्ट अर्थ व्यवस्था है। परन्तु एशिया के देशों—विशेषतया चीन, भारत इत्यादि का मत समाजवाद (Socialism) के समर्थन में है। इसके पूर्व कि हम पूँजीवाद की अच्छाइयों व बुराइयों के संबंध में विचार करें, पूँजीवाद के संबंध में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

पूँजीवाद की परिभाषा (Definition of Capitalism)

प्रो० मेकराइट (Prof. D. Macwright) के अनुसार—"पूँजीवाद एक ऐसी प्रणाली है जिसमे आर्थिक जीवन का एक बहुत बड़ा भाग और विशेषतया नया विनियोग निजी (गैर सरकारी) इकाइयों द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में लाभ प्राप्ति की आशा से किया जाता है।"

इसी प्रकार प्रो० पीगू (A. C. Pigou) ने पूँजीवाद की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—"एक पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था या पूँजीवादी प्रणाली वह है जिसमें उत्पादक साधनों (Factors of production) का एक बहुत बड़ा भाग पूँजीवादी उद्योगों में लगा हो, अर्थात् उन उद्योगों मे जिनमें कि उत्पादन के भौतिक साधन निजी व्यक्तियों के स्वयं के होते हैं या उनसे किराये पर लिये हुए होते है, और उन्हीं की आज्ञा पर उनका प्रयोग उनसे उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं का लाभ से बेचने के उद्देश्य से किया जाता हो।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूँजीवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधन (Means of Production) निजी व्यक्तियों के स्वामित्व में होते हैं और साथ ही वे उनका प्रयोग प्रतियोगिता की दशा में लाभ की प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य से कर सकते हैं।

पूँजीवाद के मुख्य २ लक्षण (Out standing features of Capitalism)

जैसे २ पूँजीवाद का विकास होता गया वैसे ही वैसे पूँजीवाद के भिन्न २ लक्षण

हमारे समक्ष आते गये । उपर्युक्त परिभाषाओं से भी कुछ लक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । पूँजीवाद के कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) जायदाद का निजी स्वामित्व (Private property):—पूँजीवाद का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण जायदाद का निजी स्वामित्व है । अर्थात, जैसे भी मनुष्यों ने धन, ज़मीन, जायदाद इत्यादि की प्राप्ति करली है सरकार को उससे कोई आपत्ति नहीं और उन सब को उसके प्रयोग के संबंध में पूर्ण स्वतंत्रता है । वे जब चाहें, जिस रूप मे चाहे प्रयोग कर सकते हैं ।

(२) उत्तराधिकार का अधिकार (Right of Inheritence):—पूँजीवाद में जायदाद का निजी स्वामित्व तो होता ही है साथ ही जायदाद, जिसकी पूँजीवाद में अत्यन्त आवश्यकता है, सुरक्षा के लिये मनुष्यों को उत्तराधिकार का पूर्ण अधिकार दिया होता है । अर्थात, किसी मनुष्य की मृत्यु होने पर उसके पुत्र को अपने पिता की जायदाद का उत्तराधिकारी माना जाता है । इस प्रकार 'जायदाद' रूपी संस्था की रक्षा की जाती है । और 'निजी स्वामित्व जायदाद प्रथा' (Institution of Private Property) और अधिक जटिल होता जाता है ।

(३) आर्थिक स्वतंत्रता (Economic freedom):—पूँजीवाद में प्रत्येक मनुष्य को आर्थिक स्वतंत्रता होती है । अर्थात जैसे भी चाहे पूँजीपति अपनी पूँजी का प्रयोग कर सकते हैं या श्रमिक अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार की नौकरी ढूँढ़ सकते है । *निर्णय करने में प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्रता होती है ।* उन पर सरकार का या और किसी का दबाव नहीं होता जैसा कि साम्यवाद में पाया जाता है ।

(४) लाभ उद्देश्य (Profit Motive):—पूँजीवाद में जितनी भी आर्थिक क्रियाऐं की जाती हैं उन सब मे मुख्य उद्देश्य लाभ की प्राप्ति होता है । समाज कल्याण (Social welfare) की ओर कोइ ध्यान नहीं दिया जाता । पूँजीपति, उद्योगपति, उद्यमकर्ता इत्यादि सब ही का उद्देश्य लाभ की प्राप्ति होना है । और इसी कारण उनमें प्रतियोगिता (Competition) भी पायी जाती है जो पूँजीवाद की एक मुख्य विशेषता है ।

(५) उद्यमकर्ता का महत्वपूर्ण स्थान:—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में उद्यमकर्ता ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य करता है । वह उद्योग का कप्तान (Captain of Industry) होता है और केवल उसी वस्तु का उत्पादन करता है जिसे वह लाभ के दृष्टिकोण से लाभदायक समझता है, न कि समाज के दृष्टिकोण से ।

(६) समाज का विभाजन (Divisions in Society):—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है जिसमें समाज का स्वयं ही विभाजन हो जाता है । समाज मुख्यतः दो वर्गों में बंट जाता है—पूँजीपति और श्रमिक अथवा धनी और [illegible]

(The Haves and the Have nots) यह प्रणाली ही ऐसी होती है कि जैसे जैसा इसका विकास होता है समाज का विभाजन भी उतना ही गहरा होता जाता है।

(७) कुछ ही मनुष्यों के हाथ में आर्थिक प्रबंध का केन्द्रीयकरण (Concentration of economic power and managerial ability in the hands of a few):—जैसे २ समाज का विभाजन होता है आर्थिक प्रबंध कम से कम मनुष्यों के हाथों में केन्द्रित होता जाता है। श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाती है और उद्योगपति व पूँजीपति अधिक धनवान व प्रबंधक होते जाते हैं। अतः धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते जाते हैं।

पूँजीवाद का विकास (Growth of Capitalism):—पूँजीवाद के विकास के लिये हमें पश्चिमी देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टिपात करना होगा। पूँजीवाद का प्रारम्भ इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) से माना जाता है। जिसका समय, प्रो० साउथगेट (Prof. Southgate) के अनुसार, १७७५ व १८२५ के बीच का है। इसके पहले इंग्लैंड कृषि प्रधान देश था जिसमें घू स्वामि पद्धति पायी जाती थी। औद्योगिक क्रांति के पश्चात बड़ी २ फैक्टरियों व उद्योगों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उद्योगपति, पूँजीपति, उद्यमकर्ता, श्रमिक इत्यादि वर्ग बनने लगे और स्वतः ही संसार ने पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के दर्शन किये।

परन्तु औद्योगिक क्रांति केवल इंग्लैंड तक ही सीमित न रही। धीरे धीरे अमेरिका, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, स्पेन, पुर्तगाल इत्यादि देशों ने भी इंग्लैंड की आर्थिक प्रणाली का सहारा लिया और तब वहां पर भी औद्योगिक क्रांति हुई, और इंग्लैंड के समान वहां भी धीरे २ पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था की स्थापना हो गयी।

अतः औद्योगिक क्रांति को पूँजीवाद का जन्मदाता कहा जा सकता है।

पूँजीवाद के गुण (Merits of Capitalism)

(१) स्वयंचालकता (Automatic):—पूँजीवाद का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसमें प्रत्येक आर्थिक क्रिया अपने आप ही होती चली जाती है क्योंकि इस प्रणाली का आधार "स्वयंचालक-कीमत यंत्र-रचना" (Automatic Price Mechanism) है।

(२) लचीलापन (Elasticity):—आधुनिक पूँजीवाद पहले के पूँजीवाद से बिल्कुल भिन्न है। इसने तो [illegible] का सामना किया और समय के अनुसार इसमें परिवर्तन हुए। पूँजीवाद ने आवश्यक स्थितियों के समय अपने आपको काफी परिवर्तित कर लिया है जो इसके लचीलेपन का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

(३) साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग (Fullest use of resources)—. . . [illegible] के कारण से अधिक से अधिक लाभ की प्राप्ति की आशा से

उत्पादक साधनों का प्रतिस्थापन के नियम (Law of Substitution) के अनुसार करता है और इसीलिये उनका सर्वोत्तम प्रयोग होता है।

(४) यांत्रिक उन्नति (Technological Progress):—पूंजीवाद में प्रत्येक उद्यमकर्त्ता उत्पादन संबंधी खोज सबसे पहले करना चाहता है ताकि अन्य प्रतियोगियों से अधिक मात्रा में लाभ कमा सके। इसके लिये बड़े २ उद्योगपति 'अन्वेषण विभाग' (Research Departments) की स्थापना करते हैं। अतः इन सबसे तेजी के साथ तक्नीकि संबंधी प्रगति (Technical progress) होती रहती है।

(५) मनुष्यों के जीवन स्तर में वृद्धि (Rise in the standard of living):—पूंजीवाद में उत्पादकता व राष्ट्रीय आय (National Income) के बढ़ने से मनुष्यों के जीवन स्तर में वृद्धि होती है। १९४० की कीमतों के आधार पर अमेरिका की प्रति व्यक्ति औसत आय (Per Capita Income) १८५० में ६०० और १९४० में ६००० हो गयी। १९४० में ४० मिलियन रेडियो सेट्स, २२ मिलियन घरों में बिजली की उत्तियां, इत्यादि पायी गयीं। अर्थात् पूंजीवाद में मनुष्यों का जीवन स्तर तेजी से ऊंचा उठता जाता है।

(६) आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक स्वतंत्रता (Laissez faire Policy of Government):—सरकार मनुष्यों की किसी भी प्रकार की क्रियाओं में हस्तक्षेप (Interfere) नहीं करती। वे सब प्रतियोगिता में लाभ की आशा से सब काम स्वयं ही करते चले जाते हैं जबकि साम्यवादी (Communistic) या समाजवादी (Socialistic) अर्थ व्यवस्था में सरकार को पग २ पर निर्णय देने पड़ते हैं। इस प्रकार मनुष्यों को आर्थिक, राजनीतिक, व सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है।

सरकार के उत्तरदायित्व बहुत कम:—पूंजीवाद, स्वयंचालक, व लचीला होता है। अतः सरकार को अर्थ व्यवस्था के संबंध में कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ती। सभी काम अपने आप (Automatically) ठीक प्रकार से होते चले जाते हैं। परन्तु समाजवाद व साम्यवाद में सरकार के उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाते हैं क्योंकि इन अर्थव्यवस्थाओं में स्वयं-चालित-कीमत-रचना-यंत्र को तोड़ दिया जाता है।

पूंजीवाद के दोष (Demerits of Capitalism)

(१) आर्थिक असमानता (Economic Inequalities):—पूंजीवाद का सबसे प्रथम दोष, जो पूंजीवाद के विरोधियों ने बतलाया है, यह है कि यह आर्थिक प्रणाली अपने आप ही आर्थिक असमानता को जन्म देती है। अर्थात इसमें अमीर और भी अधिक अमीर और निर्धन और भी अधिक निर्धन होते चले जाते हैं (The rich become richer and the Poor become poorer)। गरीब अधिकतर श्रमिक होते हैं जिनके पास - अपना श्रम बेचने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता ' अमीर जायदाद के मालिक होते हैं जिनकी सम्पत्ति दिन पर दिन बढ़ती जाती है।

(२) परोपजीविता (Parasitism):—परोपजीविता भी पूंजीवाद का बड़ा दोष है। इस प्रणाली में मनुष्यों की एक बड़ी संख्या बिना कुछ काम किये जीविका की प्राप्ति करती चली जाती है। इनमें विशेषतया पूंजीपति (Capitalists भूमिपति (Landlords) इत्यादि आते हैं जो ब्याज व लगान पर अपना जी विलासिता में व्यतीत करते हैं।

(३) उचित व संतुलित (Balanced) अर्थव्यवस्था का अभाव:—पूंजीव का आधार 'स्वयंचालक-कीमत-यंत्र-रचना (Automatic Price Mechanism) जिसका तात्पर्य है कि प्रणाली पूर्ण रूप से स्वतंत्र होने पर ठीक प्रकार से कार्य करती च जायेगी। परन्तु वास्तव में यह विचार गलत सिद्ध कर दिया गया है और इसीलि यदि प्रणाली में सरकार समय २ पर आवश्यकतानुसार सुधार न करे तो व्यापार चक्र व अन्य कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं जिससे सभी वर्ग के लोगों को हानि पहुँचती है।

(४) पूँजीवाद की सामाजिक लागत (Social cost of Capitalism):—निजी व्यक्तियों के हाथ में उद्योग ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पाते और उनकी लागत के रूप में समाज को कई लागतें भुगतनी पड़ती हैं। ये लागतें औद्योगिक बीमारियों, चक्रवत बेकारी (Cyclical unemployment), औद्योगिक टक्करें (conflicts and clashes), गंदगी, घुंआधार व अस्वस्थ वातावरण के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। इसे प्रो० पीगू ने पूँजीवाद का दिवालियापन (Bankruptcy of capitalism) का नाम दिया है।

(५) असंतुलित विकास (Unbalanced growth)—पूँजीवाद में निजी व्यक्ति स्वतंत्रता से प्राकृतिक साधनों का अपने लाभ के उद्देश्य से प्रयोग करतेचले जाते हैं जिसके अनुसार देश का संतुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाता और यह दीर्घकाल में बहुत हानिकारक सिद्ध होता है।

(६) औद्योगिक शांति का अभाव (Absence of Industrial peace)—पूँजीवाद में श्रमिक लगातार उद्योगपतियों के विरुद्ध श्रमिक संघ (Trade Unions) का सहारा लेकर अपनी मांगें करते रहते हैं और इनके मनवाने के लिये हड़ताल (Strikes) इत्यादि का सहारा लेते रहते हैं। इसके विरुद्ध उद्योगपति भी दमन नीति, पुलिस, तालाबंदी (Lock out) का सहारा लेते हैं। इस प्रकार पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में औद्योगिक शांति का अभाव रहता है।

(७) एकाधिकार (Monopoly) का विकास—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली का आधार स्वयं प्रतियोगिता (Competition) है जिसमें सरकारी हस्तक्षेप हानिकारक समझा जाता है। परन्तु अमेरिका जैसे पूँजीवादी देशों के अनुभव ने बता दिया है कि पूँजीवाद में स्वतः ही एकाधिकार इकाइयों (Monopolistic Units) का

विकास होता जाता है जो प्रतियोगिता के विरुद्ध होकर उपभोक्ताओं व श्रमिक के लिये भी हानिकारक सिद्ध होता है।

(८) कल्याणकारी (Welfare) उद्देश्यों का अभाव—यहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने निजी लाभ में व्यस्त रहता है और समाज की ओर कोई ध्यान ही नहीं दे पाता जिसके कारण से इस प्रणाली में कल्याणकारी उद्देश्यों का सर्वथा अभाव ही बना रहता है।

(९) बेकारी (Unemployment)—पूँजीवाद में बेकारी की समस्या लगातार ही बनी रहती है और यह प्रणाली प्रत्येक इच्छुक मनुष्य को काम देने में असमर्थ रहती है। प्रत्येक समय देश में हजारों व लाखों की संख्या में मनुष्य बेकार रहते हैं।

(१०) साम्राज्यवाद (Imperialism):—प्रो० मारिस डॉब (Prof. Maurice Dobb) के अनुसार पूँजीवाद ही साम्राज्यवाद के विकास के कारण बना। इसी प्रणाली में वस्तुओं के अत्यधिक उत्पादन के कारण उन्हें विदेशों में बाजार (markets) खोजने पड़े और धीरे धीरे २ समस्त विश्व को साम्राज्यों में विभाजन हो गया।

पूँजीवाद का भविष्य (Future of capitalism)

उपर्युक्त दोषों के आधार पर बहुत से अर्थ शास्त्रियों का विचार है कि पूँजीवाद का भविष्य निराशा पूर्ण है और यह अधिक समय तक नहीं चल सकेगा। इसमें व्यापार चक्रों (Economic crises) या श्रमिकों के द्वारा उपद्रव या और किसी रूप में एक महान संकट उपस्थित होगा जिससे पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली वाले देश नष्ट हो जायेंगे और समाजवाद की स्थापना होगी। इस प्रकार का विचार विशेषतया कार्ल मार्क्स (Karl Marx) व उसके अनुयायियों का है। इस प्रकार के विचारों ने पूँजीवादी देशों को सतर्क कर दिया है और वे पूँजीवाद में सुधार करने के उद्देश्य से सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा इन दोषों को दूर कर पूँजीवाद को अमर करने का प्रयास कर रहे हैं। कुछ भी हो पूँजीवाद जिस का प्रतिष्ठित अर्थ शास्त्रियों ने वर्णन किया आज कल शुद्ध रूप में नहीं पाया जाता है और समाजवादी तत्व (सरकारी हस्तक्षेप के रूप में) अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश में भी पाये जाते हैं और इन्हीं सुधारों के आधार पर पूँजीवाद जीवित रह सकेगा।

अध्याय सार

पूँजीवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधन निजी व्यक्तियों के हाथ में होते हैं, सरकार के हस्तक्षेप का अभाव रहता है और साथ ही मनुष्य अपने साधनों का प्रयोग लाभ की प्राप्ति के लिये स्वतंत्रता से कर सकते हैं।

पूँजीवाद के मुख्य लक्षण:—जायदाद का निजी स्वामित्व, उत्तराधिकार का अधिकार, आर्थिक स्वतंत्रता, लाभ का उद्देश्य, उद्यमकर्ता का मुख्य पार्ट समाज का विभाजन, तथा कुछ ही मनुष्यों के हाथों में आर्थिक प्रबंध का केन्द्रीयकरण।

पूँजीवाद के गुण (लाभ):—स्वयंचालकता, लचीलापन, साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग, यांत्रिक उन्नति, मनुष्यों के जीवन स्तर में वृद्धि, आर्थिक, सामाजिक, व राजनीतिक स्वतंत्रता, तथा सरकार के उत्तरदायित्व बहुत कम।

पूँजीवाद के दोष (हानियाँ):—आर्थिक असमानता, परोपजीविता, उचित व संतुलित व्यवस्था का अभाव, असंतुलित विकास, पूँजीवाद की सामाजिक व औद्योगिक शांति का अभाव, एकाधिकार का विकास, कल्याणकारी उद्देश्यों का अ बेकारी तथा साम्राज्यवाद आदि पूँजीवाद की हानियाँ हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. पूँजीवाद का क्या अर्थ है? इसका कैसे उदय हुआ?
What is meant by Capitalism? How did it origina

२. पूँजीवाद की विशेषताएं समझा कर लिखिये।
Describe the characteristics of Capitalism.

३. पूँजीवाद के गुण-दोषों का वर्णन कीजिये।
Explain the merits and demerits of Capitalism.

४. पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था पर एक लेख लिखिये।
Write a note on capitalistic system of economy.

अध्याय १३

SOCIALISM

समाजवाद

"इसी प्रकार की और दूसरी प्रणालियों की तुलना में समाजवाद अत्यंत उलझा हुआ और संभ्रम है जिसे समझना बहुत कठिन है।" —ए० शॉडवेल

अधिकांश अर्थशास्त्रियों व राजनीतिज्ञों का मत है कि पूंजीवाद के दिन अब समाप्त हो चुके हैं और अब संसार के प्रत्येक कोने में समाजवाद ही देखने को मिलेगा। आधे से अधिक संसार समाजवादी हो चुका है जिसमें विशेषतया चीन, रूस, भारत इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। साथ ही रूस और चीन की आर्थिक विकास की गति ने अर्ध-विकसित देशों को बहुत ही प्रभावित किया है और वे भी समाजवाद की ओर ही आकृष्ट होते दीख पड़ते हैं। तात्पर्य यह है कि समाजवाद भविष्य की आर्थिक प्रणाली है।

समाजवाद की परिभाषा

प्रो० सिडनी वेब (Prof. Sydney Webb) के अनुसार:—"समाजवाद का मुख्य लक्षण यह है कि उद्योग व सेवाएँ और उत्पादन के साधन निजी व्यक्तियों के स्वामित्व में नहीं होने चाहिए। साथ ही औद्योगिक व सामाजिक शासन की व्यवस्था निजी लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं होनी चाहिए।"

इसी प्रकार प्रो० एच० डी० डिकेन्सन (Prof. H. D. Dickenson) ने भी समाजवाद की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है:—"समाजवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के भौतिक साधन, किसी साधारण आर्थिक योजना के अनुसार समाज (Community) के स्वामित्व में होते हैं और सभी सदस्य इस प्रकार के समाजवादी आयोजित उत्पादन के परिणामों में समानता के आधार पर लाभ के अधिकारी होते हैं।"

प्रो० मारिस डॉब (Prof. Maurice Dobb) ने समाजवाद की परिभाषा बड़े सुंदर शब्दों में व्यक्त की है—"समाजवाद का प्रधान लक्षण वर्ग सम्बंध, जो कि पूंजीवादी उत्पादन का आधार है, संपत्ति वर्ग का नाश व पूंजी व भूमि के समाजीकरण, के द्वारा समाप्ति में ही निहित है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजवाद पूंजीवाद की तुलना में पूर्णतया भिन्न है। समाजवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधन (Means of Production) समाज के स्वामित्व में होते हैं। यहां निजी लाभ के उद्देश्य से उत्पादन नहीं पाया जाता और नहीं यहां

समान्त वर्गों (Groups) में विभाजित होता है। सरकारी हस्तक्षेप प्रत्येक आर्थिक क्रिया में पाया जाता है।

समाजवाद के मुख्य लक्षण
(Fundamental characteristics of Socialism)

(१) उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व (Social or State ownership of the means of production)—समाजवाद का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व है। पूँजीवाद में इन साधनों का निजी स्वामित्व होता है और जिस कारण इसे वर्ग समस्या को गहन करने के लिये दोषी ठहराया गया है। इसलिये समाजवाद के समर्थकों का सबसे पहला शिकार यही है। सामाजिक स्वामित्व का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ को समाप्त करके सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना है।

(२) सरकारी उद्योग:—पूँजीवाद में निजी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उद्योगों की स्थापना कर सकते हैं परन्तु समाजवाद में यह स्वतंत्रता नहीं होती। साथ ही सभी उद्योग सरकार के आधिपत्य में होते हैं, क्योंकि समाजवादियों का विचार है कि सरकार ही समाज के व श्रमिकों के हित में कार्य कर सकती है।

(३) सरकारी प्रभुत्व श्रेष्ठ:—समाजवाद के समर्थकों का विचार है कि पूँजीवाद में निजी व्यक्ति समाज का पूरी तरह ध्यान नहीं रख पाता और वह अपने स्वार्थ हेतु कभी कभी ऐसे कार्य भी कर देता है जिससे समाज को हानि पहुँचने की संभावना रहती है। इसीलिये समाजवाद में निजी मनुष्य की श्रेष्ठता का अंत कर दिया जाता है और सभी प्रकार के आर्थिक कार्यों में सरकार का प्रभुत्व श्रेष्ठ रखा जाता है।

(४) आर्थिक नियोजन:—पूँजीवाद में आर्थिक विकास की गति अधिक तीव्र नहीं होती और साथ ही वहाँ देश का संतुलित विकास (Balanced development) नहीं होता। इसलिये समाजवाद में संतुलित व तीव्र विकास की प्राप्ति के लिये आर्थिक नियोजन (Economic planning) का सहारा लिया जाता है। नियोजन की सफलता का प्रत्यक्ष उदाहरण रूस व चीन का आर्थिक विकास है।

(५) आर्थिक समानता पर बल:—पूँजीवाद का प्रमुख दोष समाज में धन का असमान वितरण है। इसी के फलस्वरूप वर्ग संघर्ष बढ़ता है। समाजवाद का प्रमुख ध्येय है समाज में उत्पादित धन राशि का समान वितरण। यह आर्थिक समानता (Economic equality) पर विशेष बल देता है जिससे सामाजिक असमानता का निराकरण हो सके तथा सबको समानता का मानवीय अधिकार मिले।

समाजवाद के गुण (Merits of Socialism)

समाजवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली मानी जाती है जिसने संसार के सभी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया। इस आकर्षण का विशेष कारण पूँजीवाद के दोष और साथ

र्थशास्त्रियों का विचार कि समाजवाद में ये दोष अपने आप दूर हो जाते हैं। संक्षेप में
ाजवाद के लाभ निम्नलिखित हैं:—

(१) संतुलित विकास (Balanced development):—समाजवाद में
स्वंचालक-मूल्य-रचना-यंत्र (Automatic price mechanism) को समाप्त करके
श के विकास के लिये आर्थिक नियोजन का सहारा लिया जाता है। इसमें देश का तीव्र
संतुलित विकास होता है।

(२) व्यापार चक्रों (Trade cycles) का अभाव:—पूँजीवाद में बहुत बड़ा
ोष व्यापार चक्र (Trade cycles) है जो कि समाज पर बहुत बुरे प्रभाव डालते हैं।
माजवादी अर्थ-व्यवस्था में इनका नाश कर दिया जाता है। अर्थात्, सरकार सभी ओर
यान रखकर इन व्यापार चक्रों को यदि पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाती तो कम से कम
उनकी तीव्रता को अवश्य कम कर देती है।

(३) बेकारी का निवारण:—समाजवाद में आर्थिक नियोजन अत्यंत ही
आवश्यक है और उसके बिना कोई भी काम नहीं होता। नियोजन के मुख्य उद्देश्य-
राष्ट्रीय आय (National income) में वृद्धि व बेकारी की समस्या को दूर करना है।
इसलिये बेकारी की समस्या जो कि पूँजीवाद में तीव्र बनी रहती है समाजवाद में दूर हो
जाती है।

(४) औद्योगिक शांति (Industrial peace):—सरकार श्रमिकों का
विशेष ध्यान रखती है और उनकी न्यायोचित मांगों को पूरा करती है। निजी व्यक्तियों
के स्थान पर सरकार का उद्योगों पर प्रभुत्व रहता है इसलिये देश में औद्योगिक शांति बनी
रहती है।

(५) परोपजीविका का अंत (End of parasitism):—समाजवाद में
निजी जायदाद (Private property) का अंत हो जाता है इसलिये कोई भी
मनुष्य बिना काम किये आय की प्राप्ति नहीं कर सकता और इस प्रकार यहाँ परोपजीविका
(Parasitism) का अंत हो जाता है।

(६) साधनों का उत्तम उपयोग:—पूँजीवाद में निजी मनुष्य अपने लाभ के लिये
साधनों का उपयोग करते हैं जिससे देश की दीर्घकालीन प्रगति की ओर लेशमात्र भी
विचार नहीं जाता परन्तु समाजवाद में साधनों का उपयोग सरकार आर्थिक नियोजकों
(Economic planners) की सहायता से करती है इसलिये साधनों का उत्तम उपयोग
एवं पूर्ण विकास होता है।

(७) राष्ट्रीय आय का समान वितरण (Equitable distribution
of National income):—समाजवाद का मुख्य उद्देश्य आर्थिक समानता स्थापित
करना है। इसलिये सरकार राष्ट्रीय आय का समान वितरण करके, सामाजिक एवं आर्थिक
समानता स्थापित करने का भरसक प्रयत्न करती है।

(८) नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा (Social Security):—समाजवाद में सरकार नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। उनको स्वास्थ्य सम्बन्धी सहायता, वृद्धावस्था में पेन्शन, अपाहिजों के लिये व्यवस्था, श्रमिक कल्याण केन्द्र (Labour Welfare Centres) इत्यादि के लिये प्रबन्ध करना पड़ता है जिसका पूंजीवाद में अभाव रहता है।

(६) साम्राज्यवादी शोषण का अन्त (End of Imperialistic exploitation):—साम्राज्यवादी विस्तार का मूल कारण पूंजीवाद में मांग को सही न समझकर अत्यधिक उत्पादन (over production) है, परन्तु समाजवाद में यह प्रश्न ही नहीं उठता। नियोजन कमीशन समानतया ऐसी भूल नहीं कर सकता इसलिये समाजवाद की स्थापना होने पर संसार से साम्राज्यवादी शोषण का अन्त हो जायगा।

समाजवाद के दोष (Demerits of Socialism)

(१) शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीय करण (Over Centralisation of authority):—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था राज्य द्वारा नियोजित अर्थ व्यवस्था है। इसमें देश का संपूर्ण आर्थिक जीवन राज्य-नियोजन संस्थाओं द्वारा नियोजित किया जाता है। इसका परिणाम सरकार के हाथ में शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीय करण है। इसलिये य सरकारी तानाशाही, तथा निष्ठुर राज्य का भय सदा बना ही रहता है।

(२) नौकरशाही के दोष (Defects of Bureaucracy):—समाजवाद अर्थ व्यवस्था किसी भी प्रकार नौकरशाही के दोषों से अपने आपको वंचित नहीं र सकती। योजना का निर्माण करने व उसे क्रियान्वित करने में बहुत से नियोगी वर्गों की स्थापना करनी होगी। नौकरशाही में लाल फीते शाही (Red Tapism) के दोषों के कारण दफ्तर सम्बन्धी कार्यों में देर लगना साधारण बात है।

(३) व्यापार दक्ष रूप से नहीं चलता:—समाजवाद पूंजीवाद के स्वयं चालक-कीमत-रचना यंत्र (Automatic price Mechanism) को समाप्त कर सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा सभी कार्य करता है इसलिये यहां व्यापार में समय समय पर सरकारी आज्ञाओं की आवश्यकता होती है और तनिक देरी होने पर व्यापार में गड़बड़ हो जाती है। नौकरशाही के कारण विलम्ब साधारणतया होता ही रहता है।

(४) श्रमिक कुशलता की उन्नति के लिये प्रलोभन या उत्तेजक (Incentives) का अभाव:—बहुधा यह कहा जाता है कि समाजवाद में श्रमिकों के लिये ऐसे कोई उत्तेजक नहीं होते जो उनकी कुशलता में उन्नति करा सकें। इसका कारण यह है कि समाजवाद में सभी श्रमिक सरकारी कर्मचारी होते हैं और वे एकसी आय श्रेणियों तथा अन्य काम की अवस्थाओं में कार्य करते हैं। यह समस्या आरम्भ में रूस में उत्पन्न हुई। वहां बहुत से मौद्रिक व अमौद्रिक उत्तेजकों को काम में लाया गया।

(५) स्वतंत्रता का अभाव:—समाजवाद में प्रत्येक कार्य नियोजन कमीशन की इच्छा के अनुसार ही होता है। मनुष्य किस प्रकार का उपभोग, उत्पादन व अन्य कार्य करे यह सब नियोजन कमीशन ही निश्चित करता है। और साथही उपभोक्ता की सार्वभौमिकता (Sovereignty of the Consumer) पूंजीवाद में पायी जाती है, उसका भी यहां अन्त हो जाता है।

(६) व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता का अभाव (Absence of choice of occupation)—समाजवाद में श्रमिक अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं चुन सकते। उनको वह कार्य करना ही होगा जिसके लिये नियोजन कमीशन की आज्ञा उन्हें दी जाती है। इस प्रकार श्रमिक अपनी इच्छा व कुशलता के द्वारा अपने व्यवसाय भी नहीं चुन सकते।

समाजवाद का भविष्य (Future of Socialism)

समाजवाद के जितने भी दोषों का ऊपर उल्लेख किया गया है उन सबके विषय में मार्क्स (Marx) व उसके अनुयायियों का यह विचार है कि ये दोष समाजवाद की केवल प्रारम्भिक अवस्था में ही पाये जा सकते हैं जब कि समाजवाद की स्थापना पूरी तरह नहीं हो पाई हो और पूंजीवादी तत्वों का पूर्णतया अंत नहीं हुआ हो। कुछ समय के बाद जब इन तत्वों का पूर्णतया नाश हो जायगा तब संसार भर में साम्यवाद की स्थापना हो जायगी और इस प्रकार दीर्घकाल में पूंजीवाद संसार की पृष्ठभूमि से ही उठ जायगा।

अध्याय सार

समाजवाद का अर्थ

समाजवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादन के साधन समाज के अधिकार में होते हैं। उत्पादन लाभ प्राप्ति की आशा से नहीं किया जाता और सरकार आर्थिक क्रिया में हस्तक्षेप करती है व विकास के लिये आर्थिक नियोजन का सहारा किया जाता है।

समाजवाद के मुख्य लक्षण

उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व, सरकारी उद्योग सरकारी प्रमुख श्रेष्ठ तथा आर्थिक नियोजन आदि समाजवाद के मुख्य लक्षण हैं।

समाजवाद के गुण

संतुलित विकास, व्यापार चक्रों का अभाव, बेकारी की समस्या का समाधान, औद्योगिक शांति, परोपजीविता का अंत, साधनों का उत्तम उपयोग, राष्ट्रीय आय का समान वितरण, नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा, तथा साम्राज्यवादी शोषण का अंत समाजवाद के मुख्य लाभ हैं।

समाजवाद के दोष

शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीयकरण, नौकर शाही के दोष, मद्दा व्यापार, श्रमि कुशलता की उन्नति के लिये प्रेरणा का अभाव, स्वतंत्रता का अभाव तथा व्यवस चुनने की स्वतंत्रता का अभाव इत्यादि समाजवाद के दोष हैं।

समाजवाद का भविष्य

समाजवाद भविष्य की आर्थिक प्रणाली है। सभी अर्ध विकसित व निर्धन दे को यह आकर्षित करता है और विकसित देशों में भी उसके आकर्षण का अभाव न पाया जाता।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समाजवाद से आप क्या समझते हैं ? इसे पूँजीवाद से अधिक उत्तम क्य समझा जाता है ?

What do you understand by Socialism ? Why is it considered superior to capitalism ?

(२) समाजवाद के लक्षण समझाकर लिखिये।

Describe the characteristics of Socialism.

(३) समाजवाद के गुण व दोषों का विवेचन कीजिये।

Examine the merits and demerits of Socialism.

(४) समाजवाद इतना लोकप्रिय क्यों बन गया है ?

Why has Socialism become so popular ?

(५) "समाजवाद का भविष्य उज्जवल है।" इस कथन का विवेचन कीजिये

"The future of Socialism is bright." Comment.

अध्याय १४

ECONOMIC PLANNING

आर्थिक नियोजन

"सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण आर्थिक जीवन के लिये नियोजन आवश्यक है। नियोजन से अभिप्राय एक उद्देश्य से कार्य करना है, चुनाव करना है, और चुनाव ही आर्थिक क्रिया का सार है।"

—प्रो० रोबिन्स

यदि उन्नीसवी शताब्दी 'स्वतंत्र साहस' (Laissez faire) का युग था तो बीसवीं शताब्दी नियोजन का युग है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक दिशा एवं प्रत्येक चरण में नियोजन का महत्व है। नियोजन को वर्तमान युग के निर्माण का आधार स्तम्भ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने नियोजन को एक अचूक रामबाण दवा (Grand Panacea) के समान माना है।* पूँजीवादी व्यवस्था (Capitalism) के दोषों एवं उनके दूषित सामाजिक परिणामों के फलस्वरूप आर्थिक नियोजन का अभ्युदय हुआ। नियोजन का शाब्दिक अर्थ 'पहले से व्यवस्था करना' है। प्रत्येक राष्ट्र को भविष्य के लिये कुछ न कुछ व्यवस्था रखनी पड़ती है, चाहे वह देश की सुरक्षा के लिये हो अथवा खाद्य संकट के लिये अथवा बाढ़ या भूकम्प के लिये। भविष्य में आने वाली समस्याओं एवं कठिनाइयों का सामना करने के लिये पहले से ही बुद्धिमता एवं विवेकपूर्ण प्रबन्ध करने को नियोजन कहते हैं। इस प्रकार देश की अर्थ व्यवस्था को सन्तुलित एवं प्रगतिशील रखने के लिये जो आर्थिक प्रयत्न किये जाते हैं वे आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आते हैं।

आर्थिक नियोजन का अर्थ (Meaning of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं। श्री विट्ठल बाबू के अनुसार "किसी राष्ट्र की वर्तमान भौतिक, मानसिक तथा प्राकृतिक शक्तियों अथवा साधनों को जन-समूह के अधिकतम लाभार्थ (Maximum benefit) विवेकपूर्ण उपयोग करने की कला को नियोजन कहते हैं।"

प्रो० डिकिन्सन (H. D. Dickinson) के अनुसार नियोजन एक ऐसी व्यवस्था का स्वरूप है जो विशेषकर उत्पादन एवं वितरण से सम्बन्धित होती है। "क्या और कितना उत्पादन किया जाय, कहाँ, कैसे और कब उसका उत्पादन किया जाय, तथा उसका बँटवारा किसमें किया जाय—के विषय में निश्चित अधिकारी द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था

*"Planning is the grand panacea of our age."–L. R . . .

कर दीं। सामाजिक असमानता, गरीब मजदूरों का शोषण (Exploitation), हड़तालें, वर्ग संघर्ष (Class Conflict), साम्राज्यवादिता (Imperialism) आदि अनेक दोषों ने पूंजीवाद को पतनोन्मुख किया और यह एक सम्मानित आर्थिक अथवा सामाजिक व्यवस्था नहीं रही। स्वतंत्र साहस एवं निजि लाभ पर आधारित इस व्यवस्था को सुधारने का एकमात्र उपाय नियोजन था। नियोजन व्यक्तिगत स्वतंत्रता को जीवित रखते हुए भी आर्थिक असमानता (Economic inequalities) एवं शोषण को समाप्त करने का आश्वासन देता है। अतः सभी बुद्धिमान सरकारों ने पूंजीवाद के दोषों से छुटकारा पाने के लिये किसी न किसी अंश में नियोजन का आश्रय लिया है।

(२) व्यापार चक्र (Trade Cycles):—पूंजीवाद के सबसे निकटतम सम्बन्धी व्यापार चक्र हैं। आज भी समस्त पूंजीवादी जगत व्यापार चक्रों से भयत्रस्त है। प्रत्येक साहसी के स्वतंत्र निर्णय के परिणाम स्वरूप कभी व्यापार उन्नति (Boom) की ओर अग्रसर होता है तो कभी गिरावट और मन्दी (Depression) की ओर। औद्योगिक क्रांति के बाद का आर्थिक इतिहास शीघ्र घटने वाले तेजी और मन्दी (Boom and depression) के दुष्परिणामों का विवरण है। इनके फलस्वरूप राष्ट्रों की सामाजिक व्यवस्था सदैव अस्थिर एवं अशान्तिमय बनी रही है और उत्पादन के साधनों का विनाश हुआ है। आर्थिक नियोजन ही एक ऐसा मार्ग था जो राष्ट्रों को व्यापार चक्रों के चंगुल से बचा सकता था। नियोजित उत्पादन एवं व्यापार नीतियों द्वारा ही राष्ट्र के साधनों का सही और अधिकतम उपयोग हो सकता है एवं सामाजिक जीवन स्थिर रह सकता है।

(३) आर्थिक संकट (Economic Depression):—सन् १६२६ के भयावह आर्थिक संकट ने पूंजीवादी एवं आयोजना विहीन अर्थव्यवस्था के दोषों को नग्न रूप में संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। सब तरफ वस्तुओं का अकाल पड़ गया और आर्थिक क्रिया ठप्प हो गई। कोई भी स्वतंत्र साहसी जोखिम उठाने को तैयार न था। उत्पादन गिर गया और राष्ट्रों के सामाजिक जीवन छिन्न भिन्न होने लगे। ऐसे समय में आर्थिक नियोजन के देवदूत ने संसार की रक्षा की। नियोजन की अच्छाइयों में सरकारों एवं अर्थशास्त्रियों की निष्ठा बढ़ने लगी। नियोजित नीतियों द्वारा उत्पादन की वृद्धि की गई एवं मुद्रा की साख पुनः स्थापित की गई। लगभग सभी पश्चिमी देशों ने इस संकट काल में आर्थिक नियोजन का आश्रय लिया।

(४) महायुद्ध (World Wars)—बीसवीं सदी के दो महायुद्धों ने आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को संसार के सामने प्रस्तुत किया। प्रत्येक युद्ध के विनाश की पूर्ति करने का एकमात्र मार्ग आर्थिक नियोजन था। युद्ध पीड़ित राष्ट्रों ने नियोजन अपना कर अपनी अर्थव्यवस्थाओं की रक्षा की। उत्पादन, व्यापार आदि पर नियंत्रण करके देशों ने अपनी शक्तियों का पुनर्निमाण किया। मार्शल योजना (Marshall Plan)

द्वितीय महायुद्ध के विध्वंस को पूरा करने के लिये ही बनाई गई थी और उसी योजना के फलस्वरूप आज यूरोपीय देश फिर आर्थिक प्रगति कर रहे हैं।

(५) रूस की सफलता का उदाहरण (Exemplary success of Russia):—सोवियत संघ संसार का प्रथम देश था जिसने पूर्ण आर्थिक नियोजन को अपनाया। जिन अर्थशास्त्रियों ने प्रारम्भ में रूस की आर्थिक योजनाओं का उपहास उड़ाया था, वे ही उसके प्रशंसक बन बैठे। (Those who had come to scoff, remained to pray.) पिछले ४० वर्षों में रूस की अभूतपूर्व आर्थिकप्रगति को देखकर सारे संसार ने दांतों तले उंगली दबा ली। अपनी पंच एवं सप्त वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत रूस ने आश्चर्यजनक प्रगति करके नियोजन के मत में एक अमिट प्रभाव छोड़ा है। आर्थिक नियोजन की इस सफलता के कारण संसार के अन्य सभी देश इस ओर झुके एवं इसके लाभों से प्रभावित हुए।

(६) अविकसित देश (Under developed Countries):—साम्राज्यवाद के अन्त के साथ ही नवोदित राष्ट्रों के सामने भयंकर आर्थिक समस्याएं आ खड़ी हुईं। यदि ये देश पूंजीवाद के स्वतंत्र साहस के सिद्धान्त को अपनाते तो प्रगति नहीं कर सकते थे। कारण यह है कि इनके साधन अर्ध-विकसित थे और पूंजी का अभाव था। अतः साधनों के पूर्ण उपयोग एवं पूंजी की प्राप्ति के लिये नियोजन का सहारा लेना ही एकमात्र उपाय था। परिणामस्वरूप एशिया एवं अफ्रीका के लगभग सभी स्वतंत्र राष्ट्रों ने आर्थिक नियोजन को अपनाया है। इन देशों के आर्थिक नियोजन को अपनाने के कारण नियोजन के सिद्धान्तों को बहुत बल मिला है।

(७) विभिन्न अर्थशास्त्रियों के मत:—सभी देशों के लगभग सभी आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने नियोजन के पक्ष में अपना मत दिया है। उन्होंने सरकारों को भी नियोजन अपनाने का परामर्श दिया है। लॅंग (Lange), टेलर (Taylor), शुम्पीटर (Schumpeter), डॉब (Dobb), लर्नर (Lerner), आदि अनेक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन की प्रशंसा की है एवं इसकी नीतियों पर विवेचपूर्ण लेख लिखे हैं।

अतः आज प्रश्न यह नहीं है कि नियोजन क्यों, किन्तु यह है कि नियोजन क्यों नहीं ? दिन प्रति दिन राष्ट्र एवं सरकारें नियोजन के पक्ष में होती जा रही हैं। अब तो समस्या यह है कि नियोजन किस प्रकार से हो कि भूमण्डल पर से निर्धनता का अन्त हो मिट जाय, असमानताएं समूल नष्ट हो जावें एवं समृद्धि, खुशहाली और प्रगति के बीज बोये जावें।

नियोजन की मुख्य विशेषताएं (Main characteristics of Planning)

यद्यपि विभिन्न राष्ट्रों ने आर्थिक नियोजन के विभिन्न अर्थ लगाए हैं और विभिन्न परिभाषाएं बनाई हैं, तथापि आर्थिक नियोजन के कुछ सर्वविदित तथ्य एवं विशेषताएं हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) नियोजित अर्थव्यवस्था आर्थिक संगठन की एक पद्धति है।

(२) आर्थिक नियोजन में राष्ट्रीय साधनों का तान्त्रिक समन्वय (Technical Co-operation) होता है। साधनों का स्वामित्व एवं उपयोग व्यक्तिगत लाभ के हेतु न होकर एक निर्धारित नीति के अनुसार होता है।

(३) नियोजन के संचालन एवं साधनों के समन्वय के लिये एक योग्य एवं उचित अधिकारी अथवा संस्था (Efficient and legal authority) होनी है जो साधनों का परीक्षण कर, लक्ष्य (Targets) निर्धारित करती है, उनकी पूर्ति के ढंग निकालती है, योजना का ढांचा बनाती है, निश्चित उद्देश्यों की प्रगति के लिये मार्ग निर्धारित करती है व देखरेख करती है।

(४) नियोजन में राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था से सम्बंधित उद्देश्य निश्चित होते हैं।

(५) नियोजन में साधनों का वितरण प्राथमिकता के अनुसार (in order of Priority) किया जाता है।

(६) लक्ष्यों की पूर्ति हेतु एक निश्चित अवधि होती है।

(७) संगठित एवं सुव्यवस्थित प्रयत्न और उनमें परस्पर मेल होता है।

(८) राष्ट्र के वर्तमान तथा सम्भाव्य साधनों का विवेक पूर्ण उपयोग उत्पादन को अधिकतम स्तर पर लाने के लिये किया जाता है।

नियोजन की अनिवार्यताएं (Essentials of Planning)

विभिन्न राष्ट्रों के अनुभव के आधार पर आर्थिक नियोजन की कुछ सामान्य आवश्यकताएं हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना आर्थिक नियोजन सफल नहीं हो सकता। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(१) निश्चित उद्देश्य (Well defined objects)—आर्थिक नियोजन प्रारम्भ करने से पूर्व इसके उद्देश्य निश्चित होने चाहिए। नियोजन का उद्देश्य सर्व साधारण के रहन सहन के स्तर (Standard of living) को ऊँचा करना, युद्धकालीन आर्थिक संकट से छुटकारा पाना, किसी विशेष उद्योग अथवा क्षेत्र का विकास करना आदि हो सकता है। अतः सर्वप्रथम नियोजन का ध्येय स्पष्टतया निर्धारित होना चाहिए जिसके अनुसार साधनों का उपयोग किया जाय।

(२) एक निश्चित शक्तिशाली अधिकारी (A duly constituted powerful Central Authority):—योजना को कार्यान्वित करने के लिये एक निश्चित शक्तिशाली केन्द्रीय अधिकारी की आवश्यकता है। नियोजन सम्बंधी सभी नीतियों का निर्माण एवं उन्हें कार्यान्वित करना इसी को सौंपा जाना चाहिये। यह अधिकारी एक व्यक्ति भी हो सकता है, अथवा कुछ व्यक्तियों का वर्ग अथवा जनता

द्वारा चुनी हुई या सरकार द्वारा मनोनीत कोई संस्था। यह अपना कार्य कुशलता एवं निर्विरोध रूप से कर सके, इसलिये इसे संवैधानिक मान्यता और यथेष्ट शक्तियां व अधिकार प्रदान होने चाहिये।

(३) आँकड़ों का संकलन (Collection of statistics):—नियोजन करने से पूर्व देश की वर्तमान अवस्था का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इसके लिये आवश्यक आँकड़ों (Statistics) की उपलब्धि अनिवार्य है। जनसंख्या, प्राकृतिक साधनों, मुख्य खनिज, कृषि उत्पादन, रहन-सहन, महत्वपूर्ण उद्योग धंधों आदि के विषय में पूर्ण एवं विश्वसनीय आँकड़ों की प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है। आँकड़ों के आधार पर वर्तमान परिस्थिति का ज्ञान हो जाता है एवं लक्ष्य निर्धारण और लक्ष्यों की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

(४) पूँजी (Capital):—आर्थिक नियोजन की आत्मा पूँजी है। विभिन्न क्षेत्रों में पूँजी विनियोग (Capital investment) के बाद ही उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। पूँजी दो प्रकार की होती है—देशी एवं विदेशी। जो राष्ट्र पर्याप्त मात्रा में देशी पूँजी नहीं एकत्र कर पाते उन्हें विदेशी पूँजी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। पूँजी से तात्पर्य केवल मुद्रा से ही नहीं है वरन् उन समस्त वस्तुओं, मशीनों आदि से है जो उत्पादन में सहायक हों। इस प्रकार नियोजन अधिकारी (Planning Authority) को विभिन्न स्रोतों से आवश्यक पूँजी जुटाने का प्रयत्न करना पड़ेगा।

(५) तांत्रिक समन्वय (Technical Co-operation):—राष्ट्र के समस्त साधनों का निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये एक तान्त्रिक समन्वय करना आवश्यक है। विनियोग-उत्पादन (Input-Output) सिद्धान्त के सही प्रयोग से उत्पादन व्यवस्था को सरल बनाया जा सकता है। उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्रों से सम्बन्ध अवश्य होता है। अतः यह आवश्यक है कि उनमें परस्पर समन्वय हो जिससे उत्पादन में वृद्धि हो।

(६) कार्यक्रमों का निर्धारण (Formulation of Programme):—आर्थिक नियोजन को प्रारम्भ करने से पूर्व तथा उसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि योजना के प्रत्येक कार्यक्रम का विस्तृत निर्धारण हो। उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक कार्य (Project) की विस्तृत रूपरेखा बनाई जानी आवश्यक है। उसके अनुसार पूँजी व मजदूरों की आवश्यकता, उत्पादन क्षमता (Efficiency) आदि पहले से ही निर्धारित किये जाने चाहिए।

(७) सरकारी व निजि क्षेत्र (Public and Private Sectors):—निर्धारित आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि सरकार सामाजिक हितों की रक्षा हेतु स्वयं कुछ करे। आर्थिक नियोजन में उत्पादन के साधनों पर सरकारी नियंत्रण आवश्यक है। परन्तु यह योजना अधिकारी पर निर्भर है कि वह

निम्न विधि नीचा तक हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजनैतिक विचारधारा एवं शासन-प्रणाली का इस पर प्रभाव होगा, तथापि यह पूर्व निश्चित होना आवश्यक है।

(८) योजना की विज्ञप्ति (Publicity of the Plan)—जनता के सम्बन्धी विचारों को जानने के लिये योजना के खाके (outline) का विज्ञापन भी आवश्यक होता है ताकि ऐसे विशेषज्ञ, उद्योगपति, अर्थशास्त्री, सामान्य जनता तथा सामाजिक, व्यापारिक एवं अन्य संस्थाएँ जो कि प्रत्यक्ष रूप से योजना से सम्बन्धित न हों, उस पर अपने विचार प्रकट कर सकें। योजना अधिकारी जहाँ तक सम्भव हो इन विचारों का योजना में समावेश करने का प्रयत्न करता है।

(९) योजना के संचालन तथा प्रगति का निरीक्षण (Review of the execution and progress of the plan):—आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के अनुसार योजना के स्वरूप एवं संचालन में परिवर्तन होना भी आवश्यक है। अतः नियोजन अधिकारी को योजना की प्रगति आदि का निरीक्षण करके बहुधा आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने आवश्यक हो जाते हैं

(१०) जनता का सहयोग (Public Co-operation):—अन्तिम, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण, आवश्यकता है जनता के सहयोग की। बिना जनता के सहयोग के कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती। योजना जनता की भलाई के लिये ही होती है, अतः इसकी सफलता के लिये जनता की स्वीकृति तथा सहयोग दोनों आवश्यक हैं।

नियोजन के प्रकार (Types of Planning)

किसी भी देश की अपनी आवश्यकताएँ अपनी सीमाएँ एवं अपने साधन होते हैं। प्रत्येक की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था भिन्न होती है। अतः विभिन्न देशों में नियोजन भी विभिन्न सिद्धान्तों पर व विभिन्न व्यवस्थाओं में किया जाता है। आर्थिक नियोजन के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:—

(१) समाजवादी नियोजन (Socialistic Planning):—इस युग में समाजवाद के मूल उद्देश्यों—आर्थिक एवं सामाजिक समानता—की पूर्ति के लिये बहुत से तरीके अपनाए जाने लगे हैं। समाजवादी नियोजन में केन्द्रीय नियन्त्रण (Central Control) का विशेष महत्व होता है। सरकारी क्षेत्र को विकसित तथा निजि क्षेत्र को संकुचित किया जाता है। मूल तथा आधार-भूत उद्योगों (Basic and Heavy-Industries) एवं शक्ति तथा यातायात के मुख्य साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) किया जाता है। राष्ट्र के अधिक से अधिक साधनों को पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों (Capital goods industries) में विनियोजित किया जाता है। उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाता है। उत्पादन का निर्धारण एवं नियंत्रण वृहद् सामाजिक हितों में होता है, एवं व्यक्तिगत लाभ कम करके समानता

प्राप्त करने का यत्न किया जाता है। किन्तु समाजवादी नियोजन में व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं होता। वरन् उसे सामाजिक सुरक्षा (Social Security) प्रदान की जाती है। कुछ विद्वानों का मत है कि समाजवादी अर्थ व्यवस्था एवं नियोजन नौकरशाही (Bureaucracy) को बढ़ावा देती है एवं उत्पादन कार्य में शिथिलता लाती है। प्रायः नियोजन अधिकारी गलत सूचना देते हैं तथा सरकार के हितों के लिये साधनों का अपव्यय भी करते हैं।

(२) साम्यवादी नियोजन (Communistic or Totalitarian Planning):—साम्यवादी नियोजन, समाजवादी नियोजन का कठोर स्वरूप होता है जिसमें बल, दबाव (Coercion), सैन्यीकरण (Regimentation) तथा कठोरता का विशेष स्थान होता है। साम्यवादी नियोजन पूर्णतः केन्द्रित (Centralised) होता है। इसमें स्वतन्त्र साहस को कोई स्थान नहीं होता तथा प्रत्येक वस्तु का पूर्ण राष्ट्रीयकरण किया जाता है। सोवियत संघ में आर्थिक नियोजन इसका उदाहरण है। वहाँ समस्त उद्योग राज्य के आधीन हैं। आन्तरिक व्यापार व आयात-निर्यात भी राज्य द्वारा किया जाता है। साम्यवादी नियोजन में लोकतंत्रीय स्वतंत्रता का समन्वय नहीं होता। आर्थिक स्वतंत्रता को अत्यन्त सीमित कर दिया जाता है और राजनीतिक स्वतंत्रता को लुप्त प्रायः। परन्तु इस प्रकार के दीर्घकालीन आयोजन को जिसके लक्ष्य अत्यधिक महत्वकांक्षी होते हैं—सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। इसमें लक्ष्यों की पूर्ति भी शीघ्र होती है।

(३) पूँजीवादी नियोजन (Capitalistic Planning):—आधुनिक युग में पूँजीवादी राष्ट्रों में भी नियोजन ने महत्व प्राप्त कर लिया है। महायुद्धों एवं आर्थिक संकटों के कारण पूँजीवादी देशों में भी नियोजन की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रकार के नियोजन में स्वतंत्र साहस पर कोई रोक नहीं होती है और न ही स्वतंत्र उपभोग पर कोई अंकुश। सरकार विचार करके निजि साहस को आवश्यक सहायता प्रदान करती है जिससे आर्थिक प्रगति में बाधा न पड़े। इस प्रकार के नियोजन में बाजार की परिस्थितियों एवं मूल्यों में हेर-फेर करके नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। जिन क्षेत्रों में स्वतंत्र साहस विनियोग करने में हिचकिचाता है उनमें राज्य विनियोग करता है। कभी कभी विदेशी स्पर्धा (Competition) से देश की अर्थ-व्यवस्था को सुरक्षित करने के लिये राज्य व्यापार एवं उत्पादन का निर्धारण करता है। परन्तु आर्थिक साधनों को पुनः व्यवस्थित करके निजी साहस एवं स्वतंत्र स्पर्धा की फिर व्यवस्था कर दी जाती है।

(४) प्रजातान्त्रिक नियोजन (Democratic Planning):—इसमें समाजवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोकतान्त्रिक विधियों का उपयोग किया जाता है। भारत में इस प्रकार की व्यवस्था का सम्भवतः सर्वप्रथम प्रयोग किया जा रहा है। ब्रिटेन ने भी द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को नियोजित किया था। प्रजातांत्रिक नियोजन में निजि तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों (Private and public

sectors) को स्थान प्राप्त है, एवं उनमें प्रतिस्पर्धा समाप्त करके दोनों को एक दूसरे का पूरक (Complementary) बनाया जाता है। इसमें जनकल्याण (Human welfare) को अधिक महत्व दिया जाता है तथा मानवीय स्वतंत्रता व सम्मान का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रायः यह एक मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) को जन्म देता है। इसमें अर्थव्यवस्था का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) किया जाता है। प्रजातांत्रिक नियोजन के अन्तर्गत केवल चुने हुए व्यवसायों तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है। विदेशी सहायता (Foreign assistance) का इस प्रकार के नियोजन में विशेष महत्व होता है। परन्तु इसमें विकेन्द्रीकरण होने के कारण कभी कभी साधनों का अपव्यय भी होता है। विरोधी राजनीतिक दलों की चालों के कारण सही नीतियों के निर्धारण में भी कठिनता होती है। इस प्रकार के नियोजन की प्रगति धीमी होना स्वाभाविक ही है।

(५) तानाशाही नियोजन (Dictatorial or Fascist Planning):–तानाशाही नियोजन में सत्ता का केन्द्रीयकरण जनता की प्रतिनिधि सरकार में न होकर एक अन्य शासक में होता है। आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक नीतियाँ इसी तानाशाह की इच्छानुसार निर्धारित की जाती हैं। आवश्यक सेवाओं तथा आधारभूत उद्योगों का अपहरण भी किया जाता है। राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में वृद्धि अवश्य की जाती है किन्तु उसका समान वितरण नहीं होता। साम्यवादी नियोजन की भाँति इसकी सफलता भी कभी-कभी आश्चर्यजनक होती है परन्तु इसमें मानवीय तत्वों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। इस प्रकार का नियोजन आकस्मिक संकटों, युद्ध, मंदी आदि का सामना करने के लिये उपयोग में लाया जाता है। द्वितीय महायुद्ध काल में जर्मनी में तानाशाही अर्थव्यवस्था का आयोजन किया गया था।

(६) गांधीवादी नियोजन (Gandhian Planning):—यह एक बिलकुल विभिन्न प्रकार का नियोजन है। इसके मुख्य सिद्धान्तों--सादगी, अहिंसा, श्रम का मूल्य, मानवीय गुण एवं व्यक्तिगत विकास—में सामंजस्य स्थापित करने के लिये 'सर्वोदय-व्यवस्था' का विचार व्यक्त किया गया है। इसमें उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) पर विशेष बल दिया जाता है। इस नियोजन में ग्राम इकाइयों का विकास तथा उत्थान अधिक महत्वपूर्ण है और उनको आत्मनिर्भर (Self-sufficient) बनाने का आयोजन है। राज्य का अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप न्यूनतम होता है। उद्योगों को छोटी छोटी इकाइयों में संगठित करना तथा लघु और गृह उद्योगों का विकास करना नियोजन के मुख्य अंग है।

वास्तव में किसी भी राष्ट्र के नियोजन का प्रकार वहाँ की सरकार के राजनैतिक ढाँचे पर बड़ी सीमा तक निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त देश की सांस्कृति, जनसमुदाय का स्वभाव, भौगोलिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक विचारधाराओं, शिक्षा एवं प्राविधिक

प्रशिक्षण के विस्तार आदि का प्रभाव भी नियोजन के प्रकार पर पड़ता है और प्रत्येक देश अपनी विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने नियोजन का रूप निश्चित करता है।

आर्थिक नियोजन के लाभ (Advantages of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन के लाभों के बारे में लिखना आश्चर्य सा प्रतीत होता है क्योंकि इसकी उपादेयता सर्व विदित है और इसके लाभ अनेक हैं। संक्षेप में नियोजन के मुख्य लाभ निम्न हैं:—

(१) निर्धनता का शीघ्र निवारण (Speedy removal of poverty):—नियोजन का अर्थ है राष्ट्र के साधनों का अधिकतम उपयोग एवं उत्पादन की वृद्धि। उत्पादन में वृद्धि होने से देशवासियों की आय स्वतः ही बढ़ेगी। निर्धनता आधुनिक समाज के लिये सबसे बड़ा अभिशाप (Curse) है। नियोजन पूर्ण व्यवस्थानुसार सबको अधिक धन, वस्तुएं व सेवाएं उपलब्ध करायेगा, जिससे गरीबी कम की जा सके। वैसे तो प्रत्येक सरकार का यही कर्तव्य है किन्तु आर्थिक नियोजन उसे शीघ्र एवं व्यवस्था से कराता है।

(२) समानता की प्राप्ति (Establishment of Equality):—आज के युग की सबसे बड़ी माँग समानता है। नियोजन के कारण समाज में धन की उत्पत्ति बढ़ने एवं समुचित वितरण (Fair Distribution) होने पर असमानताओं एवं विषमताओं का अन्त हो जायगा। इस प्रकार यह एक महान मानवीय विजय होगी।

(३) राष्ट्रीय साधनों का पूर्ण एवं सही उपयोग (Maximum and proper utilisation of national resources):—पूँजीवादी स्वतंत्र अर्थ व्यवस्था में आर्थिक साधनों का निर्दयता से दुरुपयोग होता है। परन्तु आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत समस्त प्राकृतिक एवं मानवीय साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है जिससे कुशलता बढ़ती है एवं उत्पादन में वृद्धि होती है। साधनों का विकास होता है एवं नये आविष्कारों का जन्म होता है। परिणामस्वरूप देश में उत्पादन वृद्धि होती है।

(४) सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा (Social justice and security):—नियोजन के परिणामस्वरूप समाज के सभी वर्ग स्वयं धनोपार्जन करने के योग्य होकर अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रख सकते हैं। आकस्मिक संकटों से समाज की रक्षा की जा सकती है एवं सामाजिक शान्ति की स्थापना की जा सकती है। प्रत्येक को अपने श्रम का उचित व पूर्ण पुरस्कार मिलता है।

(५) नैतिक सुधार (Moral Uplift): यह एक सर्वविदित तथ्य है कि समृद्धि बढ़ने पर चरित्र का पतन नहीं होता। जब सबको समानता के अनुसार जीवित रहने के साधनों की प्राप्ति होगी तो समाज से चोरी, झूंठ, दंगे-फसाद आदि स्वयं लुप्त हो जायेंगे। वास्तव में नियोजन का अन्तिम उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास

(Development of human personality) व व्यक्ति का उद्धार करना ही है।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं प्रगति (International peace and progress):—आज का युद्ध देशों अथवा जातियों के बीच न होकर समृद्धि तथा निर्धनता के मध्य होने वाला युद्ध है। निर्धन और अर्ध विकसित देश यदि आर्थिक नियोजन अपना कर उन्नति की ओर अग्रसर होंगे तो अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य कम होगा, युद्ध का भय घट जायगा और चारों ओर भौतिक प्रगति होती दृष्टिगोचर होगी। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, प्रगति व समृद्धि होगी।

सम्भावित हानियाँ (Disadvantages ?)

परन्तु कई विचारकों के मन में आर्थिक नियोजन की हानियाँ भी हैं। उन्हें सबसे बड़ा भय व्यक्तिगत स्वतंत्रता (individual freedom) के लिये है। प्रो० हेयक (Hayek) ने आर्थिक नियोजन को दासता का मार्ग (Road to serfdom) बताया है। यह बात निर्विवाद है कि जहाँ नियोजन होगा वहाँ नियंत्रण अवश्य होगा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर रोक होगी। आर्थिक नियोजन व्यक्ति के भले के लिये किया जाता है, पर यदि वह व्यक्ति ही की स्वतंत्रता को समाप्त कर दे तो उसका क्या उपयोग ? इसीलिये सोवियत संघ (U. S. S. R.) की महान भौतिक प्रगति को मानवीय दृष्टिकोण से अमाननीय कहा जाता है। आज के अधिकांश राज्य यह प्रयत्न कर रहे हैं कि आर्थिक नियोजन करते समय व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन न हो। भारत स्वयं इसी के लिये लड़ रहा है, यद्यपि हाल ही में कई एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में लोकतन्त्र का गला घोट दिया गया है। भारत जनतान्त्रिक नियोजन व नियोजन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ज्वलन्त उदाहरण है।

कुछ विशिष्ट उदाहरण

(१) आर्थिक नियोजन का सर्वप्रथम प्रयोग रूस ने किया। रूस में व्यावहारिक योजना का सूत्रपात लेनिन (Lenin) के द्वारा किया गया था।● यहाँ राज्य अपने गौसप्लान (Gosplan) द्वारा सारी अर्थ व्यवस्था को निर्धारित करता है। सोवियत संघ ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं को सन् १९२८ में शुरू किया था। छः पंचवर्षीय योजनाओं की समाप्ति पर, १९६० में सप्तवर्षीय सातवीं योजना (१९५९-१९६५) प्रारम्भ की जो आजकल चल रही है। इसके लक्ष्य अत्यन्त ऊँचे हैं।

(२) युद्ध काल में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि पश्चिमी देशों ने भी आर्थिक नियोजन किया। मार्शल प्लान (Marshall Plan) का अनुसरण इसी काल में हुआ एवं इन राष्ट्रों ने आश्चर्यजनक प्रगति की।

● "सोवियत और विद्युतीकरण मिलकर समाजवाद बनाते हैं"।—लेनिन

(३) आधुनिक युग में चीन, भारत, इंडोनेशिया, पाकिस्तान आदि अर्ध-विकसित देशों ने आर्थिक नियोजन प्रारम्भ किया है। चीन ने "आगे बड़ा कदम" (Big Leap Forward) के अन्तर्गत आश्चर्यजनक प्रगति की है। भारत में इस समय तृतीय पंचवर्षीय योजना (१९६१-६६) चल रही है। भारतीय नियोजन किसी सीमा तक काफी सफल रहा है। भारतीय नियोजन के बारे में आगे सविस्तार लिखा गया है।

अध्याय सार

वर्तमान युग आर्थिक नियोजन का युग है। नियोजन भविष्य की आशा है। स्वतंत्र साहस के दुष्परिणामों से पीड़ित जगत ने बीसवीं सदी में आर्थिक नियोजन को अपनाया है। संक्षेप में नियोजन के अन्तर्गत वे समस्त सुव्यवस्थित एवं संगठित प्रयत्न आते हैं जो एक राष्ट्र अपने देशवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और अपने साधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिये करता है।

इस सदी में आर्थिक नियोजन अपनाए जाने के मुख्य कारण

(१) पूंजीवाद के दोष (२) व्यापार चक्र (३) आर्थिक संकट (४) महायुद्ध (५) रूस में नियोजन की सफलता (६) अविकसित राष्ट्रों की समस्याएं (७) अर्थ-शास्त्रियों का समर्थन, इत्यादि।

आर्थिक नियोजन की विशेषताएं

(१) आर्थिक संगठन की एक विशेष पद्धति। (२) राष्ट्रीय साधनों का निर्धारित नीतियों के अनुसार तान्त्रिक समन्वय (३) एक योग्य एवं उचित अधिकारी अथवा संस्था जो नियोजन का कार्य चलाती है (४) निश्चित सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्य तथा लक्ष्य (५) प्राथमिकता के अनुसार राष्ट्रीय साधनों का वितरण (६) लक्ष्य पूर्ति की एक निश्चित अवधि (७) राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित एवं सुव्यवस्थित प्रयत्न एवं उनमें परस्पर मेल (८) सम्भाव्य साधनों का अधिकतम उपयोग के लिये उपयोग।

नियोजन की सफलता के लिये अनिवार्य शर्तें

(१) निश्चित लक्ष्यों का निर्धारण (२) निश्चित शक्तिशाली अधिकारी (३) आंकड़ों का संकलन (४) पूंजी की व्यवस्था (५) तान्त्रिक समन्वय (६) कार्यक्रमों का पूर्व निर्धारण (७) सरकारी व निजि क्षेत्र (८) योजना की विज्ञप्ति (९) योजना के संचालन तथा कार्य का निरीक्षण (१०) जनता का सहयोग।

विभिन्न राष्ट्रों ने विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत एवं विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिये अलग २ सिद्धान्तों पर आर्थिक नियोजन किया है।

नियोजन के मुख्य प्रकार

(१) समाजवादी नियोजन (२) साम्यवादी नियोजन (३) पूँजीवादी नियोजन (४) प्रजातान्त्रिक नियोजन (५) तानाशाही नियोजन (६) गांधीवादी नियोजन।

आर्थिक नियोजन के लाभ

(१) निर्धनता का शीघ्र निवारण (२) समानता की प्राप्ति (३) राष्ट्रीय साधनों का पूर्ण एवं सही उपयोग (४) सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा (५) नैतिक सुधार (६) अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं प्रगति।

हानियां:—कुछ विचारकों ने आर्थिक नियोजन की सम्भावित हानियों की ओर भी संकेत किया है, जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन, लाल फीताशाही आदि।

नियोजन के उदाहरण

रूस में आर्थिक नियोजन ने एक नई सभ्यता को जन्म दिया तथा फ्रांस व ब्रिटेन में इसको अभूतपूर्व सफलता मिली। वर्तमान काल में भारत, पाकिस्तान, संयुक्त अरब गणराज्य आदि देश नियोजन के आधार पर अपनी आर्थिक प्रगति में संलग्न हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. What do you understand by Economic Planning? Why is it necessary?

आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं? इसकी क्या आवश्यकता है?

2. How did the idea of economic planning come into being? what is economic planning?

आर्थिक नियोजन क्या है? आर्थिक नियोजन के विचार का जन्म कैसे हुआ?

3. Give a suitable definition of economic planning. What are its characteristics?

आर्थिक नियोजन की उपयुक्त परिभाषा दीजिये। इसकी विशेषताएँ क्या हैं?

4. Describe the essentials of planning.

नियोजन की अनिवार्यताएं समझाकर लिखिये।

5. Write a note on the different types of economic planning Which type is being practised in India?

नियोजन के विभिन्न प्रकारों पर एक नोट लिखिये। भारत में किस प्रकार का नियोजन है?

6. Examine the advantages of economic planning. What are its dangers?

आर्थिक आयोजन के लाभों की विवेचना कीजिये। इसके क्या भय हैं?

अध्याय १५

UNDER-DEVELOPED COUNTRIES AND THEIR ECONOMIC PROBLEMS

अर्ध-विकसित राष्ट्र एवं उनकी आर्थिक समस्याएं

"एक देश की अर्थ व्यवस्था, अन्य जीवधारियों के समान, चार चरणों में से होकर निकलती है—*जन्म, विकास, ह्रास और मृत्यु।*"

इस युग का सबसे बड़ा सिरदर्द अथवा समस्या अर्ध-विकसित राष्ट्र हैं। आज एशिया फिर से "महान एशिया" बनने को उत्सुक है, तो 'सोया अफ्रीका' भी सोते जाग उठा है। निर्धनता को एक नैतिक हीनता का प्रमाण माना जाता है। इस शताब्दी के मध्य से ही राष्ट्रों का ध्यान संसार के उन भू-भागों पर गया जहां पर लोग दयनीय गरीबी में अपना जीवन बिता रहे हैं। धनी और समृद्ध पश्चिमी देशों के शान एवं रहन-सहन को देखकर इन देशों के निवासियों में साहस और महत्वाकांक्षा का संचार हुआ। फलतः आज अर्ध-विकसित देश संसार के राजनैतिक एवं आर्थिक संघर्षों के केन्द्र बन गये हैं। पर ये देश कौन से हैं, क्या हैं, क्यों हैं आदि प्रश्नों के उत्तर जानने के लिये हमें *विस्तृत अध्ययन करना पड़ेगा।*

अर्ध-विकसित राष्ट्र का अर्थ (Meaning of Under-developed countries)

कहा गया है कि जहां छः अर्थशास्त्री होंगे वहां सात मत होंगे। अर्ध-विकसित राष्ट्रों की परिभाषा के सम्बन्ध में भी यह सत्य है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से अर्ध-विकसित देशों को परिभाषित किया है। उनमें से कुछ मुख्य *परिभाषाएं इस प्रकार हैं :—*

संयुक्त राष्ट्र संघ विशेषज्ञों (U. N. Experts) के अनुसार—"*अर्ध-विकसित राष्ट्रों से तात्पर्य उन राष्ट्रों से है जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Per capita* real income) अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोप की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है"।

भारतीय योजना आयोग (Indian Planning Commission) ने कहा है—"एक अर्ध-विकसित देश के लक्षण हैं देश में दो बातों का कम या अधिक अनुपात में एक साथ प्रस्तुत होना—एक ओर तो देश की मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं होना अथवा कम होना, तथा दूसरी ओर, उपयोग में लाये बिना पड़े हुए प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य।"*

* "An under-developed country is one which is characterised by the co-existence, in greater or less degree, of un-utilised or under-utilised man-power, on the one hand, and of unexploited natural resources on the other."—(India's First Five Year Plan).

प्रो० जेकब वाइनर (Jacob Viner) के अनुसार एक अर्ध-विकसित देश वह है जिसमें अधिक पूंजी या अधिक श्रम या अधिक प्राप्य प्राकृतिक साधन अथवा इन सबके उपयोग की अच्छी सम्भावनाएं हैं जिससे इसकी वर्तमान जनसंख्या एक ऊंचे जीवन-स्तर पर रह सके, अथवा यदि उसकी प्रति व्यक्ति आय पहले से ही ऊंची है तो अधिक जनसंख्या उसी रहन सहन के स्तर पर रह सके।"

कुछ अर्थ शास्त्रियों ने भौगोलिक दृष्टिकोण से अर्ध-विकसित राष्ट्रों की परिभाषा की है। उसके अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया (जापान को छोड़कर), अफ्रीका व दक्षिणी अमेरिका के अधिकांश देश अर्ध-विकसित हैं। अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार विद्युत शक्ति के प्रति व्यक्ति उपभोग (per capita consumption) की तुलना से भी अर्ध-विकसित देशों को अलग किया जाता है। कुछ अन्य लेखकों के मत में सभी अर्ध-विकसित राष्ट्रों में पूंजी निर्माण (Capital formation) की दर यूरोप व अमेरिका के विकसित राष्ट्रों से कम होती है।

एक सापेक्षिक संज्ञा (A relative concept)

वास्तव में 'अर्ध-विकसित राष्ट्र' एक सापेक्षिक संज्ञा है। जब हम कहते हैं कि इण्डोनेशिया या बर्मा अर्ध-विकसित राष्ट्र हैं तो इसमें यह तथ्य निहित है कि उनसे अधिक विकसित राष्ट्र उपस्थित हैं। दो वस्तुओं की तुलना के उपरान्त ही एक को कम अच्छी और दूसरी को अधिक अच्छी कहा जा सकता है। अमेरिका की अपेक्षा भारत एक अर्ध-विकसित राष्ट्र है। परन्तु पाकिस्तान अथवा नेपाल की तुलना में भारत एक विकसित राष्ट्र है। इस प्रकार अर्ध-विकसित राष्ट्रों का अध्ययन एक तुलनात्मक अध्ययन (Comparative study) है। हमारे रहन-सहन के स्तर फ्रांस अथवा इटली के स्तरों से नीचे हैं, अतः भारत एक अर्ध-विकसित राष्ट्र है। इस प्रकार अर्ध-विकसित राष्ट्र संज्ञा एक सापेक्षिक संज्ञा है जिसका स्वयं में कोई विशेष अर्थ नहीं।

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की विशेषताएं (Characteristics of Under-developed Countries)

एक अर्ध-विकसित राष्ट्र को पूरी तरह परिभाषित करने का सरलतम उपाय उसकी विशेषताओं का अध्ययन करना है। प्रायः सभी अर्ध-विकसित राष्ट्रों में कुछ ऐसी समानताएं पाई जाती हैं जिनसे उनको एक वर्ग में बांटा जा सकता है। यह सम्भव है कि प्रत्येक राष्ट्र में वे सब विशेषताएं न पाई जाती हों अथवा समान मात्रा में न पाई जाती हों, तथापि उनमें से कुछ प्रमुख विशेषताएं उन सब राष्ट्रों में किसी न किसी मात्रा में अवश्य उपस्थित होती हैं। अर्ध-विकसित राष्ट्रों की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:—

(१) कृषि की प्रधानता (Predominance of Agriculture):— प्राय: सभी अर्ध-विकसित देश कृषि प्रधान हैं, जैसे भारत, वर्मा, इन्डोनेशिया, थाइलैंड आदि। इनके अधिकांश निवासियों का मुख्य उद्यम खेती करना है और वह भी जीवन निर्वाह के लिये व्यापारिक दृष्टि कोण से नहीं (Simply as a means of living and not as a business)। इसके अतिरिक्त खेती पिछड़े हुए तरीकों से की जाती है, अतः कृषि पिछड़ी होती है तथा कृषि उत्पादन बहुत कम।

(२) उद्योगों का अभाव (Lack of Industries) :—प्राय: सभी अर्ध-विकसित देशों में कोई बड़े उद्योग धन्धे नहीं पाए जाते अथवा बहुत कम पाये जाते है। किसी किसी देश में एक दो बड़े धंधे पाये जाते हैं जो किसी विशेष आवश्यकता के फलस्वरूप स्थापित किये गये थे और जिनका पूरी अर्थव्यवस्था से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता। मुख्य उद्योगों—जैसे, लोहा, इस्पात, रसायन पदार्थ, अल्यूमीनियम, तेल आदि का सर्वथा अभाव होता है, एवं खनिज उद्योग बहुत पिछड़ी दशा में होते हैं।

(३) *कम पूँजी निर्माण एवं विनियोग (Low rate of Capital formation and Investment)* :—अर्धविकसित राष्ट्र उपभोग प्रधान होते हैं। सारा उत्पादन (Production, उपभोग (Consumption) के लिये होता है और कुल उत्पादन के बहुत थोड़े भाग का विनियोग (Investment) होता है। राष्ट्र की समस्त पूँजी का प्राय: ३–५ प्रतिशत भाग का ही विनियोग होता है, अन्य भाग उपभोग की वस्तुओं पर व्यय किया जाता है। फलस्वरूप उत्पादन के साधनों का निर्माण नहीं हो पाता।

(४) निम्न जीवन-स्तर (Low Standard of living) :—देश की उत्पादक शक्ति कम होने के फलस्वरूप उपभोग की वस्तुओं का सीमित उत्पादन होता है और लोगों के रहन-सहन के स्तर काफी नीचे होते हैं। प्रति व्यक्ति पौष्टिकता का स्तर बहुत नीचा होता है। अधिकांश व्यक्ति जीवन नहीं बिताते अपितु केवल जीवित रहते हैं (They do not live but simply exist)। इन देशों में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति वार्षिक औसत आय बहुत कम होती है—लगभग ६५ डालर से नीचे प्रति व्यक्ति आय जबकि विकसित राष्ट्रों में ८०० डालर के आसपास।

(५) खाद्यान्नों आदि का निर्यात एवं मशीनो का आयात (Export of food grains and import of machinery):—ये राष्ट्र अपने विदेशी व्यापार पर निर्भर रहते हैं। खाद्यान्नं एवं कच्चे माल (raw materials) का निर्यात करके वे विकसित राष्ट्रों से अपनी आवश्यकता की मशीनें आदि मंगाते हैं। राष्ट्र में भारी उद्योग धन्धे न होने के कारण कच्चे माल का देश में उपयोग नहीं किया जा सकता और करना पड़ता है जिससे देश वासियों को रोजगार नहीं मिलता।

महान मानवीय प्रश्न है जो प्रत्येक विचारक, दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ ने अपने से पूछा था। अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों ने जो कारण खोज निकाले हैं उनमें से मुख्य निम्न हैं :—

प्रथम, इनमें से अधिकांश देश बहुत समय तक दासता (Slavery) की बेड़ियों में जकड़े हुए थे, कुछ अभी तक हैं। उनके विदेशी शासकों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये उनके उत्थान पर कभी ध्यान नहीं दिया।

द्वितीय, इन देशों में राजनैतिक जाग्रति का पूर्ण अभाव था।

तृतीय, अशिक्षा के कारण यहाँ के निवासियों में आत्मविश्वास एवं प्रगति के विचारों का पूर्ण अभाव था।

चौथे, शिक्षित वर्ग में भी आपसी मतभेद होने के कारण संयुक्त प्रयत्नों का अभाव रहा।

पाँचवे, कई धार्मिक अन्धविश्वासों, सांस्कृतिक बंधनों एवं सामाजिक रिवाजों ने यहाँ लोगों को नये विचारों की ओर से उदासीन कर दिया था।

छटे, इनकी भौगोलिक एकान्तता (Geographical isolation) एवं राजनैतिक प्रथकता के कारण इनके साधनों का समुचित सर्वेक्षण (Survey) एवं उपयोग नहीं किया जा सका।

नैतिक दृष्टिकोण से अर्धविकसित देश मानवता के नाम पर एक काला धब्बा है। यूरोप एवं अमेरिका के निवासियों ने भी आज अपने नैतिक उत्तरदायित्व को जानकर इन देशों की प्रगति में सहायता देने का आश्वासन दिया है। जिन कारणों से अभी तक इनकी प्रगति रुकी रही उन्हें अब दूर किया जा रहा है।

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की समस्याएं (Problems of Under-developed Countries)

यों तो प्रत्येक अर्धविकसित देश की अपनी समस्याएं हैं पर उनकी कुछ विशेष सम्मिलित समस्याएं भी हैं जिनका निवारण करना अत्यन्त आवश्यक है। उनमें से कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं :—

(१) पूँजी की आवश्यकता (Need of Capital):—जिस प्रकार बिना ईंधन के ओंजन नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना पूँजी के किसी देश का विकास नहीं हो सकता। अर्द्ध-विकसित देश स्वयं इतने गरीब हैं कि वे आन्तरिक स्रोतों (Internal sources) से पर्याप्त पूँजी एकत्र नहीं कर सकते। संसार के किसी भी देश ने इस सदी में बिना बाह्य सहायता (External assistance) के आर्थिक प्रगति नहीं की है। गरीब देशों के निवासी भूखे-स्तर (Starvation level) पर रहते हैं और पूँजी निर्माण करने में सर्वथा विवश एवं असमर्थ होते हैं। बड़े उद्योगों के स्थापन एवं कृषि के विकास के लिये पूँजी का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रश्न है आखिर यह बड़ी मात्रा में पूँजी आवे कहां से ?

(३) प्राविधिक योग्यता (Technical Personnel):—पूँजी के सदुपयोग के लिये प्राविधिक योग्यता की आवश्यकता है। प्राविधिक ज्ञान की प्राप्ति केवल पश्चिम देशों से ही की जाती है। मशीनों एवं नए वैज्ञानिक तरीकों को अपनाए बिना इन देशों की औद्योगिक प्रगति सम्भव नहीं। परन्तु एक दूसरे दृष्टिकोण से यह इनके लिये अहितकर भी सिद्ध हो सकती है। पश्चिमी देशों के सामने बेरोजगारी एवं अधिक जनसंख्या का प्रश्न नहीं है और वे अधिक एवं अच्छी मशीनों का उपयोग करके अपना उत्पादन बढ़ा सकते हैं। अर्ध-विकसित देश इन दोनों समस्याओं से ग्रसित हैं। यंत्रिकरण न करने से वे आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े रहेंगे, और यदि वे यंत्रीकरण करते हैं तो बेरोजगारी की समस्या और भी जटिल हो जायगी। यह उनके सामने सबसे बड़ी दुविधा है।

(४) प्राथमिकताओं की समस्या (Problem of Priorities):—अर्ध-विकसित राष्ट्रों के सामने लक्ष्य (Ends) तो अनन्त हैं पर साधन (Means) सीमित। प्रश्न इन लक्ष्यों व साधनों को प्राथमिकता (Priority) देने का है। वास्तव में राष्ट्रीय साधनों का आवंटन (Allocation) सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) के अनुसार होना चाहिए। लक्ष्यों में अधिक महत्व वालों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जिससे कि साधनों का अधिकतम लाभ उठाया जा सके। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। प्रायः कई लक्ष्य एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं एवं साधनों पर एक सी माँग रखते हैं। आर्थिक क्षेत्र में कृषि को प्राथमिकता मिले अथवा भारी उद्योगों को, अथवा लघु उद्योगों को अथवा निर्यात उद्योगों को इस पर बहुत मतभेद है। फिर, आर्थिक प्राथमिकताओं में, सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता मिले अथवा निजि क्षेत्र को? और अन्त में, उत्पादन शक्ति बढ़ाने को प्राथमिकता दी जाय अथवा लोगों के रहन-सहन के स्तर सुधारने को? ये सब जटिल प्रश्न हैं।

(५) सामाजिक बाधाएं (Social obstacles):—अर्द्धविकसित राष्ट्रों के निवासी रूढ़िगत रीतियों और परम्पराओं के दास होते हैं, वे किसी भी नये परिवर्तन का विरोध करते हैं। जाति भेद तथा धर्म के प्रति उदासीनता के कारण व्यक्तियों की गतिशीलता एवं कुशलता (Mobility and efficiency) कम होती है [illegible] दूर होती है। यदि कोई व्यक्ति आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है तो समाज उसका विरोध करता है। इस कारण इन देशों में रहन सहन का स्तर एवं आर्थिक प्रगति की ओर उदासीनता होती है।

(६) दोषपूर्ण भूमि प्रबन्ध (Defective land system):—यह सब मानते हैं कि बिना भूमि के विकास के कोई भी अर्द्धविकसित देश आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। इन देशों में प्रायः अनुपस्थित जमींदार (Absentee Landlords)

अधिक भूमि लगान (Reck Renting), कृषकों की असुरक्षा, कृषि का विखण्डन आदि समस्याएं होती हैं। कृषि के सुधार, नये तरीकों का प्रयोग, यंत्रीकरण (Mechanization), उत्पादन वृद्धि आदि के लिये भूमि प्रबन्ध में सुधार आवश्यक है। किन्तु जमींदार वर्ग इसका कड़ा विरोध करके अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है।

(६) राजनैतिक अस्थिरता (Political instability) :—अधिकांश अर्ध-विकसित देश हाल ही में स्वतन्त्र हुए हैं। अशिक्षा एवं सदियों की दासता ने उन्हें राजनैतिक चेतना (Awakening) से वंचित रखा है। आर्थिक विकास प्रारम्भ होने पर कई वर्गों को काफी हानि होती है और वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण सरकार पर अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः यह विरोध इतना दृढ़ हो जाता है कि या तो सरकारें अपनी योजनाओं में असफल रहती हैं या वे (सरकारें) बदल दी जाती हैं। कमजोर सरकारें होने के कारण विदेशी प्रभाव भी उन पर अधिकार करने की चेष्टा करते हैं जिसके फलस्वरूप उनके विकास में बाधा पड़ती है।

(७) यातायात के साधनों के अभाव की समस्या (Problem of lack of means of transport) :—रेलें व सड़कें वे नसें हैं जिनमें राष्ट्र का जीवन रक्त बहता है। विस्तृत सामाजिक सम्बन्धों, राजनैतिक जागृति तथा वृहद व्यापार एवं उत्पादन के अभाव में अविकसित राष्ट्रों में यातायात तथा संचार के साधन बहुत पिछड़ी अवस्था में पाये जाते हैं। इनकी एक विशेष समस्या है। उद्योगों आदि की अनुपस्थिति में यातायात संचार की प्रगति करना बहुत कठिन है, पर यातायात संचार के साधनों के अभाव में उद्योगों आदि की प्रगति असंभव है। रेलों, सड़कों व हवाई मार्गों आदि में विनियोजित धनराशि का तुरन्त लाभ प्राप्त नहीं होता और वे देश के आर्थिक साधनों पर एक बोझ बन जाते हैं।

(८) जन साधारण में जागृति का अभाव (Lack of development-consciousness):—अशिक्षा अर्ध-विकसित राष्ट्रों का सबसे बड़ा रोग है। निर्धनता, अशिक्षा एवं राजनैतिक दासता ने यहाँ के निवासियों को भाग्यविश्वासी बना दिया है। वे किसी भी नये विचार एवं कार्यक्रम के प्रति शंकित रहते हैं। वे अपने हाल में ही खुश हैं। यह उदासीनता उनकी प्रगति में बहुत बाधक है। वे योजना आदि का महत्व नहीं समझ पाते तथा अपना पूर्ण सहयोग देने में हिचकते हैं।

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति के साधन (Measures for the economic development of under-developed countries)

यह तो निर्विवाद रूप से माना जाता है कि अर्ध विकसित राष्ट्रों की प्रगति न केवल अत्यन्त आवश्यक ही है परन्तु समस्त विश्व के हित में है। अभी तक के अनुभवों, इन राष्ट्रों की समस्याओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उपाय सुझाए जा सकते हैं:—

(१) पूर्ण आर्थिक नियोजन (Economic Planning) :—सर्व प्रथम इन राष्ट्रों को सब क्षेत्रों में आर्थिक नियोजन की ओर ध्यान देना होगा। राष्ट्रीय सरकारों अथवा नियोजन अधिकारियों को समस्त आर्थिक व्यवस्था का नियोजन करना पड़ेगा। निश्चित लक्ष्यों के अनुसार योजनाएं बनानी होंगी। विनियोग (investment) के स्तर एवं क्षेत्रों का चुनाव करना होगा एवं आर्थिक नीतियों को बदलना होगा। तात्पर्य यह कि इन्हें पूर्ण आर्थिक नियोजन के सिद्धान्तों को लागू करना पड़ेगा। नियोजन के बिना राष्ट्रों का विकास सम्भव नहीं है।

(२) पूंजी निर्माण (Capital formation):-पूंजी निर्माण अर्ध-विकसित देशों की सबसे बड़ी समस्या है और सबसे बड़ी आवश्यकता भी। ऐसे प्रत्येक देश को राष्ट्रीय बचत (National Savings) को प्रोत्साहन देना होगा जिससे कि पूंजी निर्माण अधिक हो। राष्ट्रीय बचत को बढ़ाने के अनेक उपाय हैं। इनमे से प्रमुख हैं— छोटी बचतें (Small Savings), सेविंग्स बैंक, अनिवार्य बचतें, अनिवार्य बीमा (Compulsory insurance), नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट, धनी वर्ग की बचतों पर रियायत देकर अधिक विनियोग के लिये प्रोत्साहन देना, उपभोग पर नियन्त्रण व कटौती आदि। एक और महत्वपूर्ण उपाय सरकारी बजट है। करों को बढ़ाने से भी इच्छित वर्ग द्वारा आवश्यक धनराशि प्राप्त की जा सकती है। प्रो० एम० एल० सेठ के शब्दों में—"पूंजी निर्माण का अर्थ न केवल बचाने की क्षमता से ही है परन्तु इन बचतों एवं एकत्रित धन को पूर्ण रूप से विनियोग करना भी पूंजी निर्माण का ही भाग है।" इसके अतिरिक्त यह पूंजी विनियोग उत्पादक वस्तुओं (Capital goods) के उत्पादन में ही होना चाहिए।

(३) विदेशी सहायता (Foreign assistance):—लगभग सभी अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि बिना विदेशी पूंजी के राष्ट्रीय पूंजी का कोई विशेष महत्व नहीं। विदेशी पूंजी, प्राविधिक योग्यता (Technical Know-how), मशीनें एवं धन आदि के रूप में प्राप्त हो सकती है। अर्ध-विकसित राष्ट्रों को विदेशी पूंजी की आवश्यकता विशेषतः अपनी उत्पादन क्षमता को बनाने एवं बढ़ाने के लिये होती है। भारी और आधारभूत उद्योग बिना विदेशी पूंजी के नहीं स्थापित किये जा सकते।

(४) घाटे की अर्थ व्यवस्था (Deficit Financing):—प्रायः यह देखा गया है कि आन्तरिक पूंजी के निर्माण के लिये साधारण साधन पर्याप्त नहीं होते। छुपी हुई धन राशि एवं बचत क्षमता (Savings Capacity) को पूंजी निर्माण में लगाने के लिये घाटे की अर्थ व्यवस्था एक बहुत सफल तरीका है। राष्ट्रीय सरकार धन राशि की मात्रा बढ़ाकर, लोगों की आय बढ़ाती है तथा कीमतें ऊंची की जाती हैं। इस प्रकार लाभ की आशा व अधिक आय हो जाने के कारण पूंजी का अधिक विनियोग

प्रविक भूमि लगान (Reck Renting), कृषकों की असुरक्षा, कृषि का निष्कासन आदि समस्याएं होती हैं। कृषि के सुधार, नये तरीकों का प्रयोग, यंत्रीकरण (Mechanization), उत्पादन वृद्धि आदि के लिये भूमि प्रबन्ध में सुधार आवश्यक है। किन्तु जमींदार वर्ग इसका बड़ा विरोध करके अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है।

(६) राजनैतिक अस्थिरता (Political Instability) :—अधिकांश अर्ध-विकसित देश हाल ही में स्वतन्त्र हुए हैं। अशिक्षा एवं सदियों की दासता ने उन्हें राजनैतिक चेतना (Awakening) से वंचित रखा है। आर्थिक विकास प्रारम्भ होने पर कई वर्गों को काफी हानि होती है और वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण सरकार पर अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः यह विरोध इतना दृढ़ हो जाता है कि या तो सरकारें अपनी योजनाओं में असफल रहती हैं या वे (सरकारें) बदल दी जाती हैं। कमजोर सरकारें होने के कारण विदेशी प्रभाव भी उन पर अधिकार करने की चेष्टा करते हैं जिसके फलस्वरूप उनके विकास में बाधा पड़ती है।

(७) *यातायात के साधनों के अभाव की समस्या (Problem of lack means of transport)* :—रेलें व सड़कें वे नसें हैं जिनमें राष्ट्र का जीवन रक्त बहता है। विस्तृत सामाजिक सम्बन्धों, राजनैतिक जागृति तथा वृहद व्यापार एवं उत्पादन के अभाव में अविकसित राष्ट्रों में यातायात तथा संचार के साधन बहुत पिछड़ी अवस्था में पाये जाते हैं। इनकी एक विशेष समस्या है। उद्योगों आदि की अनुपस्थिति में यातायात संचार की प्रगति करना बहुत कठिन है, पर यातायात संचार के साधनों के अभाव में उद्योगो आदि की प्रगति असंभव है। रेलों, सड़कों व हवाई मार्गों आदि में विनियोजित धनराशि का तुरन्त लाभ प्राप्त नहीं होता और वे देश के आर्थिक साधनों पर एक बोझ बन जाते हैं।

(८) जन साधारण में जागृति का अभाव (Lack of development consciousness):—अशिक्षा अर्ध-विकसित राष्ट्रों का सबसे बड़ा रोग है। निर्धनता अशिक्षा एवं राजनैतिक दासता ने वहाँ के निवासियों को अन्धविश्वासी बना दिया है। वे किसी भी नये विचार एवं कार्यक्रम के प्रति शंकित रहते हैं। वे अपने हाल में ही खुश हैं। यह उदासीनता उनकी प्रगति में बहुत बाधक है। वे योजना आदि का महत्व नहीं समझ पाते तथा अपना पूर्ण सहयोग देने में हिचकते हैं।

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति के साधन (Measures for the economic development of under-developed countries)

यह तो निर्विवाद रूप से माना जाता है कि अर्ध-विकसित राष्ट्रों की प्रगति न केवल अत्यन्त आवश्यक ही है परन्तु समस्त विश्व के हित में है। अभी तक के अनुभवों, इन राष्ट्रों की समस्याओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुझाए जा सकते हैं:—

शासन व्यवस्था के अन्तर्गत योजना की अच्छी प्रगति होगी, जनसहयोग प्राप्त होगा एवं कठिनाइयों का निवारण करने में सरलता होगी।

(९) कुछ काल के लिये उपभोग पर रोक (Control over consumption)— प्रायः देखा गया है कि थोड़ी सी आर्थिक प्रगति होने पर वे सामाजिक वर्ग जिनकी आय में वृद्धि होती है अपना उपभोग स्तर ऊँचा उठा लेते हैं। फलस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन और अधिक उत्पादन में सहायक न होकर आर्थिक प्रगति को हानि पहुँचाता है। अतः आर्थिक प्रगति के प्रारम्भिक वर्षों में उपभोग के स्तरों को नीचा रखना बहुत आवश्यक है। अतिरिक्त उत्पादन एवं आय को दुबारा विनियोग करने एवं उत्पादन शक्ति बढ़ाने में लगाना चाहिए।

संक्षेप में, 'अर्ध-विकसित' शब्द अपने साथ यह अर्थ रखता है कि देश में प्राकृतिक साधन हैं, और विकास संभव एवं वांछनीय है, परन्तु उपयुक्त वातावरण का अभाव है। लेकिन सहायक वातावरण के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं। आर्थिक विकास सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तन के सम्मिश्रण का परिणाम होता है और स्वयं भी अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन लाता है। पूँजी, भूमिसुधार सामाजिक बंधनों से छुटकारा, स्वतन्त्रता, राजनैतिक स्थिरता, सुसंगठित शासन, बचत पूँजी का ठीक विनियोग आदि के साथ साथ जनता में विकास के प्रति रुचि, उत्साह व जागरूकता होना अनिवार्य है।

विकास के पथ पर (Progress)

इस शताब्दी में अर्ध-विकसित अवस्था से उठकर आर्थिक प्रगति की ओर कदम होने वाले देशों में रूस, युगोस्लाविया, चीन व भारत के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। प्रथम दो देशों के उदाहरण सर्वविदित हैं। पूंजी के सही विनियोग व उत्पादन क्षमता में वृद्धि करके एवं उपभोग के स्तर नीचे रख कर ही वे इतनी प्रगति कर पाये हैं। दोनों ही देशों ने प्रारम्भिक अवस्थाओं में विदेशी सहायता प्राप्त की, यद्यपि उनकी आन्तरिक व्यवस्था का उनकी प्रगति में विशेष महत्व रहा है। भारत व चीन को और अधिक अर्ध-विकसित देश कहना कदाचित् अनुपयुक्त होगा। पिछले १०-११ वर्षों में दोनों देशों ने काफी आर्थिक प्रगति की है और वे [illegible] के अर्थ में वे प्रो० रोस्टोव (Prof. Rostow) की स्वयं-स्फूर्त-अर्थव्यवस्था (Self-sustaining Economy) को प्राप्त हो जाते हैं। भारत का उदाहरण विशेष दृष्टि में उल्लेखनीय रहेगा। प्रचुर विदेशी सहायता, महान आन्तरिक प्रयत्न एवं स्थिर व सुदृढ़ शासन के सहयोग से इस देश के ४१ करोड़ व्यक्तियों की आर्थिक प्रगति के लिये यत्न किये हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, संयुक्त अरब गणराज्य, ईरान आदि और अर्ध-विकसित

होता है। धनी वर्ग लाभ की आशा में जमा निधि व
की बढ़ी हुई आय को सरकार बचतों द्वारा प्राप्त क
उत्पादन-आय (Investment-Production-inc
वह स्वयं गति पकड़ लेता है और अर्थ व्यवस्था प्रग

(५) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (Internation
सहयोग प्राप्त करना केवल अर्धविकसित राष्ट्रों का प्र
एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का कर्तव्य भी है। संयुक्त
एवं विकसित राष्ट्र अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर इ
देसकते हैं। सबसे अधिक आवश्यक पूंजी व प्रावि
है। परन्तु यह आवश्यक है कि यह सहायता बिना शि
(Strings) के मिले। यह भी आवश्यक है कि वि
क्षेत्र में अर्धविकसित राष्ट्रों के हितों का ध्यान रखें।

(६) सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिरता
lity):—आर्थिक प्रगति के लिये एक दृढ़, स्थायी,
आवश्यकता है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि
में हस्तक्षेप न करें। सामाजिक सुरक्षा एवं उचित
जरूरी है।

(७) शिक्षा एवं जागृति:—देशवासियों
के बारे में ज्ञान एवं सूचना देना अर्ध-विकसित देशों
केवल साधनों की बाहुल्यता अथवा पूंजी की प्राप्ति
के लिये मनुष्यों के भाग्यवादी तथा निराशावा
pessimistic outlook) को बदलना होगा।
usness) जाग्रत करनी होगी कि हम अपने भा
the architects of our fate)। हम स्वयं परि
सकते हैं। हमें देश का नव निर्माण करना है
जन जागृति अत्यावश्यक है। विकास के प्र
जनमत क्या नहीं कर सकता। जनमत तो वह र
दिये हैं। प्रगति के लिये मनुष्यों में प्रगति की प्रबल
(People must desire progress)। प्रगति
से उत्साह उत्पन्न करना चाहिए जिससे पूर्ण जन

(८) शासन सम्बन्धी कार्य क्षमता:—
व्यवस्था (Administration)
दुरुपयोग रोकने के

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की विशेषताएं

(१) कृषि प्रधानता
(२) उद्योगों का अभाव
(३) कम पूंजी निर्माण एवं कम विनियोग
(४) रहन-सहन के नीचे स्तर
(५) विशेष प्रकार का विदेशी व्यापार—खाद्यान्नों, कच्चे माल आदि का निर्यात तथा मशीनों व निर्मित माल का आयात।
(६) जन संख्या का भार तथा तेजी से बढ़ती जनसंख्या
(७) सामान्य पिछड़ापन
(८) विषम चक्र

अर्ध-विकसित राष्ट्रों की उपस्थिति के कारण

विदेशी शासन, पूंजी का अभाव, प्राविधिक ज्ञान की कमी, अशिक्षा, सामाजिक बन्धन, धार्मिक अंधविश्वास, नये विचारों की ओर की जनता में विकास के प्रति रुचि व उत्साह तथा साहस का अभाव, उदासीन, भौगोलिक एकान्तता आदि।

इन देशों की प्रमुख समस्याएं

(१) पूंजी की कमी
(२) प्राविधिक योग्यता का अभाव
(३) प्राथमिकताओं की समस्या
(४) सामाजिक बाधाएं
(५) दोषपूर्ण भूमि प्रबन्ध
(६) राजनैतिक अस्थिरता
(७) यातायात तथा संचार के साधनों का अभाव
(८) जन जागृति का अभाव।

प्रगति के साधन एवं उपाय

१. पूर्ण आर्थिक नियोजन
२. पूंजी निर्माण
३. विदेशी सहायता
४. घाटे की अर्थव्यवस्था
५. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग
६. सामाजिक व राजनैतिक स्थिरता
७. शिक्षा एवं जागृति
८. शासन सम्बन्धी कार्य क्षमता
९. उपभोग पर रोक।

प्रगति

इस सदी में रूस, चीन, भारत, पाकिस्तान, बर्मा, इंडोनेशिया, संयुक्त अरब गणराज्य आदि अर्ध-विकसित देशों ने आर्थिक विकास के पथ पर कदम बढ़ाए हैं। रूस ने आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आश्चर्यजनक प्रगति की है। भारत के प्रयास सराहनीय हैं। प्रायः सभी विद्वानों का मत है कि अर्ध-विकसित राष्ट्रों को शीघ्र विकास के लिये आर्थिक नियोजन अपनाना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. अर्ध-विकसित राष्ट्रों से आप क्या समझते हैं ? इनकी क्या विशेषताएं हैं ?
   What do you mean by Under-developed Countries ? What are their characteristics ?

२. कुछ राष्ट्र अर्ध-विकसित क्यों हैं ? उदाहरण देकर समझाइये।
   Why do under-developed countries exist ? *Explain with the help of examples.*

३. अर्ध-विकसित राष्ट्रों की आर्थिक समस्याओं का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
   Describe fully the Economic problems of under-developed countries.

४. *अर्ध-विकसित देशों के विकास के लिये सुझाव दीजिये।*
   Suggest measures for the development of under-developed countries.